एस.सी.ई.आर.टी., बिहार द्वारा विकसित

दो वर्षीय सेवाकालीन
डिप्लोमा इन एलिमेन्ट्री एजुकेशन
(दूरस्थ शिक्षा)

स्व–अधिगम सामग्री

शिक्षा का साहित्य

(तृतीय सत्र)
S3.3

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्
(एस.सी.ई.आर.टी.), महेन्द्रू, पटना (बिहार)

प्रकाशक
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्
(एस.सी.ई.आर.टी.), महेन्द्रू, पटना, (बिहार)

© **दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, (एस.सी.ई.आर.टी.),बिहार**

डिप्लोमा इन एलिमेन्ट्री एजुकेशन (दूरस्थ शिक्षा) कार्यक्रम	
सत्र	तृतीय
विषयपत्र	शिक्षा का साहित्य
ISBN	**978-93-84709-14-3**

प्रथम संस्करण, 2014	
प्रतियाँ	12,000

डी.एल.एड. (ओ.डी.एल.) के साधनसेवियों एवं प्रशिक्षुओं (कार्यरत शिक्षकों/शिक्षिकाओं) के स्वाध्याय हेतु निःशुल्क उपलब्ध

स्व-अधिगम सामग्री विकास समूह
विषय-पत्र : शिक्षा का साहित्य

दिशाबोध

- श्री हसन वारिस, निदेशक, राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, पटना
- श्री ए. के. पाण्डेया, निदेशक, शोध एवं प्रशिक्षण निदेशालय, शिक्षा विभाग, बिहार
- डॉ. सैयद अब्दुल मोईन, विभागाध्यक्ष, अध्यापक शिक्षा विभाग, एस.सी.ई.आर.टी, पटना
- डॉ. श्वेता शांडिल्य, शिक्षा विशेषज्ञ, यूनिसेफ, पटना
- डॉ. ज्ञानदेव मणि त्रिपाठी, प्राचार्य, मैत्रेय कॉलेज ऑफ एजूकेशन एण्ड मैनेजमेन्ट, हाजीपुर(वैशाली)

परामर्श	प्रो. कृष्ण कुमार केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
संपादन	डॉ. ज्ञानदेव मणि त्रिपाठी प्राचार्य, मैत्रेय कॉलेज ऑफ एजूकेशन एण्ड मैनेजमेन्ट, हाजीपुर (वैशाली)

सामग्री संकलन एवं प्रस्तावना लेखन

- डॉ० निरंजन सहाय, एसोसियेट प्रोफेसर, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
- श्री बीरेन्द्र सिंह रावत, सी.आई.ई., शिक्षाशास्त्र विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- डॉ० उषा शर्मा, एसोसियेट प्रोफेसर, प्रारम्भिक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली
- चन्दन श्रीवास्तव, केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- हर्षवर्द्धन कुमार, केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- श्री सुमन कुमार सिंह, बी.आर.सी., भगवानपुर हाट, सीवान
- डॉ. ज्ञान रंजन गंगेश, +2 एस.बी.एल.सी. उच्च विद्यालय, रायपुर, सीतामढ़ी
- डॉ० विक्रांत भाष्कर, सहायक शिक्षक, बी.पी. इन्टर विद्यालय, बेगुसराय

संयोजन

- डॉ० रीता राय, व्याख्याता, अध्यापक शिक्षा विभाग, एस.सी.ई.आर.टी, पटना

संदर्भ

शिक्षा के साहित्य से तात्पर्य है ऐसे साहित्य से परिचय जो शिक्षा के विभिन्न आयामों पर विशेष प्रकाश डालता हो। वैसा साहित्य जो शिक्षा से संबंधित तमाम मुद्दों को समझने के लिए एक दृष्टिकोण देता हो तथा जिसे पढ़कर हमारी दृष्टि संवेदित होती है। एक शिक्षक के लिए ऐसा साहित्य कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। शिक्षा के साहित्य के माध्यम से प्राप्त होने वाली आलोचनात्मक समझ द्वारा एक शिक्षक विभिन्न शैक्षिक विमर्शों को कहीं बेहतर ढंग से समझ सकता है। अलग–अलग कालखंडों में शिक्षा के स्वरूप एवं उसमें हुए परिवर्तनों को जानना और साथ ही उस दौरान समाज के बदलते नजरिये को समग्रता से समझना भी शिक्षकों के लिए अपरिहार्य है। इनकी छवि विभिन्न साहित्यिक रचनाओं में देखी जा सकती है जो अपने समय की शिक्षा व्यवस्था से जुड़े विभिन्न मुद्दों का काव्य, लेखों, कहानियों, व्यंग्य आदि के माध्यम से परिलक्षित करते हैं। ऐसी रचनाएं शिक्षा के स्वरूप में आए प्रमुख बदलावों के विभिन्न पहलुओं को जानने एवं समझने के लिए आज भी प्रासांगिक हैं। ये रचनाएँ आज के शिक्षाशास्त्र की विषयवस्तु के अलग–अलग पहलुओं पर एक विशेष तरह का प्रकाश डालती हैं। इनके द्वारा शिक्षा के दर्शन, समाजशास्त्र एवं मनोविज्ञान की आपसी समझ पर हुए प्रभावों को जाना व समझा जा सकता है। इसे जानने और समझने का प्रयास प्रशिक्षुओं की चिन्तन प्रक्रिया को व्यापक करने में सहायक सिद्ध होगा। यह पर्चा उनके लिए संवेदनाओं के प्रशिक्षण का मार्ग प्रशस्त करेगा।

इस विषयपत्र के उद्देश्य एवं शिक्षण बिन्दु निम्नलिखित हैं :

- रचना का काल संदर्भ – रचना के विषयवस्तु/प्रसंग को काल–खण्ड में स्थापित करके समझना। समय के अनुसार शिक्षा के बदलते स्वरूप को समझना। काल–विशेष में शिक्षा से सामाजिक अपेक्षाओं व प्रभावों की समीक्षा करना।
- रचना की मीमांसा – इससे शिक्षा के किस पहलू पर प्रकाश पड़ता है, इसे समझना। उदाहरणतः समवय समूह सम्बंध, शिक्षक की प्रकृति, समाज की शिक्षा के ऊपर दृष्टिकोण, बाल मानस, इत्यादि।
- रचना से अनुभूति – पाठक के रूप में वह आपकी किन अनुभूतियों अथवा स्मृति संदर्भों को जगाती हैं। अर्थात ऐसे प्रसंग जो आपके अनुभवों से मेल खाते हो।
- विवेचना की बहुआयामिता – स्वतंत्र विवेचना का हक। प्रत्येक पाठक अपने अनुसार पढ़े गये रचनाओं का विवेचना करे। किसी भी प्रकार का मानक विवेचना पाठक पर आरोपित न की जाये।

विषय सूची

इकाई	साहित्य अंश	पृष्ठ संख्या
इकाई–1	**प्राचीन साहित्य**	***01–25***
	समग्र प्रस्तावना	01
1.1	**कथोपनिषद् से नचिकेता की कहानी**	02–08
1.2	**महाभारत से एकलव्य की कहानी**	09–13
1.3	**पंचतंत्र की कथाएँ**	14–25
इकाई–2	**बालमानस कहानियाँ**	***26–78***
	समग्र प्रस्तावना	26–27
2.1	**बस की सैर** (वल्लिकानन)	28–32
2.2	**इतवा मुंडा ने लड़ाई जीती** (महाश्वेता देवी)	33–59
2.3	**बड़े भाई साहब** (प्रेमचन्द)	60–66
2.4	**उसका स्कूल** (नवीन सागर) **अथवा** बड़ा अफसर (सुनील कौशिश)	67–69
2.5	**तोता** (रविन्द्रनाथ टैगोर) **अथवा** रजाई (अशोक अग्रवाल)	70–73
2.6	**झण्डा/मातृध्वनि** (कृष्ण कुमार)	74–78
इकाई–3	**उपन्यास–अंश**	***79–95***
	समग्र प्रस्तावना	79
3.1	**आपका बंटी** (मन्नू भंडारी)	80–93
3.2	**स्वामी और उसके दोस्त** (आर. के. नारायण)	94–95
इकाई–4	**निबंध**	***96–106***
	समग्र प्रस्तावना	96
4.1	**बाल जगत के दहलीज पर/अकेली यात्रा के देहरी पर** (सच्चिदानंद हीरानंद वात्सयायन 'अज्ञेय')	97–101
4.2	**शिक्षकों की वास्तविक सत्ता** (जॉन होल्ट)/**स्त्री की शिक्षा** (महादेवी वर्मा)	102–106

इकाई–1
प्राचीन साहित्य

	समग्र प्रस्तावना
1.1	**कठोपनिषद् से नचिकेता की कहानी** (नचिकेता के पिता एवं नचिकेता के बीच बातचीत वाला प्रसंग अथवा नचिकेता–यम संवाद)
1.2	**महाभारत से एकलव्य की कहानी**
1.3	**पंचतंत्र की कथाएँ** ('टिटिहरी और समुद्र' की शृंखला कहानियाँ)

समग्र प्रस्तावना

'शिक्षा का साहित्य' के अंतर्गत प्राचीन साहित्य से संबंधित यह खंड अनेक अर्थछवियों से सम्पन्न है। एक अर्थ में यह विभिन्न कालखंडों में मौजूद शैक्षिक विमर्शों का आईना है, तो दूसरे अर्थ में यह शैक्षिक तकनीकों से भी हमें रू–ब–रू कराता है। हर युग के अलग–अलग नवाचार होते हैं, उन नवाचारों के प्रकटीकरण और अभ्यास की तरकीबें भी अलग–अलग होतीं हैं। इन सन्दर्भों से परिचित कराने के उद्देश्य से समन्वित यह संसार आपको पुरनूर अहसासों से भर दे यह हमारा प्रयास है। भारत में शैक्षिक विमर्शों की परंपरा वेद–उपनिषद् काल से मिलती है। उपनिषदों का काल वेदों के काल के बाद का है। इनकी ख्याति वेदान्त आदि स्रोत के रूप में है। चरैवेति–चरैवेति के सिद्धांत वाक्य पर विस्तार पाने वाली भारतीय परंपरा लगातार समझ, विश्लेषण, प्रश्न और समयानुकूल बदलाव के साथ विस्तार पाती रही है। इस अर्थ में वह जड़ता और लकीर के फकीर लोगों और विचारों की मजम्मत भी करती चली है। इस खंड में भी आप प्रश्नाकूलता और अग्रगामिता को प्रोत्साहित करने वाले विभिन्न स्वरों से परिचित होंगे। उसी तरह महाकाव्य काल (400 ई. के आस–पास) की नायाब रचना रामायण और महाभारत को यदि हम शिक्षायी नज़रिए से देखते हैं, तब अनेक अंतःसूत्र हासिल होते हैं। साथ ही हमें शिक्षा के स्रोतों, उनपर नियंत्रण और उनमें अंतर्गुम्फित भविष्य दृष्टियों का भी पता चलता है। पंचतन्त्र की प्रतिष्ठा से शायद ही कोई अपरिचित हो। अध्ययन–मनन से कोसों दूर रहने वाले राजकुमार (बहुशक्ति, उग्रशक्ति और अनंतशक्ति) अपने परिवार, समाज और एक हद तक खुद के लिए भी समस्या ही थे। पिता अमरशक्ति ने इस बात की मुनादी करायी कि जो इन्हें लौकिक ज्ञान और राजनीति से परिचित कराएगा उनके वे मुरीद हो जाएंगे। फिर क्या था पं. विष्णु शर्मा ने कथाओं में अन्तर्निहित शिक्षाशास्त्र की एक ऐसी दुनिया रची, जिनकी अर्थछवियाँ युगांतकारी साबित हुईं। आप इन तीनों स्वादों से इस खंड में रू–ब–रू होंगे।

1.1

कठोपनिषद् से नचिकेता की कहानी

प्रस्तावना :

'नचिकेता का साहस' सत्य की तलाश और प्रश्नाकुलता जैसे शिक्षायी मूल्यों को बेहद खूबसूरत नज़रिए से प्रस्तुत करता है। बाजश्रवा के पोते और उद्दालक के बेटे नचिकेता की यमराज से बातचीत शिक्षा के विमर्शवादी पहलू को परत–दर–परत खोलती है। एक ऐसे समाज में जहाँ शिक्षा में विमर्श के दायरे लगातार सिमट रहे हों और आत्ममुग्ध अध्यापन संसार महज उपदेशों तथा अहम् के नित नए रूप को प्रकट कर रहे हों, वहाँ प्रश्नकर्ता की स्वाधीनता का यमराज द्वारा स्वीकार कथा में निहित शिक्षायी मूल्य की सुन्दर नजीर को प्रस्तुत करता है। अनुशासन की आड़ में जिज्ञासा को हतोत्साहित करना स्वयं का बचाव तो हो सकता है, लेकिन इससे शिक्षा का लकीर के फकीर, समझ की दुनिया के संकुचित होने एवं उसके तोतारटंत संसार में रूपांतरित होने का खतरा है। कथा के उत्तरार्द्ध में नचिकेता द्वारा यमराज से किया गया यह प्रश्न कि जीवन विद्या का गूढ़ रहस्य क्या है और यमराज के द्वारा दिए गए तमाम प्रलोभनों के बावजूद लक्ष्य के प्रति सतत जागरूक रहने की समझ का कायम रहना अनजाने ही अनुसन्धान के बुनियादी तत्त्व की ओर पाठकों को ले जाती है। यमराज द्वारा श्रेय और प्रेय की व्याख्या और उसके प्रति सजग दृष्टि अपनाने की सलाह में एक शिक्षायी समझ भी निहित है वह यह कि जीवन के स्थायी लक्ष्यों को हासिल करने के लिए न केवल जागरूक नज़रिए बल्कि एक समर्पित संकल्प भी अपरिहार्य है।

नचिकेता का साहस

बात बहुत पुरानी है। उस समय हमारे देश में यज्ञों का बहुत प्रचार था। हर एक गाँव में महीने–भर में दो–चार यज्ञ हुआ करते थे। यज्ञ के सुगन्धित धुएँ से आकाशमंडल धूमिल बना रहता था। पवित्र शांत सुगन्धित पवन के मन्द–मन्द झोंकों से चारों ओर का वातावरण बहुत स्वास्थ्यप्रद और रमणीक बना रहता था। वेद के पवित्र मन्त्रों के उच्चारण से दिशाएँ गूँजती रहती थीं। लोगों के दिन आनन्द और मस्ती में क्षण के समान बीतते थे। न किसी को खाने–पीने की कमी रहती थी और न शत्रुओं का भय। सभी लोग सत्य बोलते थे, जीवमात्र के लिए मन में उपकार की भावना रखते थे और किसी छल–छिद्र का उन्हें कोई पता नहीं रहता था। ऐसे पवित्र सत्य युग में महर्षि गौतम के वंश में बाजश्रवा के पुत्र उद्दालक नाम के एक महात्मा ऋषि हुए थे। उद्दालक की गृहस्थी बहुत बड़ी तो नहीं थी, पर गौओं का एक बहुत बड़ा झुण्ड उनके पास अवश्य था। वेदाभ्यास में निरत एक तपस्वी ब्राह्मण के लिए उस समय वह बहुत बड़ी सम्पत्ति थी। जब उद्दालक वृद्ध हो चले तो एक दिन उनके मन में यह विचार आया कि सारी अवस्था बीतती जा रही है, अभी तक मैंने कोई बड़ा यज्ञ नहीं किया। इन छोटे–छोटे यज्ञों से क्या मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है? यह धन–सम्पत्ति और किस काम आएगी? इसके रखने से भी तो शान्ति नहीं मिलती, सन्तोष नहीं होता। अच्छा होगा कि सर्वमेध यज्ञ करके गृहस्थी का सारा झंझट बहुत कुछ कम कर दिया जाए। इस तरह बहुत कुछ सोचने–विचारने के बाद उद्दालक ने सर्वमेध यज्ञ करने का विचार पक्का किया। सर्वमेध कोई मामूली यज्ञ नहीं था, उसे बड़े–बड़े राजा लोग करते थे। उसमें यजमान को अपना सबकुछ दक्षिण में दान कर देना पड़ता था। उसके लिए शास्त्रों में कहा गया है कि जो सच्चे भाव से सर्वमेध यज्ञ करता है, वह मृत्यु को जीत लेता है और संसार के सभी दुःखों से सदा के लिए छुटकारा पा जाता है। उद्दालक का सर्वमेध यज्ञ प्रारम्भ हो गया। देश के कोने–कोने से बड़े–बड़े विद्वान, पंडित और महात्मा आकर उस यज्ञ में सम्मिलित हुए। उस यज्ञ में उद्दालक ने सचमुच अपनी सारी गृहस्थी समाप्त कर दी। पूर्णाहुति का पुण्य दिन आया,

वेदों के पवित्र मन्त्रों का उच्चारण करते हुए पंडितों ने आकाशमंडल को गुँजा दिया। यज्ञधूम की चंचल सुगन्धित लहरें क्षितिज तक व्याप्त हो गई। पुण्यात्मा उद्दालक ने मांगलिक गीतों और वाद्यों की आकाश–भेदी ध्वनियों के बीच में नारियल की अन्तिम आहुति यज्ञकुंड में समर्पित की और चारों ओर से उनका जय–जयकार होने लगा। अब पुरोधा पंडितो तथा आगत महात्माओं को दक्षिणा देने की बेला आई। गौओं को छोड़कर उद्दालक के पास कोई वस्तु शेष नहीं थीं, अतः वे उनमें से एक–एक गाय दक्षिणा के रूप में देने लगे। अपनी गौओं का दान करते समय उद्दालक की पवित्र आत्मा भी सर्वस्व त्याग की कठोरता से काँप उठी। वह मन–ही–मन सोचने लगे, 'सब गौएँ दे देने पर जीविका कैसे चलेगी? बेटा भी अभी छोटा है, क्या खाएगा? मेरा वृद्ध शरीर भी अब इस योग्य नहीं रहा कि परिश्रम करके प्रतिदिन की जीविका पैदा कर सकूँ।' वह सचमुच विचलित हो गए। लोभ की इस क्षीण काली रेखा ने धीरे–धीरे उनके निर्मल हृदय में घना रूप बना लिया। उन्होंने गौओं के समूह की ओर दृष्टि डाली। देखा तो जितने पंडित अभी शेष थे, उससे अधिक गाएँ बचती थीं, मगर उनमें बहुतेरी बुढ़ी गौएँ ही थीं। वह तुरन्त ही कुश और अक्षत को नीचे रखकर गौओं के समूह की ओर चले गए। वहाँ कपट से विचलित होकर अच्छी–अच्छी गौओं को पीछे की ओर छोड़कर बुढ़ी और अधेड़ गौओं को आगे की ओर हाँक लाए और उन्हीं में से एक–एक करके पंडितों को दक्षिणा में देने लगे। उनकी इस चालाकी का पता किसी को कानों–कान नहीं लगा पर उनका बेटा नचिकेता, जिसकी उम्र अभी दस–बारह साल से कम ही थी, यह सब चुपचाप देख रहा था।

नचिकेता का निष्पाप कोमल हृदय पिता की इस काली करतूत पर काँप उठा। उसने देखा कि महीनों तक अनवरत परिश्रम करनेवाले पुरोहितों और पंडितों को ऐसी–ऐसी गौएँ दी जा रही हैं, जो एकदम बुढ़ी हो चली हैं– न उससे बछड़े की कोई आशा है, न दूध की। यहाँ तक कि उनमें से कुछ इतनी जर्जर हो गई हैं, जो न कुछ खा सकती हैं, न पानी ही पी सकती हैं। इन जीवन्मृत गौओं को दान में देकर पिताजी पंडितों के साथ कितना विश्वासघात कर रहे हैं। यह सोचकर वह बहुत ही दुःखी हुआ। उसने पीछे की ओर देखा तो बड़ी अच्छी–अच्छी गौएँ चर रही थीं, और उद्दालक उनकी ओर तनिक भी ध्यान न देकर इन जर्जरित गौओं को चुपचाप दान करते जा रहे थे। सामने जितनी वृद्ध गौएँ खड़ी थीं, उतने ही पंडितों को दान भी देना शेष था। नचिकेता सोचने लगा, 'क्या पिताजी सचमुच सर्वमेध यज्ञ कर रहे हैं? नहीं–नहीं, यह पापमेध है, कपटमेध है, सर्वमेध नहीं। शायद पिताजी मेरे लिए इनको रख छोड़ते हों। हाँ, मगर उन्हें ऐसा तो नहीं करना चाहिए। यज्ञनारायण के साथ कपट करके वह मेरा कल्याण किस प्रकार कर सकते हैं? इस प्रकार के कपट–व्यापार से बचाई गई ये गौएँ मेरा भी सत्यानाश कर देंगी। पंडितों का मूक अभिशाप हमारे परिवार का भीषण विनाश कर देगा। पिताजी गिर रहे हैं, इनको बचाना या ठीक रास्ते पर लाना मेरा कर्त्तव्य होता है। मुझे ऐसे अवसर पर चुप नहीं रहना चाहिए।' विचारों के इस प्रखर प्रवाह में बहकर नचिकेता पिता के समीप गया और हाथ जोड़कर बोला, 'तात! यह तो सर्वमध यज्ञ है न?' उद्दालक का मुख भीतरी पाप की काली छाया से उस समय मलिन पड़ रहा था। ब्रह्मवर्चस् एवं सर्वस्व–त्याग की वह आभा, जो अभी तक उनके उन्नत ललाट में दीपशिखा के समान जल रही थी, राख–सी काली पड़ गई थी। पुत्र की सुमधुर विनीत वाणी में 'सर्वमेध' का नाम सुनकर वह भीतर से और भी काँप उठे। परन्तु चुप कैसे रह सकते थे? मुख पर मुस्कुराहट की बनावटी रेखा बनाते हुए बोले, हाँ 'वत्स! यह स.....स सर्वमेघ यज्ञ है, बात क्या है?' उद्दालक हकलाते तो नहीं थे, पर पाप तो सिर पर चढ़कर बोलता है। अपनी दुष्कृति पर वह फिर से काँप उठे। पर, पाप तो उन्हें अपने पथ पर बहुत दूर तक खींच चुका था, वहाँ से लौटना उद्दालक के लिए भी आसान काम नहीं रह गया था।

नचिकेता चुप बना रहा। फिर आगे बोलने की उसकी सहसा हिम्मत नहीं पड़ी। वह समझता था कि 'सर्वमेध' का स्मरण दिला देना ही पिताजी के लिए पर्याप्त होगा पर उसके पिता यह कैसे समझते कि

नचिकेता क्या चाहता है? फिर वह उन्हीं बुढ़ी गौओं में से एक गाय लाकर समाने बैठे हुए पुरोहित को दान करने जा रहे थे। नचिकेता विवश होकर अनजाने में फिर बोल उठा, 'मेरे तात! इन सब गौओं को देने के बाद मुझे किसे दीजिएगा? आपने तो बताया था न, कि इस यज्ञ में अपना सबकुछ दे दिया जाता है।'

उद्दालक सिहर उठे। एक अज्ञात भय एवं पाप की भयावनी मूर्ति–सी उन्हें दिखाई पड़ी, परन्तु वह पाप–पथ के पीछे नहीं लौटे। नचिकेता का समाधान करना भी उन्होंने उचित नहीं समझा। आँखों को तरेरकर उन्होंने एक उड़ती–सी निगाह नचिकेता पर डाली, जिसका तात्पर्य शायद वह था–यहाँ से चले जाओ, व्यर्थ की बकवास मत करो, पर नचिकेता वहीं खड़ा रहा। उसने देखा कि पिताजी अब एक ऐसी गाय का दान करने जा रहे हैं, जो उठने की कोशिश करने पर भी नहीं उठ पा रही है और उधर दान लेनेवाले पुरोहित का मुख उदास हो गया है। फिर भी पिताजी उस गाय को बैठे ही बैठे दान कर रहे हैं। वह एकदम विह्वल हो गया। उसने तय कर लिया कि पिताजी को अब ऐसा घोर पाप नहीं करने दूँगा। झटपट गाय के पास खड़े होकर उसने फिर वही बात दुहराई, 'मेरे तात! इस सर्वमेध यज्ञ में मुझे किस ब्राह्मण को दान कर रहे हैं? मैं उसे देखूँ? मैं भी तो तुम्हारा ही हूँ न।'

उद्दालक की पाप–भावना ने कठोर क्रोध का स्वरूप धारण कर लिया। उनकी साँसें जोर–जोर से चलने लगीं। नथुने फड़कने लगे। दाँतों की उपरी पंक्ति ने निकले होंठ को चबा लिया। आँख से दाहक अंगार की ज्वाला–सी निकलने लगी। हाथ में लिये हुए कुश, अक्षत और जल को नीचे फेंकते हुए वह भीषण स्वर में बरस पड़े, 'पापात्मा कुपुत्र! तुझे मैं यमराज को दान कर रहा हूँ। जा, तू उसे शीघ्र ही देखेगा।'

विशाल यज्ञमंडप में एक छोर से दूसरे छोर तक उद्दालक के कठोर स्वर ने भीषण आतंक की लहर–सी फैला दी। जो जहाँ खड़े या बैठे थे, ठगे–से रह गए। धर्म के अवसर पर यह महान अनर्थ! मंगल में अमंगल! सबके देखते–देखते नचिकेता यमराज के घर जाने की तैयारी में लग गया। वह सचमुच धरती पर गिर पड़ा था और उसके मुख पर एक अपूर्व ज्योति की छटा विराजमान हो रही थी। कहने को तो उद्दालक के मुख से तीर के समान वह कठोर वचन निकल गया, पर उसकी भीषण यथार्थता ने उन्हें विकम्पित कर दिया। एकलौते प्रिय पुत्र के मृत्यु के घर जाने की बात को वह किस प्रकार बर्दाश्त कर सकते थे! चारों ओर से लोग दौड़ पड़े और घेरकर नचिकेता के पास खड़े हो गए।

सत्याग्राही नचिकेता जब इस लोक से पिता की आज्ञा प्राप्त कर मृत्यु के लोक जाने का निश्चय कर चुका तो उसे वापस कौन ला सकता था? उद्दालक का सहज वात्सल्य कृत्रिम क्रोध को दूर भगाकर उमड़ पड़ा पुत्र को स्नेह से अंक में उठाते हुए वह गद्‌गद कंठ से बोले, 'बेटा! तू कहाँ जा रहा है? मेरी बात का ध्यान न कर। मैं आवेश में यह सब कह गया। भला सोच तो सही, कि तेरे बिना मेरा बुढ़ापा कितना कठिन हो जाएगा। मेरे प्यारे! मैं पाप–पंक में फँस गया था, मेरी बुद्धि बिगड़ गई थी, तू उसका खयाल न कर।' परन्तु नचिकेता का लौटना आसान काम नहीं था। उसने दोनों हाथों को जोड़कर विनीत स्वर में कहा, 'पूज्य तात! आप बतलाते थे कि मेरी इक्कीस पीढ़ियों से लेकर आज तक किसी ने अपना वचन कभी भंग नहीं किया है। मैं भी चाहता हूँ कि अपनी वंश–मर्यादा को सुरक्षित रखूँ। पिता की (आपकी) आज्ञा का उल्लंघन, वह चाहे जिस दशा में भी हो, मैं कभी नहीं कर सकता। आप भी अपना वचन निभाइए और प्रसन्नता के साथ मुझे मृत्यु के घर सकुशल पहुँचने का आशीर्वाद दीजिए।' उद्दालक नचिकेता की इस निश्यच–भरी विनीत वाणी से विचलित हो गए। उसे गले से लगाते हुए क्षीण स्वर में उन्होंने कहा, 'मेरे प्यारे! मैं उस निर्मम मृत्यु के धर जाने का आशीर्वाद तुझे नहीं दे सकता जिसके स्मरण मात्र से मेरा हृदय काँप रहा है, उसके पास तू कैसे जाएगा? कुसुम के समान कोमल शरीर कठोर मृत्यु के पास जाने योग्य नहीं है। बेटा, मैंने अपराध किया है। भले ही मुझे वचन–भंग करने का पाप लगे पर मैं तुझे वहाँ कदापि नहीं जाने दूँगा।' नचिकेता ने आँखें खोलकर देखा तो उद्दालक की आँखों से आँसुओं की अविरल धारा बह रही थी। अपने

कोमल हाथों से आँसू को पोंछते हुए उसने कहा, 'पूज्य तात! मैं उस मृत्यु से तनिक भी नहीं डर रहा हूँ, जिसके लिए आप घबरा रहे हैं। आप मेरी चिन्ता छोड़ दीजिए और अपने पुण्यकर्मा पूर्वजों का स्मरण कीजिए, जिन्होंने प्राण गँवाकर भी अपने वचन रखे हैं। असत्य का व्यवहार स्वार्थी और पापी जन करते हैं। उस असत्य से कोई अमर नहीं होता। मेरी बड़ी इच्छा यह है कि मेरे इस कार्य से आपके और मेरे–दो पुरुषों के वचनों की रक्षा हो। मेरी ममता की डोर में बँधकर ही आप इतने विह्वल हो रहे हैं। मेरे न रहने पर आप अपना सर्वस्व त्याग कर सर्वमेध यज्ञ का महान पुण्य पाएँगे। पुत्र का यही कर्तव्य है कि वह अपना सर्वस्व गँवाकर भी पिता के वचनों का पालन करे, उसकी इच्छा की पूर्ति करे। मेरे तात! मैं इस अपूर्व अवसर को सामने पाकर छोड़ नहीं सकता। मुझे रोककर आप यज्ञ की समाप्ति में विलम्ब मत लगाइए। सर्वस्व त्यागकर सर्वमेध यज्ञ के इतिहास मे अपना अमर यश छोड़ जाइए।' पुत्र की दृढ़ निश्चय और प्रेरणा से भरी बातें सुनकर उद्दालक में कुछ आगे कहने की हिम्मत नहीं पड़ी। यज्ञमंडप में कुमार नचिकेता ने अपने पूज्य पिता के चरणों पर शीश धरकर मृत्युलोक का मार्ग ग्रहण किया। सारी जनमंडली चित्र के समान खड़ी देखती रह गई। वह अपने कर्तव्य–पथ पर कमर कसकर साहस और प्रसन्नता के साथ आगे चल पड़ा। मृत्यु अर्थात् यमराज के घर का मार्ग सचमुच बड़ा भयावना था। नचिकेता ने देखा कि अपने–अपने कर्मों के कारण लोग मृत्यु से किस तरह घबराते हैं। हृदय में छाई हुई पाप की रेखाओं से लोगों का मन इतना भयभीत है कि सारे मार्ग में हाहाकार मचा हुआ है। कोई अपने पुत्र के लिए रो रहा है तो किसी को पत्नी के वियोग का दुःख है। परंतु नचिकेता को तो सचमुच अपूर्व आनन्द मिल रहा था। प्रसन्नता और उत्साह के साथ उसने मार्ग की सारी कठिनाइयों का अंत कर दिया। पिता की आज्ञा के पालन करने में उसे जो शांति मिल रही थी, वह भूलोक के मायिक जीवन में कहीं नहीं थी। निर्भीक नचिकेता जिस समय मृत्यु के द्वार पर पहुँचा, उस समय संयोग से यमराज कहीं बाहर गए हुए थे। अतः द्वारपालों ने उसे भीतर घुसने की अनुमति नहीं दी। विवश होकर उसे बाहर एक वृक्ष के नीचे सुन्दर चबूतरे पर बैठकर यम की प्रतीक्षा करने को कहा गया। वह वहीं पर चुपचाप बैठकर यम की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ ऐसा काम पड़ गया था कि यमराज तीन दिनों तक बाहर से अपने घर लौट नहीं सके थे। नचिकेता अविचलित मन से वहीं शान्तिपूर्वक बैठकर उनकी प्रतीक्षा करता रहा। बीच–बीच में वह यह सोचकर पुलकित हो जाता कि अब मेरे पिताजी ने उन अच्छी गौओं को दान में देकर सर्वमेध यज्ञ को पूरा कर लिया होगा। चौथे दिन यमराज अपने पुर को वापस आए। भवन में प्रवेश करते हुए उन्होंने देखा कि एक परम तेजस्वी सुन्दर बालक हाथ जोड़कर सामने खड़ा है, उसमें भय की कोई रेखा नहीं है। यमराज ने मुस्कुराकर पूछा, 'कुमार! तुम कौन हो और यहाँ किस काम के लिए आए हो?'

नचिकेता के बोलने के पूर्व ही यमराज के दोनों द्वारपालों में से एक ने हाथ जोड़कर कहा, 'महाराज! यह तेजस्वी बालक तीन दिनों से यहीं बैठा हुआ है–न इसने कुछ खाया है, न कुछ पीया हैं।' यमराज का कुलिश–कठोर हृदय भी किशोर नचिकेता की करतूतों को सुनकर करूणा से उमड़ पड़ा। उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा, 'बेटा! तुम कौन हो और यहाँ क्यों आए हो? शीघ्र बताओ! मैं भी बिना तुम्हारा काम किए हुए अन्न–जल नहीं ग्रहण करूँगा।' नचिकेता यमराज की इस सहज उदारता को देखकर निहाल हो उठा। पिता ने यम के बारे में कितना गलत बतलाया था कि वह बड़े भयानक हैं, पर यह तो कितने दयालु हैं! सचमुच इनकी बातों को सुनकर मैं अपूर्व सन्तोष पा रहा हूँ। थोड़ी देर तक मृत्यु के देवता के तेजस्वी मुख की ओर निनिमेष ताकते हुए नचिकेता विनीत स्वर में बोला देव। मैं मुनिवर उद्दालक का पुत्र हूँ, मेरा नाम नचिकेता है। मेरे पूज्य पिंताजी ने अपने सर्वमेध यज्ञ में मुझे दक्षिणा के रूप में आपको दिया है। मैं यहाँ इसीलिए आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।' यमराज तेजस्वी ब्राह्मणकुमार नचिकेता की निर्भीकता पर ठगे–से खड़े रह गए। उन्होंने मन में सोचा–यज्ञ की दक्षिणा में सुकुमार पुत्र का दान और वो भी मुझको!

धन्य है वह पिता, और धन्य है यह पुत्र! ऐसे दृढ़ निश्चयी ब्राह्मण के लिए हमारा शतशः प्रणाम है। अपने जीवन में मैंने कभी ऐसे साहसी और सत्यनिष्ठ बालक को कहीं नहीं देखा है। ऐसे पुत्ररत्न के पैदा करनेवाले पिता सचमुच धन्य हैं। विचारों की बाढ़ में यमराज बहने लगे। इस तरह थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद उन्होंने नचिकेता के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, 'बेटा! मेरे यहाँ आते हुए तुम डरे नहीं? तुम्हारे पिता ने भी कुछ नहीं सोचा। धीर से धीर लोग भी यहाँ आने में विचलित हो जाते हैं। तुम धन्य हो।' नचिकेता ने कहा, 'देव! मैं इस संसार में केवल पाप से डरता हूँ। आप पाप तो हैं नहीं! मैं तो आपको सारे संसार को शांति देनेवाल मानता हूँ। आपके समान उपकारी इस जगत में दूसरा कौन है, जो मनुष्य के दीन–हीन सन्तप्त जीवन को चिर शांति देता हो?' कुमार नचिकेता की भोली–भाली बातों को सुनकर यमराज बहुत प्रसन्न हुए और बोले, 'कुमार! मुझे बहुत दुःख है कि तुम्हारे समान तेजस्वी निर्मल हृदय ब्राह्मणकुमार को मेरे दरवाजे पर तीन दिन तीन रात तक भूखा रहना पड़ा। बिना कुछ ओढ़े–बिछाए तुम इस चबूतरे पर पड़े रहे। मेरे अतिथ्य धर्म की इससे बड़ी हानि हुई है। मुझे सचमुच इसका बहुत खेद है। अपने इस खेद को कम करने के लिए ही मैं तुम्हें तीन वरदान देना चाहता हूँ। ब्राह्मणकुमार! सचमुच तुम्हारे जैसे साहसी बालक के लिए मैं तीनों लोकों में कोई भी वस्तु अदेय नहीं समझता।' यमराज की बातें सुनकर नचिकेता आनन्द के समुद्र में हिलोरें लेने लगा। वह कुछ क्षण के लिए सोचता रहा, फिर हाथ जोड़कर बोला, 'भगवन! मैं तो आप ही का दास हूँ। यह आपकी महत्ता है, जो मुझे एक अतिथि का सम्मान देकर वरदान देना चाहते हैं। मैंने कोई बड़ा काम भी नहीं किया है, पर उसके बदले मुझे वरदान देकर आप अपनी दयालुता का परिचय दे रहे हैं। लोग संसार में झूठे ही आपके नाम से भय खाते हैं, आपके समान सहज दयालु कौन है, जो अपना कर्तव्य–पालन करनेवाले को भी वरदान देता है!' नचिकेता इतना कहकर चुप हो गया। वह सोच रहा था कि मैंने कोई ऐसा काम नहीं किया है, जिसके बदले में वरदान की याचना की जाए। इसी बीच यमराज फिर बोल पड़े, 'कुमार! तुम संकोच मत करो, बिना तुम्हें वरदान दिये हुए मैं अन्न–जल तक नहीं ग्रहण कर सकता।' नचिकेता विवश हो गया। हाथ जोड़कर विनीत भाव से बोला, 'भगवन्! मैं अपने पूज्य पिता का इकलौता बेटा था। उनकी सेवा के लिए कोई दूसरा प्राणी मेरे घर पर नहीं है। मेरे यहाँ चले आने से उन्हें अपार कष्ट हो रहे होंगे, क्योंकि उनका शरीर भी शिथिल हो गया है। अतः मुझे पहला वरदान यही दीजिए कि मेरे पिताजी पूर्ण स्वस्थ और नीरोग हो जाएँ। मेरे विषय में उनकी चिन्ताएँ मिट जाएँ और उनका क्रोध मेरे ऊपर से दूर हो जाए।' यमराज ने दोनों हाथों को ऊपर उठाते हुए गम्भीर स्वर में कहा, 'ब्राह्मणकुमार! तुम्हारी यह अभिलाषा पूरी हो। तुम्हारे पिता संसार की सब प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त हो जाएँ। अब तुम मुझसे अपना दूसरा वरदान माँगों। नचिकेता थोड़ी देर तक मौन रहा, फिर हाथ जोड़कर बोला, 'देव! मैंने सुना है कि स्वर्ग में बड़ा सुख मिलता है। न वहाँ आपका (मृत्यु का) भय है, न बुढ़ापे का। भूख और प्यास भी वहाँ किसी को नहीं सताती। आप उस स्वर्गलोक के प्रमुख अधिकारी हैं। अतः उसे प्राप्त करने की विद्या तो अवश्य ही जानते होंगे। ऐसी कृपा कीजिए कि वह विद्या मुझे भी प्राप्त हो जाए। यह मेरी दूसरी अभिलाषा है।'' यमराज को आज प्रथम बार स्वर्गविद्या का सच्चा अधिकारी मिला था। अतः उसे देने में उन्हें अति प्रसन्नता हुई। गद्‌गद कंठ से वह बोले, 'नचिकेता! तुम्हें स्वर्गविद्या की प्राप्ति अपने आप ही होगी। अब तीसरा वरदान माँगो। तुम्हें वरदान देते समय मुझे सचमुच बड़ी प्रसन्नता हो रही है।' नचिकेता एक ऐसा ब्राह्मणकुमार था, जिसका पिता जीवन की उपासना में ही छला गया था। अतः उसने मन–ही–मन विचार किया कि जीवन–विद्या में कौन ऐसा गूढ़ रहस्य है, जिसके कारण मेरे पूज्य पिताजी के समान ब्रह्मदेवता भी ठगे गए! उस रहस्य को तो अवश्य जानना चाहिए। विनीत वाणी में उसने हाथ जोड़कर कहा, 'देव! आप जीवन–विद्या के अनन्य आचार्य कहे जाते हैं। मैं जीवन–विद्या के गूढ़ रहस्य को जानना चाहता हूँ, जिसके कारण मेरे पिताजी जैसे निःस्पृह एवं तपस्वी को भी धोखा हुआ

है। अतः आप कृपा कर मुझे उस जीवन–विद्या का तत्त्व बतलाइए। इसके सिवा अब मुझे किसी अन्य वरदान की आवश्यकता नहीं है।' नचिकेता की बातों को सुनकर यमराज स्तब्ध रह गए। उन्हें स्वप्न में भी यह ध्यान नहीं था कि दस साल के इस ब्राह्मण किशोर में सांसारिक तत्त्वों की इतनी आकुल जिज्ञासा होगी। थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद गम्भीर स्वर में जम्भाई लेते हुए बोले, 'कुमार! तुम जिस जीवन–विद्या की चर्चा कर रहे हो, वह तो बड़े–बड़े देवों के लिए भी दुर्लभ हैं। तुम शायद यह भूल गए कि मैं मृत्यु का देव हूँ, जीवन का नहीं। मेरा नाम ही मृत्यु है, जीवन–विद्या का मुझसे कोई सम्बन्ध नहीं है। तुम कोई दूसरा वर माँगो। यह वर पाकर भी तुम भला क्या करोगे?' नचिकेता इस तरह धोखे में पड़नेवाला बालक नहीं था। वह जानता था कि संसार में जीवन से बढ़कर दूसरी कोई चीज नहीं है जो जिन्दगी के सब तत्त्वों को जान लेगा, उसे धन–सम्पत्ति या स्वर्ग के राज से भी कोई मतलब नहीं रहेगा। अनमोल हीरे को छोड़कर मिट्टी का घरौंदा लेना उसे क्यों पसन्द आता? उसने दृढ़ता प्रकट करते हुए कहा, 'भगवन्! यदि वह जीवन–विद्या देवताओं को भी दुर्लभ है, तब तो मैं सब प्रकार का कष्ट सहन करके भी उसे पाना चाहूँगा। आप जो यह कह रहे हैं कि आप केवल मृत्यु के देव हैं, उसी से तो मुझे मालूम हुआ कि आप जीवन के तत्त्वों को पूर्णतया जानते हैं। क्योंकि जो अन्धकार को जानता है, वही प्रकाश की किरणों को भी पहचानता है। बिना एक के जाने दूसरे का परिचय कैसे हो सकता है? मैं तो समझता हूँ कि आपके समान इस जीवन–विद्या को सिखानेवाला दूसरा आचार्य मुझे कहीं अन्यत्र नहीं मिलेगा। देव! मैं इसके अतिरिक्त दूसरा कोई भी वर नहीं चाहता।' यमराज ने एक बार फिर नचिकेता को उस निश्चय से डिगाने का असफल प्रयत्न किया। उसने कहा, 'कुमार! तुम्हारे लिए मैं संसार का समस्त धन–वैभव देने को तैयार हूँ। तुम चाहो तो मैं सैकड़ों वर्ष की लम्बी उम्र तुम्हें दे दूँ। पृथ्वी का सारा राज तुम्हारा कर दूँ। ऐसे–ऐसे रथ, घोड़े और हाथी दे दूँ, जो इच्छा करते ही जहाँ चाहो, पहुँचा देंगे। दास, दासी, राजभवन, सुन्दर स्त्री, पुत्र–पौत्रादि जो कुछ भी चाहो, तुम्हारे लिए प्रस्तुत कर दूँ। स्वर्गलोक और मृत्युलोक का सारा भोग–विलास भी मैं तुम्हें दे सकता हूँ, मगर ऐसा वर मुझसे मत माँगो, जिसकी देने की सामर्थ्य मुझमें है ही नहीं।' नचिकेता चुपचाप यमराज की चतुरता–भरी बातें सुनता रहा। यमराज के इन प्रलोभनों का उसके मन पर कुछ भी असर नहीं पड़ा। हाथ जोड़कर विनम्र स्वर में वह बोला, 'मृत्यु के देव! आपसे यह कहना न पड़ेगा कि ये वस्तुएँ, जिन्हें आपने मुझे देने की चर्चा की है, कितनी नश्वर हैं। एक क्षण के लिए भी इनका कोई ठिकाना नहीं है। भोग–विलास, राज–काज, स्त्री–पुत्र, हाथी–घोड़े –यह सब मरने पर किस मनुष्य के साथ–साथ जाते हैं! लम्बी आयु भी तो एक न एक दिन खत्म हो ही जाएगी। मुझे तो ऐसी वस्तु की जरूरत है, जिसके पाने से मरना नहीं पड़ता। मैं तो उस जीवन–विद्या को पाना चाहता हूँ, जिसे जानकर आप कभी मरते नहीं। हे महारज! आपके समान परम शान्ति एवं सन्तोष देनेवाले देवता की शरण में आकर भी कौन ऐसा अभागा होगा, जो इन अशान्ति और असन्तोष पहुँचानेवाली नाशवान वस्तुओं की कामना करेगा? मुझे दूर मत फेंकिए। अपनी अमोघ कृपा का भाजन बनाकर इस तरह भुलावे में डालने की आशा आपसे नहीं करता। देव! मुझे जीवन–विद्या का शिष्य बनाइए और दूसरी बातें छोड़ दीजिए। मैं आपसे बिना इस विद्या की प्राप्ति किए कहीं अन्यत्र नहीं जा सकता।' यम की इस अग्नि–परीक्षा में उत्तीर्ण होकर नचिकेता का मुख–मंडल सुवर्ण के समान दमकने लगा उसकी दृढ़ निश्चय से भरी बातें सुनकर यमराज और भी प्रसन्न हो गए। उनकी सहज करूणा फिर जाग पड़ी। दोनों भुजाओं से बालक नचिकेता को उठाकर गले से लगाते हुए यमराज ने गद्‌गद स्वर में कहा, 'मुनिकुमार! तुम सचमुच धन्य हो। इस संसार में जन्म लेनेवाले मनुष्य मात्र के जीवन में एक बार ऐसा अवसर उपस्थित होता है, जब उसके सामने दो रास्ते दिखाई पड़ते हैं– एक होता है श्रेय का अर्थात् सच्चे सुख और वास्तविक कल्याण का तथा दूसरा होता है प्रेम का अर्थात् भोग–विलास से भरा हुआ–दूर से आकर्षक किन्तु आगे चलने पर अशान्ति, दुःख

और कठिनाइयों से पूर्ण। इनमें पहला उन्नति अर्थात् ऊपर चढ़ने का, मनुष्य से देवता बनने का है तथा दूसरा पतन अर्थात् ऊपर से नीचे गिरने का, मनुष्य से राक्षस बनने का है बेटा! ये दोनों मार्ग मैंने बतलाया है, वह देखने में बड़ा कंटकाकीर्ण और पथरीला है। शुरू–शुरू में उस पर चलना बहुत कठिन होता है और इसके विपरीत दूसरा पतन का जो श्रेय मार्ग है, वह शुरू–शुरू में बहुत सरल, मन को गुमराह करनेवाला और सुविधाओं से भरा हुआ दिखता है। मनुष्य को इनके पहचानने में धोखा हो ही जाता है। तुम्हारी तरह विरले ही लोग होते हैं, जो दूसरे को ठुकराकर पहले पर अग्रसर होते हैं। वत्स! वही मनुष्य सच्चा वीर, विवेकी और भाग्यशाली भी है, जो तुम्हारी तरह मानव–जीवन के तत्त्वों को ढूँढ़ने में सबकुछ भुला देता है। मेरे बार–बार के प्रलोभन दिखाने पर भी जो तुम अपने निश्चय से नहीं डिगे, वह असाधारण बात है। बड़े–बड़े देवता, ऋषि–मुनि भी उस स्थिति में विचलित हो जाते हैं। वत्स! तुम धन्य हो। अब मैं तुम्हें जीवन–विद्या की शिक्षा अवश्य दूँगा, क्योंकि तुम उसके सच्चे अधिकारी हो। संसार में बहुत–से लोग अपनी प्रतिभा तथा बुद्धि द्वारा इस जीव–विद्या को जानने का प्रयत्न करते हैं और थोड़े अंश में उसकी प्राप्ति भी उन्हें हो जाती है, पर उनके अपने जीवन में यथार्थ रूप में वह ओत–प्रोत नहीं होती। स्वार्थ, द्वेष, लोभ आदि के कारण उनकी आत्मा से उसका सहज सम्बन्ध स्थापित नहीं होता। फल यह होता है कि कच्चे पारे की तरह शरीर के अंग–प्रत्यंग से वह फूट पड़ती है। ऐसे अनधिकारी न केवल संसार को वरन् अपने आपको धोखा देते हैं। जो उस संजीवनी विद्या को सचमुच पाना चाहते हैं, वह सबसे पहले तुम्हारी तरह उसे धारण करने की योग्यता प्राप्त करें। इसके लिए उन्हें संसार की सत्–असत् वस्तुओं की भली भाँति परीक्षा कर लेनी चाहिए। उन्हें सांसारिक भोग–विलास से बिलकुल अलग हो जाना चाहिए। मुनिकुमार! अब मैं तुम्हें उस जीवन–विद्या का उपदेश दे रहा हूँ। आज तक तुम्हारे समान इस जीवन–विद्या का सच्चा अधिकारी मुझे कोई नहीं मिला। तुम सचमुच धन्य हो। नचिकेता यम के दोनों चरणों पर अपना शीश रखकर धृष्टता के लिए क्षमा माँगने लगा। उस समय उसका हृदय कृतज्ञता से भर उठा था। यम ने जीवन–विद्या या ब्रह्म–विद्या का यथेष्ट उपदेश देकर अन्त में कहा, 'हे तात! उस जीवन–विद्या का मूल तत्त्व यही है कि जब मनुष्य की सारी इच्छाओं से मरणशील मनुष्य अमर बनकर उसी जीवन में ब्रह्म की प्राप्ति कर ब्रह्मानन्द में लीन हो जाता है, उसके हृदय की सारी गाँठें खुल जाती हैं और वह कभी नहीं मरता। यही जीवन–विद्या का सारांश है, जिसे मैं तुम्हें बता चुका। अब तुम अपने घर को वापस जाओ और अपने पूज्य पिता के प्यासे नेत्रों को तृप्त करों।'

प्रश्न :

1. इस कहानी के आधार पर नचिकेता के व्यक्तित्व की विशेषताओं का विश्लेषण करें।
2. सम्पूर्ण कहानी को पढ़कर आप उस काल की शिक्षा के विषय में क्या अनुमान लगा सकते हैं जिससे नचिकेता जैसे बालक को अपने पिता के कार्य पर सवाल उठाने की शक्ति मिली। क्या आज की शिक्षा में वह तत्व है, विश्लेषण करें।
3. कहानी में एक तरफ नचिकेता अपने पिता के कार्य पर सवाल उठाता है तो दूसरी तरफ उनकी आज्ञा का पालन करते हुए यमराज के पास भी चला जाता है, इससे क्या प्रतीत होता है।
4. नचिकेता और यम के संवाद से शिक्षा के किन–किन तत्वों की समझ मिलती है, उनकी पहचान करे।

प्रस्तावित कार्य :

1. उपनिषदों से ज्ञानवर्धक कहानियों का संकलन कर सामूहिक रूप से चर्चा करें।

1.2

महाभारत से एकलव्य की कहानी

प्रस्तावना :

महाभारत के आदिपर्व में शामिल बहुचर्चित अंश एकलव्य प्रसंग' की अनेक व्याख्याएँ मिलती हैं। प्रायः इसकी व्याख्या प्राचीन भारतीय शैक्षिक व्यवस्था में वर्चस्व के उदाहरण के रूप में की जाती है। गुरु द्रोण की पक्षपाती दृष्टि से जहां क्षत्रिय धनुर्धर अर्जुन लाभान्वित हुए, वहीं धनुर्धर निषाद पुत्र एकलव्य कौशल रहित भी। पारंपरिक भारतीय समाज के वर्णवादी स्वरूप को समझने के लिहाज से यह प्रसंग बेहद महत्त्वपूर्ण है। पर इससे इतर हमें द्रोण–अर्जुन प्रसंग से अनेक शिक्षायी सूत्र भी हासिल होते हैं। एक तो यह कि साहस शिक्षा का वह आधारभूत प्रस्थान बिंदु है, जिसका कौशल निर्माण में अहम् स्थान है। अर्जुन की अपेक्षा अन्य पांडवो और कौरवों में यह भाव कम ही था। उसी तरह कथा के गिद्ध प्रसंग से यह शिक्षायी सूत्र उभरता है कि लक्ष्य प्राप्ति में एकाग्रता की आधारभूत भूमिका होती है। उसी तरह ब्रह्मास्त्र प्रसंग से यह बात उभरती है कि वह शिक्षायी मूल्य निरर्थक है जो विवेक रहित हो।

वैशम्पायन कहते हैं–राजन्, महातेजस्वी द्रोण भीष्म की पूजा स्वीकार करके कुरुवंशियों के यहाँ रहने लगे। भीष्म ने बहुत–सा धन दक्षिणा में देकर अपने पोतों को उनका शिष्य कर दिया। भीष्म ने धन–अन्न से भरा एक सुन्दर भवन द्रोण को दिया। महाबली द्रोणाचार्य, धृतराष्ट्र और पाण्डु के पुत्रों को शिष्य करके, आनन्द के साथ धनुर्वेद की शिक्षा देने लगे। एक दिन सबको एकान्त में बुलाकर द्रोण ने कहा–मेरे मन में एक इच्छा है; तुम प्रतिज्ञा करो कि अस्त्र शिक्षा समाप्त होने पर तुम मेरी वह इच्छा पूरी करोगे।

महाराज, द्रोण के ये वचन सुनकर सब कुरुवंश के कुमार चुप रहे। सबसे पहले अर्जुन ने उत्साह के साथ गुरु की इच्छा पूरी करने की प्रतिज्ञा की। द्रोणाचार्य ने अत्यंत संतुष्ट होकर प्यार से अर्जुन को हृदय से लगा लिया। वे बारम्बार उनका मस्तक चूमने लगे। आनन्द के मारे गुरु की आँखों से आँसू बहने लगे। अब महात्मा द्रोणाचार्यजी अपने शिष्यों को अनेक प्रकार के दिव्य और लौकिक अस्त्रों की शिक्षा देने लगे। अनेक देशों के राजकुमार और अन्यान्य असंख्य राजा द्रोण से अस्त्र–विद्या सीखने के लिए आने लगे। वृष्णि और अधकवंश के यादव भी द्रोणाचार्य से युद्धविद्या सीखने आये। .....अर्जुन को अस्त्रविद्या में विशेष रूचि थी और वे हर घड़ी गुरु की सेवा में रहते थे। इस कारण सब शिष्यों के बीच शिक्षा, भुजाओं के बल और उद्योग आदि में अर्जुन ही श्रेष्ठ निकले। अस्त्रविद्या में वे द्रोण के तुल्य हो गये। गुरु द्रोणाचार्य सभी शिष्यों को समान रूप से अस्त्र–प्रयोग, फुर्ती और अस्त्र चलाने की सफाई सिखाते थे किन्तु सब शिष्यों में अर्जुन ही सब बातों में अच्छे हुए। यह देखकर द्रोण ने सोचा कि युद्ध–विद्या के गूढ़ रहस्यों का उपदेश देने के योग्य पात्र अर्जुन के सिवा और कोई नहीं है।

द्रोणाचार्य इसी तरह सभी कुमारों को धनुर्वेद की शिक्षा देने लगे। वे नित्य अन्य शिष्यों को एक–एक कमण्डलु और अपने पुत्र अश्वत्थामा को एक कलश देकर जल लाने के लिए भेजते थे। कलश का मुंह कमण्डलु से बड़ा होने के कारण अश्वत्थामा सबसे पहले जल लेकर आते थे। अन्य शिष्य देर में आते थे। उसी अवकाश में द्रोणाचार्य अपने पुत्र को अस्त्रों के श्रेष्ठ प्रयोग बतला देते थे। अर्जुन अपनी बुद्धि से शीघ्र ही इस रहस्य को जान गये। वे वारुण अस्त्र से चटपट कमण्डलु भरकर गुरुपुत्र के साथ ही लौट आने लगे। इसी कारण अस्त्रविद्या जाननेवालों में श्रेष्ठ मेधावी अर्जुन विशेष–विशेष अस्त्रों की शिक्षा में गुरुपुत्र से किसी अंश में हीन नहीं हुए। वे बड़े यत्न के साथ मन लगाकर गुरु की सेवा करते हुए अस्त्रविद्या का

अभ्यास करते थे; इसी कारण गुरु द्रोणाचार्य उनपर बड़ी कृपा रखने लगे। अर्जुन अपने गुणों के कारण गुरु को सबसे बढ़कर प्यारे हो गये। उनको बाणशिक्षा और अस्त्रशिक्षा में सब समय तत्पर देख द्रोण ने रसोइये को एकान्त में बुलाकर कह दिया–तुम अर्जुन को कभी अंधेरे में भोजन न देना। और अर्जुन से यह भी न कहना कि गुरुजी ने मुझे यह आज्ञा दी है।

एक दिन अर्जुन भोजन कर रहे थे हवा का झोंका लगने से दिया बुझ गया। अर्जुन अंधेरे में ही खाने लगे। अभ्यास के कारण अर्जुन का हाथ ठीक मुंह के पास जाता था। अर्जुन ने समझ लिया कि यह अभ्यास की बात है। इसी तरह मैं अंधेरे में अस्त्रविद्या और बाण चलाने का भी अभ्यास कर सकता हूँ। बस अर्जुन रात को भी धनुष पर बाण चढ़ाकर निशानेबाजी का अभ्यास लगाने लगे। द्रोण ने रात को धनुष की डोरी का टंकार सुना। वे उठकर अर्जुन के पास आये। प्रसन्न होकर उन्होंने अर्जुन को गले लगा लिया और कहा–मैं तुमको ऐसा बनाने की विशेष चेष्टा करूंगा कि तुम्हारे समान धनुर्विद्या को जाननेवाला इस संसार में दूसरा न हो। यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ।

वैशम्पायन कहते हैं–अब द्रोणाचार्यजी सब कुमारों को हाथी, घोड़े, रथ और पृथ्वी पर का युद्ध, गदायुद्ध, तलवार चलाना, तोमर–प्रास–शक्ति आदि शस्त्र चलाना, संकीर्ण युद्ध आदि सिखाने लगे। किन्तु वे अर्जुन को हर एक बात विशेष रूप से मन लगाकर बार–बार बताते थे। आचार्य के ऐसे असाधारण शिक्षा–कौशल की बात सुनकर धनुर्वेद सीखने के लिए दूर–दूर से राजा और राजकुमार उनके पास आने लगे।

कुछ दिनों बाद एक दिन हिरण्यधनु नाम के निषाद–राज का पुत्र एकलव्य अस्त्रशिक्षा प्राप्त करने आचार्य के पास आया। वह निषाद था इससे और यह सोचकर कि राजकुमारों से बढ़ न जाय, द्रोण ने उसे शिष्य करना स्वीकार नहीं किया। एकलव्य द्रोण के चरणों में माथा नवाकर प्रणाम करके लौट गया। वन में जाकर उसने द्रोणाचार्य की मिट्टी की मूर्ति बनाकर सामने रख ली और उसी मूर्ति को आचार्य समझकर उसकी सेवा करता हुआ वह उसी के आगे बाण चलाने का अभ्यास करने लगा। श्रद्धा और नियम के साथ मन लगाकर अभ्यास करने से बाण चलाने में और अस्त्रों के प्रयोग में वह निपुण हो गया; बाण निकालने, चढ़ाने और चलाने में वह बड़ा ही फुर्तीला हो गया।

एक दिन धृतराष्ट्र और पाण्डु के पुत्र, द्रोणाचार्य से आज्ञा लेकर, रथों पर चढ़कर वन में शिकार खेलने गये। राजकुमारों का सामान और कुत्ता लिये हुए एक अनुचर उस वन में इधर–उधर टहल रहा था। राजकुमार भी शिकार की ताक में घूम रहे थे। वह कुत्ता घूमता हुआ उधर निकल गया जहाँ एकलव्य बाण चलाने का अभ्यास कर रहा था। काली मृगछाला और जटा धारण किये काले कुरुप धूलि–धूसरित एकलव्य को देखकर वह कुत्ता भूकने लगा। एकलव्य ने खीझकर बड़ी फूर्ती से सात बाण मारकर उस कुत्ते का मुँह भर दिया। ऐसा जान पड़ा, माने एक साथ ही सातों बाण उस कुत्ते के मुँह में घुस गये हैं। कुत्ता व्याकुल होकर भागता हुआ पाण्डवों के पास आया। उसकी यह दशा देखकर पाण्डवों को बड़ा अचरज हुआ। उस व्यक्ति के बाण चलाने की फुर्ती और शब्दवेध की सब लोग बड़ाई करने लगे। यह बात अपने में न देखकर सब राजकुमार बहुत ही लज्जित हुए। तब सब मिलकर उस बाण चलानेवाले को खोजने लगे। घूमते–घूमते एक जगह पर उन्होंने देखा, एक पुरुष खड़ा हुआ बराबर बाण चला रहा है। उस समय एकलव्य का रूप ऐसा विकृत हो रहा था कि किसी ने उसे नहीं पहचाना। राजकुमारों ने एकलव्य से पूछा–तुम कौन हो ? किसके लड़के हो। एकलव्य ने कहा हे वीरों, मैं हिरण्यधनु नाम के निषाद–राज का बेटा और द्रोणाचार्य का शिष्य हूँ। मैंने धनुर्वेद सीखने में बड़ा परिश्रम किया है। (तब बालकों ने उसे अच्छी तरह पहचान लिया।) वहाँ से आकर कुमारों ने द्रोणाचार्य से सब हाल कहा। राजन्, कुन्ती के पुत्र अर्जुन ने एकलव्य की बात याद करके एकान्त में आचार्य से जाकर कहा–गुरुजी, आपने प्रसन्न होकर, मुझे गले से लगाकर कहा था कि आपका

कोई भी शिष्य धनुर्विद्या में मुझसे श्रेष्ठ न होगा। फिर आपका शिष्य एकलव्य मुझसे और सारे संसार से बढ़कर बाणविद्या में निपुण क्यों है ?

वैशम्पायन कहते हैं–महाराज, थोड़ी देर तक एकलव्य के विषय में सोचकर अर्जुन को साथ लेकर द्रोणाचार्य उसी वन में गये। वहाँ पहुंचकर उन्होंने देखा, जटा वल्कल पहने एकलव्य लगातार बाण चला रहा है। उसके शरीर पर निरा मैल जम गया है, पर उधर उसका ध्यान नहीं है। दूर से आचार्य को आते देखकर एकलव्य ने पास आकर दण्डवत् की। सादर प्रणाम और विधिपूर्वक पूजा करके उसने कहा–यह आप का शिष्य सेवा में उपस्थित है; क्या आज्ञा है? एकलव्य अब हाथ जोड़कर आगे खड़ा रहा। द्रोण ने कहा–यदि सचमुच तुम मेरे शिष्य हो तो मुझे गुरु–दक्षिणा दो। एकलव्य ने खुश होकर कहा–गुरुजी, कहिए, क्या दूँ? आप गुरु हैं, इसलिए ऐसी कोई चीज नहीं जो आपको न दी जा सके।

महाराज, द्रोणाचार्य ने कहा–एकलव्य मैं गुरु–दक्षिणा में तुम्हारे दाहिने हाथ का अंगूठा मांगता हूँ। द्रोण के ये वचन सुनकर सत्यवादी एकलव्य ने, अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार प्रसन्नतापूर्वक उत्साह से दाहिने हाथ का अंगूठा काटकर गुरु को दे दिया। उसने फिर केवल उंगलियों के बल बाण का धनुष पर चढ़ाकर खींचा और चलाया भी, परंतु पहले की सफाई और फुर्ती नहीं रही। यह देखकर अर्जुन की चिन्ता दूर हुई, वे बहुत प्रसन्न हुए। ''पृथ्वी पर तुमसे बढ़कर धनुर्धर कोई न होगा,'' यह जो प्रतिज्ञा द्रोण ने अर्जुन से की थी, यह सत्य बनी रही।

परस्पर लागडांट रखनेवाले भीमसेन और दुर्योधन, ये दोनों द्रोणाचार्य के शिष्य गदा–युद्ध की शिक्षा में श्रेष्ठ हुए। अस्त्र–विद्या की गुप्त बातों में जानने में अश्व थामा सबसे बढ़कर हुए। नकुल और सहदेव तलवार चलाने में सबसे बढ़कर हुए। रथ के युद्ध में युधिष्ठिर सबसे सिरे रहे। किन्तु अर्जुन सभी बातों में सबसे श्रेष्ठ थे। अर्जुन में बुद्धि, एकाग्रता, बल और उत्साह सभी बातें थीं। सब अस्त्र उन्हें मालूम थे। गुरु की सेवा भी अर्जुन सबसे बढ़कर करते थे, इसी कारण अर्जुन सभी बातों में सबसे बढ़कर हुए। वे पृथ्वी पर सर्वत्र अतिरथी कहलाने लगे। द्रोणाचार्य सब शिष्यों को समान भाव से धनुर्वेद की शिक्षा देते थे, तथापि वीर्यशाली अर्जुन अपनी स्थिर बुद्धि के प्रभाव से सब कुमारों से बढ़कर हुए। भीमसेन बल में सबसे अधिक थे और अर्जुन धनुर्विद्या में सबसे बढ़कर थे। इस कारण धृतराष्ट्र के दुरात्मा पुत्र उन्हें देख न सकते थे।

अब अपने शिष्यों की शिक्षा समाप्त समझकर द्रोणाचार्य ने उनकी परीक्षा लेनी चाही। उन्होंने कारीगर से एक नकली गिद्ध बनवाकर एक वृक्ष पर, कुमारों से छिपाकर, रख दिया। उसी को निशाना बनाया। फिर सब कुमारों को बुलाकर वही गिद्ध का निशाना दिखाकर द्रोणाचार्य ने उनसे कहा–तुमलोग शीघ्र अपने–अपने धनुष लेकर उनपर बाण चढ़ाकर खड़े हो जाओ। जब हम कहें तब तुमको इस गिद्ध के सिर का निशाना उड़ाना होगा। एक–एक करके, जिससे मैं कहूँ वही, निशाने पर बाण चलावे।

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, अब द्रोण ने सबसे पहले युधिष्ठिर से कहा–कुमार, धनुष पर बाण चढ़ाओ। मेरे कहने पर उसे छोड़ना। शत्रु–दमन युधिष्ठिर ने गुरु की आज्ञा से धनुष पर बाण चढ़ाया। तब द्रोण ने पूछा–राजकुमार, इस वृक्ष की शाखा पर एक गिद्ध बैठा हुआ है; उसे देखते हो? युद्धिष्ठिर ने कहा–हाँ आचार्य, मैं उस गिद्ध को देख रहा हूँ। द्रोण ने फिर उनसे पूछा–इस वृक्ष को, मुझे और अपने भाइयों को भी देख रहे हो या नहीं ? युधिष्ठिर ने कहा–हाँ, मैं इस वृक्ष को, आपको, अपने भाइयों को और गिद्ध को भी देख रहा हूँ। यह सुनकर द्रोणाचार्य ने असंतुष्ट भाव से झिड़ककर युधिष्ठिर से कहा–हट जाओ; तुम इस निशाने को नहीं मार सकते। इसके बाद धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन आदि को भी वहाँ पर खड़ा करके द्रोण ने वही प्रश्न किया। सबने वही उत्तर दिया जो युधिष्ठिर ने दिया था। भीमसेन, नकुल, सहदेव और अन्यान्य

देशों के राजकुमारों को खड़ा करके द्रोण ने वही प्रश्न किया। सबने वहीं उत्तर दिया। सबको झिड़ककर आचार्य ने हटा दिया।

द्रोणाचार्य का अर्जुन को ब्रह्मास्त्र देना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, तब मुसकाते हुए द्रोणाचार्य ने अर्जुन को बुलाकर उनसे कहा–इस निशाने की ओर देखो; अब तुमको यह निशाना मारना होगा। तुम अभी धनुष पर बाण चढ़ाकर मेरी आज्ञा की बाट जोहो। गुरु की आज्ञा से धनुष पर बाण चढ़ाकर निशाने की ओर दृष्टि जमाकर अर्जुन प्रतीक्षा करने लगे। तब आचार्य ने उनसे पूछा–अर्जुन, इस वृक्ष को, गिद्ध को और मुझे देख रहे हो ? अर्जुन ने कहा–गुरुवर, मुझे केवल गिद्ध ही दिखाई पड़ रहा है : और कुछ भी नहीं। प्रसन्न होकर आचार्य ने फिर पूछा–अर्जुन, तुम गिद्ध का कैसा आकार देख रहे हो ? अर्जुन ने कहा–आचार्य मैं केवल गिद्ध का सिर देख रहा हूँ; उसके सारे शरीर पर मेरी दृष्टि नहीं है।

अर्जुन का उत्तर सुनकर आनन्द के मारे द्रोण के शरीर में रोमांच हो आया। तब उन्होंने आज्ञा दी कि बस, बाण चलाओ। गुरु की आज्ञा पाते ही अर्जुन ने बिना कुछ सोचे–बिचारे पैने क्षुरप्र बाण से उस गिद्ध का सिर काटकर गिरा दिया। अर्जुन को इस परीक्षा में सफलता प्राप्त करते देख आचार्य को बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने अर्जुन को गले लगा लिया। अर्जुन के इस कार्य को देखकर आचार्य ने निश्चय कर लिया कि बस, अर्जुन ही युद्ध में राजा द्रुपद को परास्त करेंगे।

कुछ समय बीतने पर एक दिन अंगिरा के वंश में उत्पन्न भारद्वाज के पुत्र द्रोणाचार्य शिष्यों को साथ लिये हुए गंगा में नहाने गये। ज्यों ही आचार्य जल के भीतर उतरे त्यों ही एक मगर ने आकर उनकी जांघ जोर से पकड़ ली। द्रोण ने आप छूटने के लिए समर्थ होकर भी अपने शिष्यों से कहा–तुमलोग तुरन्त इस मगर को मारकर मेरी रक्षा करो। द्रोण की बात समाप्त भी न होने पाई कि अर्जुन ने अत्यंत पैने पांच बाण उस पानी में डुबे हुए मगर को मारे। और सब शिष्य हक्का–बक्का से होकर अपनी–अपनी जगह पर खड़े रहे। अर्जुन को इस काम में भी सफलता प्राप्त करते देख आचार्य को दृढ़ निश्चय हो गया कि अर्जुन ही उनके सब शिष्यों में श्रेष्ठ हैं। अर्जुन पर आचार्य बहुत ही प्रसन्न हुए।

अर्जुन के बाणों से टुकड़े–टुकड़े होकर वह मगर मर गया और आचार्य की जांघ छूट गई। तब आचार्य प्रसन्न होकर महारथी महात्मा अर्जुन से कहा–हे वीर, प्रयोग और संहार के साथ यह अत्यंत अनिवार्य ब्रह्मशिर नाम का दिव्य अस्त्र मैं तुमको देता हूँ। इसे ग्रहण करो। पर देखो, मनुष्यों के ऊपर कभी यह अस्त्र न चलाना; क्योंकि मनुष्यों का तेज थोड़ा होता है। इस अस्त्र में सारे जगत् को जला डालने की शक्ति है। मनुष्य–लोक में इस अस्त्र को बहुत कम लोग जानते हैं। तुम सावधानी के साथ इस अस्त्र को धारण करना। इसके सिवा यह मैं तुमसे कहे देता हूँ कि यदि मनुष्य जाति के सिवा और कोई शत्रु तुम पर आक्रमण करे तो तुम उसे मारने के लिए इस अस्त्र का प्रयोग कर सकते हो ।

अर्जुन ने 'जो आज्ञा' कहकर श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर गुरु से वह अस्त्र ग्रहण किया। आचार्य ने उनसे कहा–अर्जुन, पृथ्वी पर तुम्हारे समान धनुर्विद्या का ज्ञाता और कोई न होगा।

शब्दार्थ : अतिरथी–महान योद्धा, क्षुरप्र : नुकीला, तीखा, धारदार

प्रश्न :

1. प्रस्तुत कहानी के आधार पर एक 'गुरू के रूप में' द्रोण के व्यक्तित्व का विश्लेषण करें।
2. क्या शिक्षा गुरू के बगैर नहीं हो सकती? एकलव्य वाले प्रसंग की विवेचना करते हुए समझाएं।
3. इस कहानी में एक तरफ गुरू दोणाचार्य ने अर्जुन को अपना प्रिय शिष्य मान रखा था तो वहीं दूसरी तरफ एकलव्य ने द्रोणाचार्य को अपना परम गुरू मान रखा था। जहां, एक शिष्य 'अर्जुन' सदैव गुरू द्रोणाचार्य के सानिध्य में शिक्षा ले रहा था तो वहीं एकलव्य उनकी प्रतिमा को ही गुरू मानकर धनुर्विद्या का अभ्यास कर रहा था। दोनो परिस्थितियों में इतना बड़ा अंतर होते हुए भी धनुर्विद्या में शिक्षा के दृष्टिकोण से अर्जुन एवं एकलव्य का ज्ञान लगभग समान था। इससे शिक्षा प्राप्त करने के संबंध में गुरू और शिष्य की भूमिका के विषय में क्या आशय निकाला जा सकता है।
4. इस कहानी में शिक्षा की कैसी छवि दिखाई पड़ती है, विभिन्न प्रसंगों के आधार पर विश्लेषण करें।
5. अपनी प्रतीमा से ही एक शिष्य को इतना कुछ सीखते हुए देख कर गुरू द्रोण के मन में क्या विचार आया होगा।
6. क्या एकलव्य को शिक्षा देने से मना करने के इकलौते दोषी केवल द्रोणाचार्य थे। विश्लेषण करें।
7. इस कहानी को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित कथनों पर टिप्पणी करें :

   अ. एक शिष्य में वह शक्ति निहित है कि वह अपने गुरू की प्रतिमा बनाकर स्वयं से हीं अपने ज्ञान का सृजन कर सकता है।

   ब. एक गुरू की प्रतिमा ही काफी है एक शिष्य को ज्ञानी बनाने के लिए।

   स. कोई एक शिष्य ही श्रेष्ठ हो सकता है, सभी नहीं।

प्रस्तावित कार्य :

1. आज के शिक्षकों के व्यक्तित्व और गुरू द्रोणाचार्य के व्यक्तित्व के मध्य क्या कोई सम्बंध देखा जा सकता है, अपने अध्ययन केन्द्र पर सभी के साथ मिलकर चर्चा करें।
2. गुरू–शिष्य से संबंधित प्राचीन कथाओं का संकलन करें।

1.3
पंचतंत्र की कथाएँ

प्रस्तावना :

'टिट्टिभ–समुद्र कथा' पंचतन्त्र के पाँच हिस्सों (मित्रभेद , मित्रसंप्राप्ति , काकोलूकीय, लब्धप्रणास और अपरीक्षितकारक) के पहले हिस्से में शामिल है। टिट्टिभ यानी टिटिहरी के जोड़े और समुद्र की यह कथा अपनी अद्‌भुत पठनीयता के कारण एक बेजोड़ रचना तो है ही , साथ ही इसमें अनेक शैक्षिक युक्तियाँ भी निहित हैं। इस कथा में दो अंतर्कथाएँ भी शामिल हैं। कम्बुग्रीव कछुआ और अनागत विधाता नामक मच्छ की कथाएँ। तीनों कथाएँ यह बतातीं हैं कि मुसीबतें इस अर्थ में मनुष्य के लिए अवसर मुहैया करातीं हैं कि वह बहुअर्थी ढंग से सोचने की दिशा में आगे बढ़ता है। जिसे हम समावेशी शिक्षा कहते हैं, वह हमें उस उदार शैक्षिक चिंतन की ओर ले जाने का प्रयास भी है, जिसमें अनेक शैक्षिक युक्तियों को शिक्षा के विराट कैनवास में शामिल करने की लोकतांत्रिक ज़रूरत को तरजीह दी जाती है। साथ ही यह भी कि कोई भी समस्या अपने साथ एक परिवेशगत सच्चाई भी लाती है, और उनसे बाहर निकलने की युक्तियों में परिवेश के प्रति सजगता अपरिहार्य है। कोई भी अध्यापन व्यवस्था या शैक्षिक युक्तियाँ अपने समय को ध्यान में रखकर रची जाती हैं, पर यह भी स्वाभाविक है कि कोई बच्चा या बच्ची जब पढ़–लिख कर जीवन के समर में उतरता है, तब कई बार वे युक्तियाँ, पुरानी पड़ जाती हैं। लिहाजा तथ्यों से अधिक महत्त्व कौशल हासिल करने का है, और सामजिक संरचनाओं को समझने की योग्यता हासिल करना भी। कहना न होगा शिक्षा की परिधि में इन्हें शामिल करना ज़रूरी है। उसी तरह अनेक बार आदर्श वाक्य या सूक्तियां इसलिए भी बेमानी हो जातीं हैं कि उनमें एक हद तक सामान्यीकरण की जल्दबाजी होती है, जबकि मनुष्य का व्यक्तिगत सच और परिवेशगत यथार्थ के विशेष सन्दर्भ हमसे आदर्श वाक्यों और सूक्तियों के व्यावहारिक पहलुओं को समझने के लिए प्रेरित कर रहे होते हैं। पंचतन्त्र की कथाओं में आप इस तरह के अनेक शैक्षिक पहलुओं की छवि देख पाएँगे/पाएँगी।

समुद्र तट पर टिटिहरी का एका जोड़ा रहता था। दोनों ने मिलकर समुद्र के किनारे ही रेत में अपना एक छोटा–सा घर बना लिया था। दोनों पति–पत्नी बड़े आनंद से रह रहे थे। कुछ समय के पश्चात् टिटिहरी ने गर्भधारण किया तो दोनों पति–पत्नी अपनी आने वाली संतान को लेकर तरह–तरह की योजनाएं बनाने लगे। संतान पैदा होने की खुशी तो हर प्राणी को होती है। संतान का प्रेम सबके हृदय में बराबर होता है।

टिटिहरी ने अपने पति से कहा–''स्वामी, पहले तो हम लोग अकेले थे, हमें कोई डर नहीं था। अब तो हमारे बच्चे होने वाले हैं, इसलिए हमें किसी सुरक्षित स्थान पर जाकर ही रहना चाहिए। ताकि हमारे बच्चों के जीवन को कोई खतरा न हो।'' अपनी पत्नी की बात सुनकर टिटिहरा बोला–''यहां सभी स्थान सुरक्षित हैं प्रिये। तुम चिंता मत करो।''

टिटिहरी ने कहा– ''नहीं प्रिये, यहां पूर्णिमा को समुद्र में ज्वार आता है तो लहरें मदमस्त हाथी तक को खींच ले जाती हैं। अतः हमें कोई सुरक्षित स्थान खोज लेना चाहिए।''

अपनी पत्नी की चिंता जानकर टिटिहरे ने कहा– ''प्रिये! मैंने कहा न। तुम समुद्र की चिंता मत करो। समुद्र में इतना साहस नहीं कि वह मेरी संतान को लील ले। वह मुझसे डरता है। तुम निश्चिंत होकर यहां अपने अण्डे दो।'' समुद्र इन दोनों का वार्तालाप सुन रहा था। टिटिहरे की गर्वोक्ति सुनकर उसने सोचा– ''यह तुच्छ पक्षी कितना अभिमानी हो गया है। आकाश के गिरने के भय से यह अपने दोनों पैरों को ऊपर उठा

कर सोता है और सोचता है कि इस तरह से यह आकाश को अपने पैरों से रोक लेगा। कौतूहल के लिए इसकी शक्ति को भी देख लेना चाहिए। इसके अण्डे अपहरण कर लेने के बाद यह क्या करता है, यह देख ही लूं।'' बस, यही सोचकर जब टिटिहरी ने अण्डे दिए और जब टिटिहरी और टिटिहरा भोजन की खोज में निकले हुए थे, तो समुद्र ने लहरों के बहाने से उनके अण्डों का अपहरण कर लिया।

वापस लौटने पर टिटिहरी ने अपने अण्डों को गायब पाया तो वह विलाप करती हुई अपने पति से बोली– ''स्वामी! मैंने पहले ही कहा था कि समुद्र की तरंगों से मेरे अण्डे नष्ट हो जाएंगे, किंतु अपनी मूर्खता और अभिमान के कारण आपने मेरी बात नहीं सुनी। देख लो, मेरी आशंका बिल्कुल सही साबित हुई। किसी ने ठीक ही कहा है कि जो व्यक्ति अपने हित चितंकों और मित्रों की उपेक्षा करता है, वह अपनी मूर्खता के कारण उसी प्रकार विनष्ट हो जाता है, जिस प्रकार कि एक मूर्ख कछुआ लकड़ी से गिरकर अपने प्राणों से हाथ धो बैठा था।'' टिटिहरे ने पूछा–''वह कैसे?'' टिटिहरी बोली– ''बताती हूं, सुनो!''

हितैषी की सीख मानो

एक तालाब में कंबुग्रीव नाम का एक कछुआ रहता था। उसी तालाब में प्रतिदिन आने वाले दो हंस, जिनका नाम संकट और विकट था, उसके मित्र थे। तीनों में इतना स्नेह था कि रोज शाम होने तक तीनों मिलकर बड़े प्रेम से कथालाप किया करते थे।

एक साल उस वन प्रदेश में वर्षा नहीं हुई। इस कारण सरोवर का पानी धीरे–धीरे सूखने लगा। यह स्थिति देखकर हंसों को कछुए के प्रति चिंता होने लगी। उन्होंने दुखी भाव से कछुए से कहा– ''मित्र, यह सरोवर तो अब सूख चला है। अब तो इसमें थोड़ा–सा जल और कीचड़ ही बचा है। जल के अभाव में तुम्हारा जीवन कैसे बचेगा, यह सोचकर हमें बहुत चिंता हो रही है।''

कछुआ बोला– ''जल के अभाव में मेरा जीवित बच पाना संभव नहीं है। आप दोनों को मेरे बचने का कोई उपाय ढूंढ़ना चाहिए। आपत्ति में धैर्य धारण करने से आपत्ति से छुटकारा मिल सकता है। ऐसे में मित्रों को भी आपत्ति से बचने का कोई मार्ग सुझाना चाहिए।''

बहुत विचार के बाद यह निश्चय किया गया कि दोनों हंस जंगल से एक बांस की छड़ी लाएंगे। कछुआ उस छड़ी के मध्यभाग को मुख से पकड़ लेगा। हंसों का काम होगा कि वे दोनों ओर से छड़ी को मजबूती से पकड़कर तालाब के किनारे तक उड़ते हुए पहुंचेंगे।

यह निश्चय होने के बाद दोनों हंसों ने कछुए से कहा–मित्र, हम तुझे इस प्रकार उड़ाते हुए दूसरे तालाब तक ले जाएंगे, किंतु एक बात का ध्यान रखना, कहीं बीच में लकड़ी को मत छोड़ देना। नहीं तो तू मर जाएगा। कुछ भी हो, पूरा मौन बनाए रखना। प्रलोभनों की ओर ध्यान न देना। यह तेरी परीक्षा का मौका है।''

कछुए ने उन्हें आश्वस्त किया कि वह इस दौरान बिल्कुल भी नहीं बोलेगा। तब योजनानुसार व्यवस्था करके वे तीनों आकाश मार्ग से उड़ चले। आकाश मार्ग से जाते समय कछुए ने नीचे झुककर उन नागरिकों को देखा जो गरदन उठाकर आकाश में हंसों के बीच किसी चक्राकार वस्तु को उड़ता देखकर कौतूहलवश शोर मचा रहे थे। शोर को सुनकर कम्बुग्रीव से रहा नहीं गया। वह बोल उठा–'' अरे! यह शोर कैसा है?'' ज्योंहि उसने अपना मुख खोला, लकड़ी उसके मुख से छूट गई और वह उंचाई से नीचे आ गिरी। कछुआ जब नीचे गिरा तो लोगों ने उसके टुकड़े–टुकड़े कर डाले।

यह कहानी सुनाकर टिटिहरी ने कहा– ''इसीलिए मैं कहती हूं कि अपने हितचिंतकों की राय पर न चलने वाला व्यक्ति नष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त वे बुद्धिमान सफल होते हैं जो बिना आई विपत्ति का पहले से ही उपाय सोचते हैं, और वह भी उसी प्रकार सफल होते हैं जिनकी बुद्धि तत्काल अपनी रक्षा का उपाय

सोच लेती है। पर 'जो होगा, देखा जाएगा' कहने वाले शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।'' टिटिहरे ने पूछा– ''वह कैसे?'' टिटिहरी बोली– ''सुनो, सुनाती हूं।''

दूरदर्शी बनो

एक तालाब में तीन मछलियां रहती थीं। उनके नाम थे–अनागत विधाता, प्रत्युत्पन्नमति और यद्भविष्य। एक दिन तालाब के पास से गुजर रहे मछुआरों ने उन्हें देख लिया और सोचा, इस तालाब में खूब मछलियां हैं। आज तक कभी इसमें जाल नहीं डाला है, इसलिए यहां खूब मछलियां हाथ लगेंगी। उस दिन शाम अधिक हो गई थी, खाने के लिए मछलियां भी पर्याप्त मिल चुकी थीं, इसलिए अगले दिन सुबह ही वहां आने का निश्चय करके मछुआरे चले गए।

अनागत विधाता नाम की मछली ने उनकी बात सुन कर अन्य मछलियों को बुलाया और कहा–''आपने उन मछुआरों की बात सुन ही ली है। अब रातों रात ही हमें यह तालाब छोड़कर दूसरे तालाब में चले जाना चाहिए। एक क्षण भी देर करना उचित नहीं।''

प्रत्युत्पन्नमति ने भी उसकी बात का समर्थन किया। उसने कहा– ''परदेश में जाने का डर प्रायः सबको नपुंसक बना देता है। अपने ही कुएं का जल पिएंगे–यह कहकर जो लोग जन्मभर खारा पानी पीते हैं, वे कायर होते हैं। स्वदेश का यह राग वही गाते हैं, जिनकी कोई और गति नहीं होती।'' उन दोनों की बात सुनकर यद्भविष्य नाम की मछली हंस पड़ी। उसने कहा– ''किसी राह जाते आदमी के वचनमात्र से डरकर हम अपने पूर्वजों के देश को नहीं छोड़ सकते। देव अनुकूल होगा तो हम यहां भी सुरक्षित रहेंगे और प्रतिकूल होगा तो अन्यत्र जाकर भी किसी के जाल में फंस जाएंगे। मैं तो नहीं जाती, तुम्हें जाना हो तो जाओ।''

उसका आग्रह देखकर अनागत विधाता और प्रत्युत्पन्नमति दोनों सपरिवार पास के तालाब में चली गईं। यद्भविष्य अपने परिवार के साथ उसी तालाब में रही। अगले दिन सुबह मछुआरों ने उस तालाब में जाल फेंककर सब मछलियों को पकड़ लिया। यह कथा सुनाकर टिटिहरी ने कहा– ''इसीलिए मैंने कहा है कि जो लोग–जो होगा, देखा जाएगा या 'समय आने पर देखेंगे' की नीति पर अमल करते हैं, अंततः उनका विनाश ही हो जाता है।'' यह सुनकर टिटिहरा बोला–तुम शायद मुझे यद्भविष्य मछली की तरह समझ रही हो। मैं उसकी तरह निष्कर्म नहीं हूं। अब तुम मेरी बुद्धि का चमत्कार देखना मैं अपनी चोंच से इस विशाल समुद्र के जल को सोख लूंगा।''

टिटिहरी ने अपने पति को समझाते हुए कहा– ''विशाल समुद्र से लड़ना उचित नहीं है स्वामी। असमर्थ पुरुष का क्रोध स्वयं उसका ही विनाश कर देता है। दुश्मन के बल को जाने बिना उससे युद्ध करना मूर्खता है। आग की ओर बढ़ने वाला पतंग स्वयं विनाश की ओर बढ़ता है।'' टिटिहरा फिर भी अपनी चोंच से समुद्र को सुखा डालने की डींगे मारता रहा। तब टिटिहरी ने फिर उसे मना करते हुए कहा कि जिस समुद्र को गंगा–यमुना जैसी सैकड़ों नदियां निरंतर पानी से भर रही हैं, उसे तू अपनी बूंदभर उठाने वाली चोंच से कैसे खाली कर देगा? टिटिहरा तब भी अपने हठ पर तुला रहा। तब टिटिहरी ने कहा– ''यदि तूने समुद्र को सुखाने की हठ ही कर ली है तो अन्य पक्षियों की भी सलाह लेकर काम कर। कई बार छोटे–छोटे प्राणी मिलकर अपने से बहुत बड़े जीव को हरा देते हैं, जैसे चिड़िया, कठफोड़े और मेंढक ने मिलकर हाथी को मार दिया था।'' टिटिहरे ने पूछा– ''वह कैसे?'' टिटिहरी बोली– ''सुनो सुनाती हूं।''

एक और एक ग्यारह

किसी जंगल में तमाल के एक वृक्ष पर एक चिड़िया और चिड़ा घोंसला बनाकर रहते थे। समय पाकर चिड़िया ने अण्डे दिए। परंतु एक दिन चिड़िया अपने अण्डों को गर्मी दे रही थी और चिड़ा दूसरी डाल पर

बैठा उसे देख रहा था, तो उसी समय एक हाथी वहां से निकला। धूप से बचने के लिए वह उसी वृक्ष के नीचे विश्राम करने के लिए पहुंच गया जिस पर चिड़ा और चिड़िया ने अपना घोंसला बना रखा था। उस हाथी ने अपनी सूंड से पकड़कर वही शाखा तोड़ दी जिस पर चिड़ियों का घोंसला था। अण्डे जमीन पर गिरकर टूट गए।

चिड़िया अपने अण्डों के टूटने से बहुत दुखी हो गई। उसका विलाप सुनकर उसका मित्र कठफोड़ा भी वहां आ गया। उसने शोकातुर चिड़ा–चिड़ी को धीरज बंधाने का बहुत यत्न किया, किंतु उनका विलाप शांत नहीं हुआ। चिड़िया ने कहा– ''यदि तू हमारा सच्चा मित्र है तो मतवाले हाथी से बदला लेने में हमारी सहायता कर। उसको मारकर ही हमारे मन को शांति मिलेगी।'' कठफोड़े ने कुछ सोचने के बाद कहा– ''यह काम हम दोनों का ही नहीं है। इसमें दूसरों से भी सहायता लेनी पड़ेगी। एक मक्खी मेरी मित्र है, उसकी आवाज बड़ी सुरीली है, उसे भी बुला लेता हूं।''

मक्खी ने भी जब कठफोड़े और चिड़िया की बात सुनी तो वह मतवाले हाथी को मारने में उनका सहयोग करने को तैयार हो गई। किंतु उसने यह भी कहा कि यह काम हम तीन का ही नहीं, हमें औरों की भी सहायता लेनी चाहिए। मेरा मित्र एक मेंढक है, उसे भी बुला लाऊं।'' तीनों ने जाकर मेघनाद नाम के मेंढक को अपनी दुखभरी कहानी सुनाई। मेंढक उनकी बात सुनकर मतवाले हाथी के विरुद्ध षड्यंत्र में शामिल हो गया। उसने कहा–जो उपाय मैं बतलाता हूं वैसा ही करो, तो हाथी अवश्य मर जाएगा। पहले मक्खी हाथी के कानों में वीणा–सदृश मीठे स्वर का आलाप करे। हाथी उसे सुनकर इतना मस्त हो जाएगा कि आंखें बंद कर लेगा। कठफोड़ा उसी समय हाथी की आंखों को चोंच चुभो–चुभोकर फोड़ दे। अंधा होकर हाथी जब पानी की खोज में इधर–उधर भागेगा तो मैं एक गहरे गड्ढे के किनारे बैठकर आवाज करूंगा। मेरी आवाज से वह वहां तालाब होने का अनुमान करेगा और उधर ही आएगा। वहां आकर वह गड्ढे को तालाब समझकर उसमें उतर जायेगा। उस गड्ढे से निकलना उसकी शक्ति से बाहर होगा। देर तक भूखा–प्यासा रहकर वह वहीं मर जायेगा।'' अंत में मेंढक की बात मानकर सबने मिल–जुल कर हाथी को मार ही डाला। यह कथा सुनाकर टिटिहरी ने अपने पति से कहा– ''तभी तो मैं कहती हूं कि छोटे और निर्बल भी मिल–जुलकर बड़े–बड़े जानवर को मार सकते हैं।'' टिटिहरा बोला– ''अच्छी बात है। मैं भी दूसरे पक्षियों की सहायता से समुद्र को सुखाने का यत्न करूंगा।'' यह कहकर उसने बगुले, सारस, मोर आदि अनेक पक्षियों को बुलाकर अपनी दुखभरी कथा सुनाई। उन्होंने कहा– ''हम तो अशक्त हैं, किंतु हमारा मित्र गरुड़ अवश्य इस सम्बन्ध में हमारी सहायता कर सकता है।''

तब सब पक्षी मिलकर गरुड़ के पास जाकर रोने और चिल्लाने लगे– ''गरुड़ महाराज, आपके रहते हमारे पक्षीकुल पर समुद्र ने यह अत्याचार कर दिया। हम इसका बदला चाहते हैं। आज उसने टिटिहरी के अंडे नष्ट किए हैं, कल वह दूसरे पक्षियों के अण्डों को बहा ले जाएगा। इस अत्याचार की रोकथाम होनी चाहिए अन्यथा सम्पूर्ण पक्षीकुल नष्ट हो जाएगा।'' गरुड़ ने पक्षियों का रोना सुनकर उनकी सहायता करने का निश्चय किया। उसी समय उसके पास भगवान् विष्णु का दूत आया। उस दूत द्वारा भगवान् विष्णु ने उसे सवारी के लिए बुलाया था। गरुड़ ने दूत से क्रोधपूर्वक कहा कि वह विष्णु भगवान् को कह दे कि वह दूसरी सवारी का प्रबंध कर लें। दूत ने गरुड़ से क्रोध का कारण पूछा तो गरुड़ ने समुद्र के अत्याचार की कथा सुनाई।

दूत के मुख से गरुड़ के क्रोध की कहानी सुनकर भगवान् विष्णु स्वयं गरुड़ के घर आए। वहां पहुंचने पर गरुड़ ने प्रणाम करके विनम्र शब्दों में कहा– '' भगवन! आपके आश्रय का अभिमान करके समुद्र ने मेरे साथी पक्षियों के अण्डों का अपहरण कर लिया है। इस तरह समुद्र ने मुझे भी अपमानित किया है। मैं समुद्र से इस अपमान का बदला लेना चाहता हूं।'' यह सुनकर भगवान् विष्णु बोले– ''तुम्हारा क्रोध युक्ति–युक्त

है। समुद्र को ऐसा काम नहीं करना चाहिए था। चलो, मैं अभी समुद्र से उन अण्डों को वापस लेकर टिटिहरी को दिला देता हूं। उसके बाद हमें अमरावती जाना है।'' तब भगवान् विष्णु ने अपने धनुष पर आग्नेय बाण को चढ़ाकर समुद्र से कहा– '' दुष्ट, अभी उन सभी अण्डों को वापस दे दे, नहीं तो तुझे क्षणभर में सुखा दूंगा।'' भगवान् विष्णु के भय से समुद्र ने उसी समय टिटिहरी के अण्डे वापस कर दिए। दमनक ने इन कथाओं को सुनाने के बाद संजीवक से कहा– ''इसीलिए मैं कहता हूं कि शत्रुओं का बल जानकर ही युद्ध के लिए तैयार होना चाहिए।'' दमनक की बात सुनकर संजीवक बोला– ''मित्र, बात तो तुम्हारी ठीक है, पर मैं यह कैसे मान लूं कि पिंगलक मुझसे रुष्ट है और मुझे मारना चाहता है, क्योंकि अभी कल तक तो वह मेरे प्रति बहुत स्नेहभाव ही रखता आया है। उसकी दुष्टता का तुम्हारे पास कोई ठोस प्रमाण हो तो कहो, तभी मैं आत्मरक्षा के लिए उसे मारने का प्रबंध करूं।'' दमनक बोला– ''इसमें प्रमाण की क्या आवश्यकता है। यदि उसके मन में तुम्हें मारने का पाप होगा तो उसकी आंखें लाल हो जाएंगी, भवें चढ़ जाएंगी और वह होंठों को चाटता हुआ तुम्हारी ओर क्रूर दृष्टि से देखेगा। अच्छा तो यह है कि तुम रातों रात चुपके से चले जाओ। आगे तुम्हारी इच्छा।'' यह कहकर दमनक अपने साथी करटक के पास आया। करटक ने उससे भेंट करते हुए पूछा–''कहो दमनक! कुछ सफलता मिली तुम्हें अपनी योजना में?'' दमनक बोला– ''मैंने तो नीतिपूर्वक जो कुछ भी करना उचित था, कर दिया, आगे सफलता देव के अधीन है। पुरुषार्थ करने के बाद भी यदि कार्य सिद्ध न हो तो हमारा दोष नहीं।'' करटक बोला–''तेरी क्या योजना है? किस तरह नीतियुक्त काम किया है तुने? मुझे भी बता।'' दमनक बोला–'' मैंने झूठ बोलकर दोनों को एक–दूसरे का ऐसा बैरी बना दिया है कि वे भविष्य में कभी एक–दूसरे का विश्वास नहीं करेंगे।'' यह सुनकर करटक बोला–''यह तूने अच्छा नहीं किया, मित्र! दो स्नेही हृदयों में द्वेष का बीज बोना बुरा काम है।'' दमनक बोला–''तुम नीतिशास्त्र की बात नहीं जानते करटक! इसीलिए इस प्रकार दुख व्यक्त कर रहे हो। शत्रु और रोग को कभी बढ़ने नहीं देना चाहिए। जो व्यक्ति ऐसा नहीं करता वह शत्रु के बलवान हो जाने और रोग के बढ़ जाने पर अन्ततः उन्हीं के द्वारा मारा जाता है। संजीवक ने हमारा मंत्रीपद हथिया लिया था। पिंगलक उसी की सलाह से ही काम करने लगा था। वह हमारा शत्रु था। शत्रु को परास्त करने में धर्म–अधर्म नहीं देखा जाता। आत्मरक्षा सबसे बड़ा धर्म है। स्वार्थ–साधन ही सबसे महान कार्य है। स्वार्थ–साधन करते हुए कपट–नीति से ही काम लेना चाहिए, जैसे चतुरक नामक एक गीदड़ ने किया था।'' करटक ने पूछा–''इस चतुरक गीदड़ की क्या कहानी है?'' दमनक बोला–''सुनाता हूं, सुनो।''

कपटी पर न करें विश्वास

किसी वन में वज्रदंष्ट्र नाम का एक शेर रहता था। उसके दो अनुचर थे–चतुरक नाम का एक सियार (गीदड़) और क्रकमुख नाम का एक भेड़िया। ये दोनों हर समय शेर के साथ रहते थे। एक दिन शेर ने जंगल में बैठी एक गर्भिणी मादा ऊंट का शिकार किया। शेर ने ऊंटनी का पेट फाड़ा तो उसके अंदर ऊंट का एक छोटा–सा बच्चा निकला। शेर को उस बच्चे पर दया आ गई और वह उसे अपने साथ अपनी मांद पर ले आया। उसने बच्चे से कहा–''अब तुझे मुझसे डरने की जरूरत नहीं। मैं तुझे नहीं मारूंगा। तू जंगल में आनंद के साथ विहार कर।'' ऊंट के बच्चे के कान शंकु (कील) जैसे थे इसलिए शेर ने उसका नाम रख दिया–शंकुकर्ण। वह सिंह परिवार के साथ रहकर बड़ा होने लगा। एक क्षण के लिए भी शेर के अनुचरों के साथ कहीं बाहर नहीं जाता था। जब वह बड़ा हो गया तब भी वह सिंह परिवार के साथ घुला–मिला रहता था। एक दिन उस जंगल में एक मतवाला हाथी आ गया। उससे शेर की जबरदस्त लड़ाई हुई। इस लड़ाई में शेर इतना घायल हो गया कि उसके लिए एक कदम आगे चलना भी भारी हो गया। उसने अपने साथियों से कहा कि तुम कोई ऐसा शिकार ले आओ जिसे मैं यहां बैठा–बैठा ही मार दूं। तीनों साथी शेर की आज्ञानुसार शिकार की तलाश करते रहे, लेकिन बहुत यत्न करने पर भी कोई शिकार हाथ नहीं आया।

चतुरक ने सोचा, यदि शंकुकर्ण को मरवा दिया जाए तो कुछ दिन की निश्चिंतता हो जाए। किंतु शेर ने उसे अभय वचन दिया है, कोई युक्ति ऐसी निकालनी चाहिए कि वह वचन–भंग किए बिना इसे मारने को तैयार हो जाए। अंत में चतुरक ने एक युक्ति सोच ली। वह शंकुकर्ण से बोला–''शंकुकर्ण, मैं तुझे एक बात तेरे लाभ की ही कहता हूं। स्वामी का भी इसमें कल्याण हो जाएगा। हमारा स्वामी शेर कई दिन से भूखा है उसे यदि तू अपना शरीर दे दे तो वह कुछ दिन बाद दुगुना होकर तुझे मिल जाएगा और शेर की भी तृप्ति हो जाएगी।'' शंकुकर्ण बोला–''मित्र, शेर की तृप्ति में तो मेरी भी प्रसन्नता है। स्वामी को कह दो कि मैं इसके लिए तैयार हूं। किंतू इस सौदे में धर्म हमारा साक्षी होगा।'' शंकुकर्ण मान गया तो वे तीनों शेर के पास गए। चतुरक ने कहा–''स्वामी कोई भी जीव हाथ नहीं लगा। सूर्यास्त भी हो गया है अब तो एक ही उपाय है, यदि आप शंकुकर्ण को इस शरीर के बदले दुगुना शरीर देना स्वीकार करें तो वह अपना शरीर उधार देने को तैयार है।'' शेर बोला–''यदि ऐसी बात है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। तुम धर्म का साक्षी मानकर इसके शरीर को ले सकते हो।'' शेर की स्वीकृति मिलते ही भेड़िये और सियार ने उस ऊंट के शरीर को चीर डाला। ऊंट के मर जाने के बाद शेर ने चतुरक से कहा–''मैं नदी में स्नान करके आता हूं। तब तक तुम इस ऊंट के शरीर की रक्षा करना।'' शेर के जाने के बाद चतुरक ने सोचा–''कोई युक्ति ऐसी होनी चाहिए कि वह अकेला ही ऊंट को खा सके।'' यह सोचकर उसने क्रकमुख से कहा–''मित्र, तू बहुत भूखा है, इसलिए तू शेर के आने से पहले ही इस ऊंट को खाना शुरू कर दे। मैं शेर के सामने तेरी निर्दोषता सिद्ध कर दूंगा, चिंता न कर।'' चतुरक के कहने पर क्रकमुख शिकार पर टूट पड़ा। उसने अपने पैने दांतों से ऊंट का पेट फाड़ डाला और ऊंट का दिल निकाल कर खा गया। तभी चतुरक को शेर वापस आता दिखाई दिया। वह ऊंट के शरीर के पास पहुंचा। चतुरक और क्रकमुख उसे देखकर दूर जा बैठे। शेर ने शिकार पर निगाह डाली तो संदेह की दृष्टि से दोनों की ओर देखते हुए उससे पूछा–''ऊंट का दिल अपने स्थान पर नहीं है। बताओ किसने मेरे शिकार को जूठा किया?'' यह सुनकर भेड़िया, सियार की ओर देखने लगा। वह थर–थर कांप रहा था। चतुरक हंसकर बोला–''अब मेरे मुंह की ओर क्या देख रहा है? शिकार को जूठा करते समय तो मुझसे पूछा नहीं था। अब अपनी करनी का फल भोग।'' सियार की बात सुनकर अपनी मृत्यु को निकट देख भेड़िया वहां से भाग निकला। सियार अपनी चतुराई पर मन ही मन मुस्कराने लगा। उधर जैसे ही सिंह ने ऊंट को खाना आरंभ किया, तभी उसे दूर से ऊंटों का एक काफिला अपनी ओर आता दिखाई दिया। सबसे आगे वाले ऊंट के गले में घंटा बंधा हुआ था। उस घण्टे की ध्वनि सुनकर शेर ने चतुरक से पूछा–''यह कैसी आवाज है। मैं तो इसे पहली बार सुन रहा हूं।'' इस पर चालाक गीदड़ ने कहा–''स्वामी! लगता है यमराज आपसे नाराज हो गए हैं। आपने धर्म को साक्षी मानकर इस ऊंट की हत्या करवा दी और फिर इसे दुगुने शरीर के साथ जिंदा भी नहीं किया। इसीलिए वे आपसे बेहद कुपित हैं। उन्होंने एक हजार ऊंटों को आपको मारने के लिए भेज दिया है। इसमें शंकुकर्ण के कई पूर्वज भी हैं। आगे वाले ऊंट के गले में घण्टा बंधा हुआ है। यह उसी घंटे की आवाज सुनाई दे रही है। अब आपको अपनी जान बचानी है तो जल्दी से यहां से भाग जाइए।'' सियार की बात सुनकर शेर इतना डरा कि वह तत्काल सिर पर पैर रखकर भाग खड़ा हुआ। इस तरह चतुरक को पूरे ऊंट का मांस खाने को मिल गया। यह कथा सुनाकर दमनक बोला–''इसीलिए मैं तुम्हें कहता हूं कि स्वार्थ–साधन में छल अथवा बल जैसी भी युक्ति कारगर हो, वैसी ही युक्ति से काम लेना चाहिए।''

उधर, दमनक के जाने के बाद संजीवक ने विचार किया–''मैंने यह अच्छा नहीं किया जो शाकाहारी जीव होने के बावजूद भी एक मांसाहारी जीव से मैत्री की। किंतु अब करूं भी तो क्या? क्यों न पिंगलक की शरण में जाकर मैं फिर उससे मित्रता बढ़ाऊं? दूसरी जगह अब मेरी गति भी कहां है।'' यही सोचता हुआ वह धीरे–धीरे शेर के पास चल पड़ा। वहां जाकर उसने देखा कि पिंगलक के चेहरे पर ठीक वैसे ही भाव

मौजूद थे जैसे कि दमनक ने बताए थे। पिंगलक को क्रोधित देखकर संजीवक आज उससे जरा दूर हटकर बिना प्रणाम किए ही बैठ गया। पिंगलक ने भी संजीवक के चेहरे पर वही भाव अंकित देखे जिनकी सूचना दमनक ने पहले ही उसे दे दी थी। अब उसने समय गंवाना उचित नहीं समझा। बिना चेतावनी दिए ही वह संजीवक पर टूट पड़ा।

संजीवक इस अचानक आक्रमण के लिए तैयार न था। किंतु अब उसने देखा कि पिंगलक उसे फाड़ डालने के लिए तैयार है तो वह भी सींगों को तानकर अपनी रक्षा के लिए तैयार हो गया। दोनों को इस प्रकार एक–दूसरे के विरुद्ध भयंकरता से आक्रमण करते देखकर करटक ने कहा–''दमनक, तूने दो मित्रों को आपस में लड़वाकर अच्छा नहीं किया। तुझे साम–नीति से काम लेना चाहिए था। सच तो यह है कि तेरे जैसे नीच स्वभाव का मंत्री कभी अपने स्वामी का कल्याण कर ही नहीं सकता। अब भी कोई उपाय है इन दोनों की लड़ाई बंद करवाने का तो कोशिश कर तेरी सब प्रवृत्तियां केवल विनाशकारी ही हैं। जिस राज्य का तू मंत्री होगा वहां भद्र और सज्जन व्यक्ति कैसे निवास कर पाएंगे? उपदेश भी उसी को दिया जाता है जो उसका पात्र हो। तेरे जैसे स्वार्थी व्यक्ति को तो उपदेश देना भी भैंस के आगे बीन बजाने जैसा है। अब मैं तेरे साथ नहीं रहूंगा। क्योंकि यदि तेरे साथ रहा तो मुझे डर है कि कहीं मेरी हालत सूचीमुख चिड़िया की तरह न हो जाए।'' दमनक ने पूछा–''यह सूचीमुख चिड़िया कौन थी, जिसका तूने अभी–अभी उल्लेख किया है?'' करटक बोला–''सुनो, मैं तुम्हें उसकी कथा सुनाता हूं।''

मूर्खों को उपदेश देना मूर्खता

किसी पर्वतीय प्रदेश में वानरों का एक समूह निवास करता था। एक दिन हेमंत ऋतु के दिनों में वहां इतनी बर्फ पड़ी और ऐसी हिमवर्षा हुई कि बंदर सर्दी के मारे ठिठुर गए। कुछ बंदर लाल फलों को ही अग्नि–कण समझ कर उन्हें फूंक मार–मार सुलगाने की कोशिश करने लगे। वृक्ष के उपर अपने घोंसले में बैठा सूचीमुख नाम का एक पक्षी यह सब कुछ देख रहा था। उसने वानरों के इस वृथा प्रयास को देखकर कहा–''लगता है तुम लोग निपट मूर्ख हो। अरे ये अग्निकण नहीं हैं, यह तो एक प्रकार का फल है जिसका रंग ही सिर्फ लाल होता है। इनमें से अग्नि प्रज्वलित नहीं होती। इनसे ठण्ड मिटेगी। ठंड दूर करनी है तो किसी ऐसे स्थान की खोज करो जहां हवा न पहुंच सके। मेरी मानो तो किसी पर्वत–कंदरा में जाकर छिप जाओ। यह वर्षा अब रुकने वाली नहीं है।'' उन वानरों में एक बूढ़ा वानर भी था। उसने कहा–''सूचीमुख, तू इनको उपदेश मत दे। ये मुर्ख हैं, तेरे उपदेश को नहीं मानेंगे, उल्टा तुझे मार डालेंगे।'' वह बूढ़ा वानर अभी ऐसा कह ही रहा था कि एक वानर उछलकर वृक्ष पर चढ़ गया। उसने सूचीमुख का घोंसला तोड़ डाला और सूचीमुख को पकड़कर उसके पंख उखाड़ दिए। बेचारा सूचीमुख वानरों को अच्छी सीख देने के कारण व्यर्थ ही अपने प्राण गंवा बैठा। यह कथा सुनाकर करटक ने दमनक से कहा–''इसीलिए मैं कहता हूं कि मूर्ख को उपदेश देना भी मूर्खता ही है। मूर्ख को उपदेश देकर हम उसे शांत नहीं करते, बल्कि उसे और भी भड़काते हैं। कुपात्र को उपदेश देना विपत्ति को आमंत्रण देना होता है। किंतु तुझ पर इसका प्रभाव नहीं पड़ा। तुझे शिक्षा देना भी व्यर्थ है। बुद्धिमान को दी हुई शिक्षा का ही फल मिलता है। मूर्ख को दी हुई शिक्षा का फल कई बार उलटा निकल आता है, जिस तरह पापबुद्धि नाम के मूर्ख पुत्र ने विद्वता के जोश में पिता की हत्या की दी थी।'' दमनक ने पूछा–'' कैसे?'' करटक बोला–''बताता हूं, सुनो।''

लालच बुरी बला

किसी नगर में धर्मबुद्धि और पापबुद्धि नाम के दो मित्र रहते थे। दोनों दरिद्र थे। एक दिन दोनों ने विचार किया कि परदेश में जाकर धन कमाना चाहिए ताकि वृद्धावस्था में कोई कष्ट न हो। यही सोचकर दोनों धन कमाने के लिए परदेश चले गए। वहां उन्होंने पर्याप्त मात्रा में धन कमाया और उस धन को लेकर

अपने नगर की ओर लौट पड़े। नगर के समीप एक वन में बैठकर दोनों ने विचार विमर्श किया। पापबुद्धि बोला–''मित्र, इतने धन को हमें अपने बंधु–बांधवों के बीच नहीं ले जाना चाहिए। इसे देखकर उन्हें ईर्ष्या होगी। वे किसी न किसी बहाने इसे हमसे छीनने का प्रयास करेंगे।''

''बात तो ठीक है तुम्हारी।'' धर्मबुद्धि ने सोचते हुए कहा–''लेकिन यह धन हमने बड़ा मेहनत से कमाया है। अगर इसका उपयोग न करेंगे तो फिर इसे कमाने का क्या फायदा हुआ?'' पापबुद्धि बोला–''मित्र, इस विषय में मैंने सोच लिया है। हम यह धन साथ लेकर नहीं चलेंगे। फिलहाल इसे हम यहीं किसी जगह जमीन में गाड़ देते हैं। फिर अनुकूल परिस्थितियां देखते ही इसे जमीन से खोदकर अपने यहां ले जाएंगे और इसका सदुपयोग करेंगे।'' पापबुद्धि की बात सुनकर धर्मबुद्धि मान गया। उन्होंने एक पेड़ के समीप जमीन में गड्ढा खोदा और अपना संचित धन उसमें गाड़कर अपने–अपने घर लौट गए। कुछ दिनों बाद पापबुद्धि आधी रात को उसी स्थान पर पहुंचा। उसने गड्ढे से सारा धन निकाल लिया और मिट्टी से गड्ढे को उसी तरह भर कर वापस अपने घर लौट आया। दूसरे दिन वह धर्मबुद्धि के पास पहुंचा और बोला–'' मित्र! परिवार की आवश्यकताओं के लिए मुझे कुछ धन की आवश्यकता पड़ गई है। चलो चलकर अपने संचित धन में से कुछ धन निकाल लाएं।'' धर्मबुद्धि चलने को तैयार हो गया। दोनों मित्र उसी स्थान पर पहुंचे। जमीन खोदकर उन्होंने वह बर्तन निकाला जिसमें उनका धन रखा हुआ था। लेकिन बर्तन तो खाली था। खाली बर्तन को देखकर पापबुद्धि सिर पीट–पीटकर रोने लगा। उसने धर्मबुद्धि पर आरोप लगाया कि उसी ने वह धन चुराया है। बात बहुत बढ़ गई। दोनों अदालत में धर्माधिकारी के सामने पेश हुए। वहां भी दोनों परस्पर आरोप–प्रत्यारोप करके एक–दूसरे को दोषी सिद्ध करने लगे। धर्माधिकारी ने जब सत्य जानने के लिए दिव्य परीक्षा का निर्णय दिया तो पापबुद्धि बोल पड़ा–'' यह उचित न्याय नहीं है। सर्वप्रथम लेखबद्ध प्रमाणों को देखना चाहिए। उसके अभाव में साक्षी ली जाती है। और जब साक्षी भी न मिले तो फिर दिव्य परीक्षा ली जाती हैं। हमारे विवाद में वृक्ष देवता साक्षी हैं। वे इसका निर्णय कर देंगे।''

पापबुद्धि की बात सुनकर धर्माधिकारी मान गया। उसने निर्णय दिया कि कल प्रातःकाल धर्मबुद्धि और पापबुद्धि के साथ वह स्वयं घटनास्थल पर जाकर देखेगा और वृक्ष देवता की गवाही के अनुसार अपना निर्णय देगा। न्यायालय से लौटकर पापबुद्धि ने अपने पिता से कहा–''पिताजी, मैंने ही वह सारा धन चुराया है अब आप मेरी सहायता करें तो मैं बच सकता हूं अन्यथा धर्माधिकारी मुझे कारावास भेज देगा।'' पापबुद्धि की पिता पुत्रमोह में उसकी सहायता को तैयार हो गया। पापबुद्धि ने उसे अपनी योजना समझा दी। योजनानुसार उसका पिता वृक्ष के एक कोटर में जाकर बैठ गया। दूसरे दिन प्रातःकाल यथा समय पर पापबुद्धि धर्माधिकारी एवं अन्य राज्याधिकारियों के साथ धर्मबुद्धि को साथ लेकर उस स्थान पर पहुंच गया, जहां धन गाड़ कर रखा गया था। वहां पहुंच कर पापबुद्धि ने जोर से आवाज लगाई–'' हे वन देवता! आप इस वन में होने वाले समस्त कार्यकलापों को जानते हैं। यहां कौन आदमी क्या करता है यह आपकी दृष्टि में छिपा नहीं रहता। कृपया यह बता दीजिए कि यहां गाड़ा गया धन किसने चुराया है? मैंने या धर्मबुद्धि ने?'' कोटर में छिपे पापबुद्धि के पिता ने यह सुनकर कोटर के अंदर से कहा–''सज्जनों! आप सब लोग ध्यानपूर्वक मेरी बात सुनो! उस धन को धर्मबुद्धि ने ही चुराया है।''

एक वृक्ष से आती उस आवाज को सुनकर वहां उपस्थित सभी लोग आश्चर्यचकित रह गए। सबको विश्वास हो गया कि धर्मबुद्धि ने ही यह पापकर्म किया है। पर धर्मबुद्धि समझ गया कि हकीकत क्या है उसने तत्काल कुछ घास–फूंस इकट्ठा किये और कुछ सूखी लकड़ियां बीनकर उस कोटर के पास पहुंचा जहां से वनदेवता की आवाज सबने सुनी थी। उसने आग जलाई और उस कोटर में फेंक दी। कोटर के मुख पर रखे घासफूंस ने तुरंत आग पकड़ ली। जब अग्नि ज्यादा प्रज्वलित होने लगी तो कोटर में बैठा पापबुद्धि का पिता जलने लगा। कुछ देर तो वह अग्नि की ताप सहन करता रहा किंतु जब सहन करना मुश्किल हो

गया तो वह अपना अधजला शरीर और फूटी आखें लेकर चीखता–चिल्लाता कोटर से बाहर निकल आया। उसे इस हालत में देखकर सभी को अचंभा होने लगा। धर्माधिकारी ने उससे पूछा–''महाशय, आप कौन हैं और आपकी यह दशा क्यों हुई?'' पापबुद्धि के पिता ने तब धर्माधिकारी के सामने सारी घटना ज्यों की त्यों कह सुनाई । सच्चाई जानकर धर्माधिकारी ने जो सजा धर्मबुद्धि के लिए नियुक्त की थी, वह पापबुद्धि पर लागू कर उसे उसी वृक्ष पर लटकवा दिया। धर्मबुद्धि की प्रशंसा करते हुए धर्माधिकारी ने कहा–''मनुष्य का यह धर्म है कि वह उपाय की चिंता के साथ अपाय की भी चिंता करे अन्यथा उसकी दशा वैसी ही होती है जो उन बगुलों की हुई थी, जिन्हें नेवले ने मार दिया था।'' धर्मबुद्धि ने पूछा–''वह कैसे श्रीमंत?'' धर्माधिकारी बोला–''सुनाता हूं, सुनो।''

करने से पहले सोचो

किसी वन में बरगद का एक बहुत बड़ा पेड़ था। उस पेड़ पर अनेक बगुले निवास करते थे। बरगद की जड़ में एक काला नाग भी रहता था। मौका पाते ही वह वृक्ष पर चढ़ जाता और बगुलों के अण्डे–बच्चों को चट कर जाता था। इस प्रकार उस नाग का जीवन आनंद से व्यतीत हो रहा था। अपने बच्चों के मारे जाने से बगुले बहुत दुखी थे, किंतु उनके पास कोई उपाय नहीं था। एक दिन वह नाग एक बगुले के बच्चों को खा गया। इससे वह बगुला बहुत दुखी और विरक्त होकर नदी के किनारे जा बैठा। उसकी आंखों में आंसू भरे हुए थे। उसे इस प्रकार दुखमग्न देखकर एक केकड़े ने पानी से निकल कर उसे कहा–''मामा, क्या बात है? आज रो क्यों रहे हो?'' बगुले ने कहा–''भैया, बात यह है कि मेरे बच्चों को एक सांप बार–बार खा जाता है। कुछ उपाय नहीं सूझता, किस प्रकार सांप का नाश किया जाए, तुम्हीं कोई उपाय बताओ।'' केकड़े ने मन में सोचा, यह बगुला मेरा जन्मबैरी है। इसे उपाय बताउंगा कि जिससे सांप के नाश के साथ–साथ इसका भी नाश हो जाए। यह सोचकर वह बोला–''मामा, एक काम करो। मांस के कुछ टुकड़े लेकर नेवले के बिल के सामने डाल दो। इसके बाद बहुत–से टुकड़े उस बिल से शुरू करके सांप के बिल तक बिखेर दो। नेवला उन टुकड़ों को खाता–खाता सांप के बिल तक आ जाएगा और वहां सांप को भी देखकर उसे मार डालेगा।''

बगुले ने ऐसा ही किया। नेवले ने सांप तो खा लिया, किंतु सांप के बाद उस वृक्ष पर रहने वाले बगुलों के अण्डों और बच्चों को भी खा गया। बगुले ने उपाय तो सोचा, किंतु उसके अन्य दुष्परिणाम नहीं सोचे। अपनी मूर्खता का फल उसे मिल गया। पापबुद्धि ने भी उपाय तो सोचा, किंतु अपाय नहीं सोचा।''

यह कथा सुनाकर करटक बोला–''इसी तरह दमनक तूने भी तो उपाय किया, किंतु अपाय की चिंता नहीं की। तू भी पापबुद्धि के समान ही मूर्ख है। तेरे जैसे पापबुद्धि के साथ रहना भी दोषपूर्ण है। आज से तू मेरे पास मत आना। जिस स्थान पर ऐसे अनर्थ हों, वहां से दूर ही रहना चाहिए। जहां चूहे मन–भर की तराजू को खा सकते हैं। वहां यह भी संभव है कि चील बच्चे को उठाकर ले जाए।'' दमनक ने पूछा–''वह कैसे?'' करटक बोला–''बताता हूं, सुनो!''

जैसे को तैसा

किसी नगर में जीर्णधन नाम का एक वैश्य रहता था। वह कभी धन–धान्य से सम्पन्न एक खुशहाल व्यक्ति था। किंतु फिर उसके भाग्य ने पलटा खाया। उसका सारा धन नष्ट हो गया और वह सर्वथा निर्धन हो गया। तब उसने विदेश जाकर धन कमाने की सोंची। उसके पास उसके पुरखों के समय की लोहे की एक बहुत भारी व मजबूत तराजू थी। उसने उस तराजू को एक महाजन के यहां गिरवी रखा और उससे मिले धन को लेकर परदेश में व्यापार करने के लिए चला गया। विदेश में उसका भाग्य चमका। उसने

देश–देशान्तरों का खूब भ्रमण किया और बहुत–सा धन कमाकर अपने नगर लौट आया। वह सीधा महाजन के पास पहुंचा और बोला–''सेठ जी! वह गिरवी रखी हुई तराजू मुझे वापस कर दो और अपने रुपय ले लो।''

महाजन ने बड़ा अफसोस व्यक्त करते हुए कहा–''मुझे अफसोस है भाई, मैं तुम्हारी तराजू वापस करने में असमर्थ हूं। उसे तो चूहे खा गए।'' यह सुनकर वैश्य को बहुत क्रोध आया, किंतु उस समय उसने अपने क्रोध को प्रकट नहीं किया। वह बोला–'' सेठ जी, इसमें आपका क्या दोष ? जब तराजू को चूहों ने खा ही लिया तो आप कर भी क्या सकते हैं। यह संसार ही कुछ ऐसा है। यहां कोई वस्तु टिक नहीं पाती। अच्छा, मैं स्नान को जा रहा हूं। कृपा करके आप पुत्र को मेरे साथ भेज दीजिए। मैं जब स्नान करूंगा तो वह नदी किनारे मेरे कपड़ों की रखवाली करता रहेगा।''

महाजन ने सोचा कि चलो 'सस्ते में ही छूट गए।' अब वह लाजवाब तराजू मेरी हो जाएगी। ऐसा सोचकर उसने अपने पुत्र को बुलाया और उससे कहा–''पुत्र धनदेव! ये तुम्हारे चाचा जी स्नान के लिए नदी तट पर जा रहे हैं। तुम इनके लिए स्नान की सामग्री लेकर इनके साथ चले जाओ।'' पिता की आज्ञा मानकर धनदेव उस वैश्य के साथ चल पड़ा। वहां पहुंचकर जीर्णधन ने पहले स्नान किया, फिर किसी तरह बहलाकर धनदेव को निकट बनी एक गुफा में बंद कर दिया। उसने गुफा का द्वार एक भारी शिला से बंद कर दिया और महाजन के पास लौट आया। उसे अकेला आते देख महाजन ने पूछा–''तुम अकेले ही आए हो? मेरा पुत्र कहां है?''

जीर्णधन ने शोकग्रस्त चेहरा बनाते हुए उत्तर दिया–''मुझे अफसोस है सेठ जी, आपके पुत्र को तो नदी किनारे से एक बाज उठाकर ले गया है।'' वैश्य की बात सुनकर महाजन भड़क उठा। बोला–''क्या बकते हो? बाज भी कहीं लड़के को उठाकर ले जा सकता है? मेरे लड़के को लाकर दो, नहीं तो मैं न्यायालय में जाऊंगा।'' महाजन को अपना पुत्र चाहिए था और वैश्य को अपना तराजू। दोनों न्यायालय पहुंचे। पहले महाजन ने ही अभियोग लगाते हुए न्यायाधीश से कहा–'' महोदय, इस वैश्य ने मेरा पुत्र चुरा लिया है। इससे मेरा पुत्र दिलवाया जाए।'' न्यायाधीश ने जब प्रश्नभरी दृष्टि से जीर्णधन की ओर देखा तो उसने कहा–''महोदय, मैं क्या करूं। इसके पुत्र को तो मेरे देखते ही देखते एक बाज उठाकर ले गया है। अब मैं इसके पुत्र को कहां से लाकर दूं?'' न्यायाधीश बोले–''हम इस बात पर बिल्कुल विश्वास नहीं कर सकते कि इसके बेटे को बाज उठाकर ले गया। यह एक असंभव बात है।'' यह सुनकर वैश्य बोला–''तो श्रीमान! मेरी प्रार्थना पर भी ध्यान दिया जाए। जहां पर एक मन भारी लोहे के तराजू को चूहे खा सकते हैं वहां क्या महाजन के पुत्र को बाज उठाकर नहीं ले जा सकता?'' न्यायाधीश ने उलझन भरी दृष्टि से वैश्य की ओर देखते हुए कहा–''तुम यह क्या कह रहे हों?''

तब वैश्य जीर्णधन ने आदि से लेकर अंत तक सारा किस्सा उन्हें सुना दिया। सारी बातें सुनकर न्यायाधीश ने महाजन को तुरंत उसकी तराजू लौटाने का आदेश दिया। तराजू मिलने पर वैश्य ने भी महाजन का पुत्र लौटा दिया। यह कथा सुनकर करटक ने दमनक से कहा–''जहां इस प्रकार ही अपूर्व घटना घट सकती है, वहां दूसरे प्रकार की घटना भी घट सकती है तुमने संजीवक की खुशी से क्षुब्ध होकर यह प्रपंच किया है। अपने स्वभाव के कारण तुमने संजीवक की निंदा की। उसकी निंदा करते हुए और अपने स्वामी का हित चाहते हुए भी एक तरह से उसका अहित ही किया है। विद्वानों ने यह कहा है कि विद्वान व्यक्ति यदि शत्रु हो तो भी अच्छा है, किंतु अपना हित करने वाला व्यक्ति यदि मूर्ख हो तो भी ठीक नहीं होता। चोर होते हुए भी एक पंडित ने चार ब्राह्मणों की रक्षा की थी।'' दमनक ने पूछा–''वह किस प्रकार?'' करटक बोला–''बताता हूं।'' यह कहकर करटक ने उसे यह कथा सुनाई।

मूर्ख मित्र से बुद्धिमान शत्रु अच्छा

किसी नगर में एक विद्वान ब्राह्मण रहता था। विद्वान होते हुए भी अपने पूर्वजन्म के कर्मों के कारण वह चोरी किया करता था। एक बार उसने नगर में चार अपरिचित ब्राह्मणों को अनेक प्रकार की चीजें बेचते हुए देखा। उनको ऐसा करते देख उस ब्राह्मण ने अपने मन में सोचा–'ये लोग तो खूब धन कमा रहे हैं। इनको ठगने का कोई उपाय करना चाहिए।' यही सोचकर वह उन चारों ब्राह्मणों के पास पहुंचा और उनसे बड़ी मीठी–मीठी और नीतिपूर्ण बातें करने लगा। अपने मीठे व्यवहार से शीघ्र ही उस ब्राह्मण ने उन चारों का विश्वास प्राप्त कर लिया। किसी समझदार व्यक्ति ने ठीक ही कहा है कि कुल्टा स्त्री ही अधिक लज्जा करने का ढोंग रचती है। खारा जल स्वच्छ जल की अपेक्षा अधिक ठंडा रहता है। पाखंडी व्यक्ति अधिक विवेकी होता है और जो धूर्त व्यक्ति होता है, वही अधिक प्रिय बोलता है। एक दिन उन ब्राह्मणों ने अपना सारा सामान बेच लिया। उस धन से उन्होंने सोना और रत्न आदि खरीद लिए और वापस अपने देश जाने की तैयारी करने लगे। खरीदे हुए रत्न आदि को उन्होंने अपनी जंघाओं (जांघ) के मध्य छिपा लिया।

धूर्त ब्राह्मण ने उन सबको ऐसा करते देखा तो इतने दिन की गई उनकी सेवा पर अब उसे अफसोस होने लगा। उसने मन ही मन सोचा–'लगता है मेरी सारी सेवा और परिश्रम व्यर्थ ही चला गया। अभी तक तो कुछ भी हाथ नहीं लगा। अब यदि ये लोग चले गए तो मैं हाथ मलते ही रह जाऊंगा।'' तब उसने निर्णय किया कि मैं भी इनके साथ जाऊँगा। रास्ते में इन्हें विष देकर मार डालूंगा और इनके सारे रत्न और स्वर्ण को हथियाकर चम्पत हो जाऊँगा।

तब उस धूर्त ने उन ब्राह्मणों से उसे भी साथ चलने की प्रार्थना की। ब्राह्मण उसकी सेवा और मृदु व्यवहार से प्रसन्न थे। अतः उन्होंने सहर्ष उसे अपने साथ साथ चलने की आज्ञा दे दी। चारों ब्राह्मण उस धूर्त को साथ लेकर अपने नगर के लिए चल पड़े। कुछ दूर जाने पर मार्ग पर किरातों (भीलों) का एक गांव आया। उस गांव का नाम था पल्लीपुर। जब वे पांचों पल्लीपुर से होकर गुजरे तो उनको देखकर कौओं ने जोर–जोर से चीखना–चिल्लाना शुरू कर दिया। कौए कह रहे थे–''अरे भीलों! दौड़ो–दौड़ो। इन व्यक्तियों के पास सवा लाख का धन है। इन्हें मार डालो और इनका धन छीन लो।'' अपने प्रशिक्षित कौओं को ऐसा करते देख तत्काल सारे भील इकट्ठे हो गए। उन्होंने ब्राह्मणों को पकड़ लिया और ब्राह्मणों की तलाशी करने लगे। ब्राह्मणों ने जब इसका विरोध किया तो वे उनकी बड़ी बेरहमी से पिटाई करने लगे। भीलों ने जबरदस्ती उन पांचों के वस्त्र उतरवाए किंतु ब्राह्मणों द्वारा छिपाया गया धन उन्हें फिर भी नहीं मिला। यह देखकर भीलों ने ब्राह्मणों से कहा–''हमारे गांव के कौओं ने आज तक जो भी संकेत दिए हैं, वे कभी असत्य साबित नहीं हुए। धन तुम लोगों के पास अवश्य ही मौजूद हैं। अब तुम उस धन को स्वेच्छा से हमें दे दो तो हम तुमसे कछ नहीं कहेंगे और तुम्हें सही सलामत चले जाने देंगे और यदि तुमने धन देने में आना कानी की तो तुम्हें मार डालेंगे। फिर हम तुम्हारा अंग–अंग चीरेंगे और उसमें छिपाए धन को निकाल लेंगे।''

उस धूर्त ब्राह्मण ने जब भीलों की यह बात सुनी तो पहले तो वह कुछ घबरा गया लेकिन फिर सोचने लगा–''भील पहले तो इन चारों को मारेंगे, फिर मेरी भी बारी आएगी ही। अतः किसी प्रकार अपने प्राण देकर इनके प्राण बचाए जा सकें तो क्या हानि है? इससे पहले कि ये भील इन ब्राह्मणों को मारें क्यों न मैं ही सबसे पहले इन्हें अपना शरीर प्रस्तुत कर दूं। जब ये मुझे मारकर मेरे शरीर को चीरेंगे तो मेरे शरीर में इन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। तब ये लोग समझ जायेंगे कि इस बार कौओं ने गलत संकेत दिया है। तब ये लोग इन ब्राह्मणों को छोड़ देंगे, इस प्रकार इन चारों ब्राह्मणों के प्राण बच जाएंगें।' यही सब सोचकर उसने भीलों से कहा–''अरे भीलों, यदि तुम्हारा ऐसा ही इरादा है तो पहले मुझे मारकर अपनी तसल्ली कर लो ताकि तुम्हें मालूम हो जाए कि तुम्हारे कौओं ने इस बार तुम्हें गलत संकेत दिया है।'' तब उन भीलों ने उस ब्राह्मण को मारकर उसका अंग–अंग चीर डाला किंतु कहीं कुछ न मिला। यह देखकर उन्हें विश्वास

हो गया कि इन ब्राह्मणों के पास कुछ भी नहीं है। अतः उन्होंने उन चारों को मुक्त कर दिया। यह कथा सुनाकर करटक बोला–''इसीलिए मैं कहता था कि यदि कोई बुद्धिमान व्यक्ति अपना शत्रु है तो भी वह मूर्ख मित्र से अच्छा ही होता है। किसी मूर्ख व्यक्ति को अपना मित्र बनाना तो सरासर नासमझी का ही काम होता हैं।'' जब करटक और दमनक के बीच इस तरह का वार्तालाप चल रहा था तो इस पिंगलक और संजीवक के मध्य जीवन और मौत का संघर्ष चल रहा था। अंत में पिंगलक ने अपने नाखूनों और दांतों की सहायता से संजीवक को धराशायी कर ही दिया। संजीवक के मर जाने के बाद पिंगलक जब कुछ स्वस्थ–सा महसूस करने लगा तो उसे अपने किए पर बहुत पश्चात्ताप होने लगा। वह अपने मन में सोचने लगा कि उसने संजीवक के साथ बहुत बड़ा मित्रघात किया है। आज तक मैंने अपनी सभा में हमेशा उसकी प्रशंसा की थी, अब मैं सभासदों को क्या समझाऊंगा।? उसकी यह दशा भांपकर दमनक उसके पास पहुंचा और उसे अनेक प्रकार की नीतियुक्त बातें समझाने लगा। उसने कहा–''स्वामी! एक शाकाहारी बैल का वध करके आप दुखी क्यों हो रहे हो? यह बैल तो आपसे द्रोह करता था। चाहे पिता हो या भाई, पुत्र हो या पत्नी, इनमें से यदि कोई भी द्रोह करे तो उसका वध करने में कोई पाप नहीं है। राजा को कभी भावुक नहीं होना चाहिए। राजनीति बहुत ही कठोर होती है। विद्वान लोग कभी किसी की मृत्यु पर शोक नहीं करते। अतः भावुकता छोड़ो और शोक त्याग कर अपने राजकाज पूरे करें।''

दमनक के इस प्रकार समझाने पर पिंगलक ने संजीवक की मृत्यु का शोक त्याग दिया और दमनक को अपना मुख्यमंत्री बना कर फिर से अपने राज्य का संचालन करने लगा।

प्रश्न :

1. पंचतंत्र से लिया गया यह अंश केवल कहानियों की शृंखला मात्र नहीं है बल्कि स्वयं में एक शिक्षणशास्त्र है, विचार करें।
2. यहां विभिन्न कहानियों में शिक्षा या समाज के किन–किन मुद्दों को उकेरा गया है, उनको पहचाने और सूचीबद्ध करें। क्या आज के समाज के लिए वे प्रासंगिक हैं, समीक्षा करें।
3. पंचतंत्र की रचना राजकुमारों की शिक्षा के लिए हुई थी। लेकिन, इतनी सदी बितने के बाद भी ये कहानियां हमारे बीच जीवन्त हैं? इससे क्या आशय निकाला जा सकता है।

प्रस्तावित कार्य :

1. इन कहानियों का अपने अध्ययन केन्द्र या अपने स्कूल में नाटक मंचन करवायें।
2. यदि पंचतंत्र की इन कहानियों को फिर से लिखने को कहा जाए तो आप इसमें क्या संशोधन करेंगें।

इकाई–2
बालमानस कहानियाँ

	समग्र प्रस्तावना
2.1	**बस की सैर** (वल्लिकानन)
2.2	**इतवा मुंडा ने लड़ाई जीती** (महाश्वेता देवी)
2.3	**बड़े भाई साहब** (प्रेमचन्द)
2.4	**उसका स्कूल** (नवीन सागर) **अथवा** बड़ा अफसर (सुनील कौशिश)
2.5	**तोता** (रविन्द्रनाथ टैगोर) **अथवा** रजाई (अशोक अग्रवाल)
2.6	**झण्डा/मातृध्वनि** (कृष्ण कुमार)

समग्र प्रस्तावना

कहानी सुनना बालमन की सहज ही प्रवृत्ति होती है। प्राचीन काल से हमारे देश में दादा–दादी, नाना–नानी एवं अन्य बुजुर्गों के द्वारा बच्चों को रोचक एवं ज्ञानवर्धक कहानियाँ कहने की परम्परा आज भी विद्यमान है। इसी परम्परा में हितोपदेश एवं पंचतन्त्र का उल्लेख करना नहीं भूल सकते हैं, जो छोटी–छोटी रोचक कथाओं के द्वारा व्यवहारिक ज्ञान, लोक व्यवहार, आर्य सभ्यता, रीति, नीति एवं राजनीति का सरल एवं सुबोध भाषा में सदियों से वर्त्तमान तक ज्ञान का संचार करता रहा है।

जहाँ जीवन है वहाँ कहानी भी अवश्य है। कहानी कहने की परम्परा उतनी ही प्राचीन है–जितना पुराना हमारा जीवन। वर्त्तमान काल में मनोविज्ञान की नवीन खोजों ने शिक्षा क्षेत्र में महान परिवर्त्तन ला दिया है। शिक्षा का केन्द्र बिन्दु शिक्षक नहीं बच्चा होता है। बच्चा में कहानी सुनने एवं सुनाने की प्रवृत्ति एवं आस–पास दिखने वाले वातावरण से सम्बद्ध घटना के आधार पर कहानी को सुनने एवं बोलने की प्रवृत्ति आरम्भिक जीवन निश्चय करना चाहिये। इसी अवधारणा को दृष्टिगत कर 'शिक्षा के साहित्य' विषय पत्र के इकाई–02, में बालमानस से सम्बद्ध पाँच कहानियों का संग्रह है। यद्यपि इन कहानियों का कालक्रम एक समय का नहीं है। दशकों पूर्व लिखी गई ये कहानियाँ आज भी ऐसा ही प्रतीत होता है जैसे इसे आज के परिप्रेक्ष्य में ही लिखा गया है। सदियों से बाल प्रतिभा को कमतर आँकने एवं मनोविनोद का ज़रिया समझने की परम्परा रही है। आज ये परम्पराएँ शिक्षायी विमर्श का हिस्सा तो बनी लेकिन जमीनी हकीकत को परिवर्तित करने में असफल रही है।

प्रस्तुत इकाई में सम्मिलित कहानियों का मुख्य पात्र बच्चा/बच्ची ही है। यद्यपि 'तोता' शीर्षक कहानी का मुख्य पात्र 'तोता' है। किन्तु उसके द्वारा यह बतलाने का प्रयास किया गया है कि हम बच्चों को अपने चिन्तनानुकूल बनाने में ताम–झाम तो खूब करते हैं किन्तु उसके निर्वाध एवं स्वभाविक गति में सहायक पंख को ही काट डालते हैं। हम उन्हें पिंजड़ों एवं चाहरदिवारी में कैद कर बनावटी ज्ञान प्रदान करना चाहते हैं। टैगोर की यह कहानी निश्चय ही आज की शिक्षा व्यवस्था पर चोट करती है। क्योंकि

आज हम सभी साधनोपाय तो करते हैं, सभी उससे उपकृत भी होते हैं किन्तु जिसके लिए हम यह उपाय कर रहे होते हैं वही हमारे उपाय से न हँसता है न बोलता है न उसके शरीर में हरकत होती है। वह निस्तब्ध हो जाता है। इसी प्रकार बड़े भाई साहब के द्वारा प्रेमचन्द यह कहना चाहते हैं कि बुजुर्ग बच्चों के ज्ञानार्जन को कितना अस्वाभाविक बना देते हैं। ज्ञानार्जन में तोता रटन्त प्रणाली को ही आधार मानने वाले को कहानीकार ने करारा जबाव दिया है। 'उसका स्कूल' में एक ऐसी बच्ची की कहानी है जो पढ़ना चाहती है किन्तु अभिजात वर्ग के कुचक्र में उसका सपना चकना–चूर हो जाता है, वह बाल मजदूरी के दलदल में धँस जाती है। आज भी हमारे समाज में बच्चों की ऐसी स्थिति देखने को मिलती है। 'बस की सैर' एक ऐसी निर्भीक, सूझबूझ वाली, संवेदनशील एवं स्वाभिमानी बच्ची की कहानी है जो अल्पायु है। हमउम्र बच्चे उसे चिढ़ाते रहते हैं। नित्य बसों से लोगों का जाना–आना देख उसे भी इच्छा होती है कि वो भी उसकी सैर करे। सैर करती भी है, खुश भी है क्योंकि उसने प्रकृति को आज पहली बार इतना नज़दीक से देखा है। किन्तु उसे दुख है कि उसके बस के आगे भागने वाली वह बछिया सड़क पर भी पड़ी थी। इतवा मुंडा ने लड़ाई जीती में महाश्वेतादेवी के द्वारा आदिवासी समाज की बदहाली, उसके त्योहार, प्रकृति के साथ गहरा सम्बन्ध का दिग्दर्शन कराया गया है। आदिवासी समाज किस प्रकार पीढ़ी दर पीढ़ी बाहरी जमीनदारों के द्वारा शोषित हुआ है, किस प्रकार अपनी सभी भूखण्डों को खोकर मजदूर बन गया, वह (आदिवासी) शिक्षा प्राप्त कर उसके शोषण से निकलना भी चाहता है किन्तु परिस्थिति वशा वह उसमें फँस जाता है इन सभी बिन्दुओं का अवलोकन इसके कथाक्रम में होती है। इस कहानी का मुख्यपात्र 'इतवा' मुंडा है। इसके माता–पिता का देहावसान बाल्यावस्था में ही हो जाता है। उसके दादा उसे पालते हैं। आदिवासियों को उससे बहुत उम्मीद है। इतवा अपने समाज से सम्बन्धित बहुत सी बातों को जानना चाहता है। वह कभी दादा से, कभी अध्यापक से, कभी किसी और से पढ़ना चाहता है किन्तु परिस्थिति एवं जमींदार मोती बाबू उससे वहीं कराना चाहता है जो उसके पूर्वज किया करते थे। किन्तु बदलते समय, इतवा एवं उसके दोघ की दृढइच्छा शक्ति आज इतवा लड़ाई को जीत जाता है। जैसा कि मोती बाबू के प्रति मंगल के इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है– ''इतवा अब काम नहीं करेगा। वह पढ़ने जाने लगा है। ..... बाबू वह इंसान बन जायेगा। ..... हवा बदल गयी है बाबू। जंगली अब एक हो गये हैं।''

निःसन्देह इस प्रकार की कहानियाँ उन बच्चों को समझने में अध्यापकों को मदद करेगी जो आज भी बदहाली के कारण पढ़ने से दूर है। जिन्हें हम तोता रटन्त के लिये दबाव देते हैं, यो फिर हम उनके उत्साह एवं निडरता को नहीं समझ पाते हैं। हम अपने प्रयोगों द्वारा उनकी स्वतंत्रता को छीन लेते हैं एवं अपने स्वार्थ सिद्धि हेतु उसे बाल्यकाल में ही कुचल देते हैं। आप इन कहानियों को पढ़कर निश्चय ही भावुक होंगे। आपके सोच में परिवर्त्तन होगा।

2.1

बस की सैर

(वल्लिकानन)

प्रस्तावना :

छोटे बच्चे–बच्चियों के पूर्व ज्ञान ,समझ ,अनुभव ,भाषा आदि को कमतर और अपरिपक्व आँकने की परंपरा शुरू से ही रही है । उनकी बाल– प्रतिभा को या तो हमने अपने मनोविनोद का जरिया समझा या बेकार की बातें । इसका असर (कुप्रभाव)शिक्षायी नीतियों सहित वर्ग कक्ष में खड़े उस शिक्षक/शिक्षिका के 'सीखने की योजना ' तक पड़ा । बेशक ,आज ये रूढ परम्पराएँ हमारी शिक्षायी विमर्श की हिस्सा तो बनी लेकिन जमीनी सच्चाई को बदलने में बेअसर रही ।

प्रेमचंद (ईदगाह),जैनेन्द्र कुमार (खेल),वल्लीकानन (बस की सैर)सरीखे कहानीकारों नें अपनी रचनाओं से हमारी पूर्व की धारणाओं पर चोट भी किया है । बस की सैर कहानी की प्रमुख पात्रा आठ वर्षीय बल्ली अम्माई का चरित्र पूरा एक पैकेज है जिसके व्यक्तित्व में निर्भीकता, स्वाभिमान, वाक–चातुर्य, संवेदना ,जिज्ञासा ,कल्पना, प्रबंधन ,सौंदर्यानुभूति, सावधानी जैसे उच्च मानवीय गुण एवं कौशल शामिल हैं । कथांत में काकी का कथन "बित्ते–भर की इस लड़की को तो देखो .....बड़ों की बात में टांग अड़ाती फिरती है .. जैसे बड़ी पुरखिन हो। "अम्माई की परिपक्वता को सिद्ध करने के लिए काफी है । अंततः ,कहानी की पूरी समझ आपके कक्षायी क्रियाकलाप एवं शिक्षण योजना पर पुनर्विचार की मांग करती दिखेगी ।

एक थी लड़की। नाम था उसका वल्ली अम्माई आठ बरस की थी। उसे अपने घर के दरवाजे पर खड़े होकर सड़क की रौनक देखना बड़ा अच्छा लगता था। वल्ली अम्माई को अपना नाम भी बड़ा अच्छा लगता था। वैसे, दुनिया में ऐसा कौन होगा जिसे अपना नाम पसंद न हो? फिर भी कभी–कभार उसे अपने नाम से चिढ़ आने लगती। ऐसा तब होता जब दूसरी लड़कियाँ उसे यह गा–गा कर तंग करती। वल्ली अम्माई! वल्ली अम्माई! दुलहे ने दी तुझे विदाई! वल्ली अम्माई! वल्ली अम्माई! गया कहाँ दुल्हा सौदाई? ऐसे मौकों पर उसे कुछ न सूझता कि वह उनसे कहे तो क्या कहे? उसकी आँखों में आंसू छलछला आते और वह नफरत से मुंह चिढ़ाने लगती। यह देखकर लड़कियों का गाना फिर शुरू हो जाता। 'रहेगी टेढ़ी, सूरत टेढ़ी काली हंडिया, रहेगी काली' यह सुनकर वल्ली अम्माई सुबकती हुई, दौड़कर घर में घुस जाती। उसे अपने माँ–बाप पर बड़ा गुस्सा आता, जिन्होंने उसका यह नाम रखा।

लेकिन उसका क्रोध थोड़ी देर ही रहता। जल्दी ही उसे अपना नाम फिर से भला और प्यारा लगने लगता। सड़क पर वल्ली अम्माई की उम्र का कोई साथी नहीं था। अपनी दहलीज पर खड़े रहने के अलावा वह कर भी क्या सकती थी? और फिर उसकी माँ ने उसे सख्त ताकीद कर रखी थी कि वह खेलने के लिए अपनी सड़क छोड़कर दूसरी सड़क पर न जाये। लेकिन घर की देहली पर खड़े रहना भी तो किसी लंबे–चौड़े खेल से कम नहीं था, जो दूसरे बच्चे खेला करते थे। इस प्रकार उसे कई नये–नये और अनोखे अनुभव होते। एक बार एक अंग्रेज सिपाही उस गांव में से गुजरा। यह उन दिनों की बात थी, जब अंग्रेज लोग भारत से नहीं गये थे। कितनी गोरी चमड़ी थी उस अंग्रेज की। कितने बढ़िया कपड़े पहन रखे थे उसने। उसकी एक झलक पाने के लिए गाँव की औरतों में एक होड़ सी लग गयी थी। लेकिन कुछ बच्चें, और

कुछ बड़े भी उसे देखकर ऐसे सहमे कि अपने–अपने घरों में जा दुबके। वल्ली अम्माई बिल्कुल नहीं डरी। पता है उसने क्या किया? उसने अपनी एड़ियाँ बजाकर चुस्ती से सैल्युट मारा और कहा–''सलाम!''

अंग्रेज मुड़ा और वल्ली अम्माई को देखकर मुस्कराया। ''गुडमार्निंग'' उसने कहा और अपनी राह हो लिया। इसके बाद वल्ली की खुशी का ठिकाना नहीं था। वह लगी शोर मचाने, उछलने और नाचने। हर किसी से डींग हांकती कि एक अंग्रेज ने उससे बात की थी। ''यह बड़ी बहादुर है।'' कइयों ने कहा। गली के लोगों में अब उसकी काफी धाक जम गयी थी। यह ठीक है कि उस सड़क पर जहां वह रहती थी, गाड़ियों का आना–जाना आम तौर पर ज्यादा नहीं था। लेकिन ऐसा भी नहीं था कि वहां कभी कोई घटना घटती ही न हो। जब–तब सड़क पर किसी व्यक्ति को, किसी न किसी काम पर जाते हुए देखा जा सकता था। कभी–कभार कोई बैलगाड़ी उधर से गुजरती, जिसके पहिये तेल न होने के कारण चूं–चूं करते और चरमरा रहे होते। बैलों के गले में बंधी हुई घंटियां मीठी आवाज में टनटनाती। कभी–कभी कोई कुत्ता तीर की तरह सड़क पार करता मानो बहुत जरूरी काम पर जा रहा हो। फिर अचानक उसकी चाल धीमी पड़ जाती और वह इधर–उधर सूंघने लगता। और फिर एक टांग उठाकर, रास्ते में किसी पौधे को गीला कर देता। तब फिर मुड़कर वापस उसी ओर भागने लगता, जिधर से आया था। ऐसा लगता, मानो कोई चीज भूल गया हो और उसे लेने वापस आया हो। और हाँ! सड़क पर से भिखारी तो गुजरते ही थे। सौदा–सुल्फ बेचने के लिए फेरी वालों का भी ताँता लगा रहता था। देहली पर से, दिन भर नजर आने वाले तमाशों की, वल्ली के लिए कोई कमी नहीं थी। लेकिन सड़क पर सबसे ज्यादा आकर्षित करनेवाली वस्तु, कस्बे की बस थी जो हर घंटे उधर से गुजरती थी। एक दफा जाते हुए और एक दफा, लौटते हुए। हर बार नयी–नयी सवारियों से लदी हुई बस का देखना, वल्ली अम्माई को कभी न खत्म होने वाली खुशी का खजाना था। हर रोज, वह बस को देखती। और एक दिन एक नन्हीं सी इच्छा उसके नन्हें से दिमाग में घुस कर बैठ गयी। कम से कम एक बार तो वह बस की सैर करेगी ही। नन्हीं–सी इच्छा, बड़ी और बड़ी होती चली गयी। वल्ली बड़ी हसरत से उन लोगों की तरफ देखती जो सड़क की नुक्कड़ पर बस से उतरते–चढ़ते, जहां पर बस आकर रुकती थी। उनके चेहरे इसके दिल में सौ–सौ इच्छाएँ, सपने और आशाएँ जगा जाते। उसकी कोई सखी–सहेली जब उसे अपनी बस–यात्रा का किस्सा सुनाती, शहर के किसी दृश्य का हाल बताकर डींग हांकती, तो वल्ली जल–भुन जाती। ''प्राऊड.....प्राऊड'' वह अंग्रेजी में चिल्लाती। चाहे वल्ली और उसकी सहेलियों को इस शब्द का अर्थ मालूम नहीं था, फिर भी इसका बेधड़क इस्तेमाल करतीं। दिनों–दिन, महीनों–महीने वल्ली ने बस–यात्रा से संबंधित छोटी–मोटी जानकारी गांव से कभी–कभार शहर जाने वालों और बस में प्रायः सफर करते रहने वाले यात्रियों की आपसी बातचीत से प्राप्त कर ली थी। उसने आप भी कुछ लोगों से इस बारे में सवाल पूछे थे। शहर उसके गांव से कोई दस किलोमीटर दूर था। एक ओर का भाड़ा था तीस पैसे। इसका मतलब, जाने और लौटने दोनों ओर के साठ पैसे। शहर तक पहुंचने में बस को पौन घंटा लगता था। शहर पहुंचकर, अगर वह बस में ही बैठी रहे और तीस पैसे और चुका दे तो उसी बस में बैठी–बैठी वापस भी आ सकती है। यानी अगर वह गांव से दोपहर एक बजे चल दे तो पौने दो बजे शहर पहुंच जायेगी। और फिर उसी बस से वह अपने गाँव कोई तीन बजे लौट आयेगी। इसी प्रकार वह हिसाब पर हिसाब लगाती रही, योजना पर योजना बनाती रही..... एक दिन की बात है, जब यह बस गांव की सीमा पार करके, बड़ी सड़क पर प्रवेश कर रही थी, एक नन्हीं–सी आवाज पुकारती हुई सुनायी दी, ''बस को रोको....बस को रोको।'' एक नन्हा–सा हाथ हिल रहा था। बस धीमी हो गयी। संवाहक ने बाहर झांका और कुछ तुनक कर कहा, ''अरे भई! कौन चढ़ना चाहता है? उनसे कहो कि जल्दी करें.....सुना तुमने?'' ''बस को रोको! मैं चढ़ना चाहती हूं।'' वल्ली ने कहा। ''सचमुच? यह बात है!'' संवाहक ने चुटकी ली। ''बस... मैं इतना जानती हूं कि मुझे शहर जाना है.....और यह रहा तुम्हारा किराया,'' उसने रेजगारी

दिखाते हुए कहा। ''ठीक! ठीक! पहले बस में चढ़ो तो!'' संवाहक ने कहा और फिर उसे धीरे से उठाकर बस में चढ़ा लिया। ''च च च.....मैं अपने आप चढ़ूंगी.....तुम मुझे उठाते क्यों हो?'' संवाहक बड़ा हंसोड़ था। ''अरी ताश की बेगम! नराज क्यों होती हो?....बैठो.....इधर पधारो.....'' उसने कहा। ''रास्ता दो भई रास्ता... ताश की बेगम तशरीफ ला रही हैं।'' दुपहर के उस समय आने–जाने वालों की भीड़–भाड़ घट जाती थी। पूरी बस में कुल छह–सात सवारियां बैठी हुई थीं। सभी मुसाफिरों की नज़र वल्ली पर थी और वे सब संवाहक की बातों पर हंस रहे थे। वल्ली मन ही मन झेंप गयी। आंखें फेर कर वह जल्दी से एक खाली सीट पर जा बैठी। ''गाड़ी चलायें? बेगम साहिबा।'' संवाहक ने मुस्करा कर पूछा। उसने दो बार सीटी बजायी। बस गरजती हुई आगे को बढ़ी। यह एक बिल्कुल नयी बस थी। बाहर की ओर इस पर सफेद रोगन किया हुआ था, जिस पर कुछ हरी धारियाँ भी थीं। अंदर, छत से लगे डंडे चांदी की तरह चमचमा रहे थे। ठीक उसके सामने, एक सुन्दर–सी घड़ी थी। बैठने की सीटें बड़ी नरम और आरामदेह थीं। वल्ली सब कुछ आंखें फाड़ कर देख रही थी। खिड़कियों से बाहर लटक रहे परदे के कारण उसे बाहर का दृश्य देखने में बाधा पड़ रही थी। वह अपनी सीट पर खड़ी हो गयी और बाहर झाँकने लगी। इस समय बस एक नहर के किनारे–किनारे जा रही थी। रास्ता बहुत ही तंग था। एक ओर नहर थी और उसके पार ताड़ के वृक्ष, घास के मैदान, सुदूर पहाड़ियाँ, और नीला आकाश! दूसरी ओर एक गहरी खाई थी, जिसके परे दूर–दूर तक फैले हुए हरे–भरे खेत जहां तक नजर जाती, हरियाली ही हरियाली! अहा! यह सब कुछ कितना अद्‌भुत था! अचानक एक आवाज आई और वह चौंक गयी। 'सुनो बच्ची!' वह आवाज कह रही थी, ''इस तरह खड़ी मत रहो, बैठ जाओ!'' वल्ली बैठ गयी और उसने देखा कि वह कौन था? वह एक बड़ी उम्र का आदमी था, जिसने उसी के भले के लिए यह कहा था। लेकिन उसके इन शब्दों से वह चिढ़ गयी। ''यहाँ कोई बच्ची नहीं है'', उसने कहा, ''उसने कहा, ''मैंने पूरा भाड़ा दिया है।'' संवाहक ने भी बीच में पड़ते हुए कहा, ''जी हां, यह बड़ी बेगम साहिबा है। क्या कोई बच्चा अपना किराया अपने आप देकर शहर जा सकता है?'' वल्ली ने आंखें तरेर कर उसकी ओर देखा। ''मैं बेगम साहिबा नहीं हूं, समझे!.... और हां, तुमने अभी तक मुझे टिकट नहीं दिया है।'' ''अरे हां,! ''संवाहक ने उसी के लहजे की नकल करते हुए कहा, और सब हंसने लगे। इस हंसी में वल्ली भी शामिल थी। संवाहक ने एक टिकट फाड़ा और उसे देते हुए कहा, ''आराम से बैठो! सीट के पैसे देने के बाद कोई खड़ा क्यों रहे?'' ''मुझे यह अच्छा लगता है,'' वह बोली। ''खड़ी रहोगी तो गिर जाओगी, चोट खा जाओगी–गाड़ी जब एक एकदम मोड़ काटेगी..... या झटका लगेगा। तभी मैंने तुम्हें बैठने को कहा है, बच्ची!'' ''मैं बच्ची नहीं हूं, तुम्हें बता दिया न!'' उसने कुढ़कर कहा, ''मैं आठ साल की हूं।'' क्यों नहीं..... क्यों नहीं! मैं भी कैसा बुद्धू हूं! आठ साल! बाप रे!'' बस रुकी। कुछ नये मुसाफिर बस में चढ़े और संवाहक कुछ देर के लिए व्यस्त हो गया। वल्ली बैठ गयी। उसे डर था कि कहीं उसकी सीट ही न चली जाये! एक बड़ी उम्र की औरत आयी और उसके पास बैठ गयी। ''अकेली जा रही हो, बिटिया?'' जैसे ही बस चली, उसने वल्ली से पूछा। वल्ली को उसकी सूरत बड़ी घिनौनी लग रही थी–उसके कानों में इतने बड़े–बड़े छेद थे, और उनमें इतने भद्दे–से गहने लटक रहे थे उसके मुंह से तम्बाखू की बू आ रही थी, और उससे किसी भी क्षण पीक बाहर टपक सकती थी, उफ! ''हां, मैं अकेली जा रही हूं। मेरे पास मेरा टिकट है।'' उसने अकड़ कर तीखा जवाब दिया। ''हां.....हां, शहर जा रही है.....तीस पैसे का टिकट लेकर.....संवाहक ने सफाई दी। ''आप अपना काम कीजिए, जी!'' वल्ली ने टोका, लेकिन उसकी अपनी हंसी भी छूट रही थी। संवाहक भी खिल–खिला कर हंसने लगा। ''इतनी छोटी बच्ची के लिए घर से अकेले निकलना क्या उचित है?'' बुढ़िया की बक–झक जारी थी। ''तुम जानती हो, शहर में तुम्हें कहाँ जाना है किस गली में? किस घर में?'' ''आप मेरी चिन्ता न करें। मुझे सब मालूम है,'' वल्ली ने पीठ मोड़, मुंह खिड़की की ओर करके बाहर झांकते हुए कहा। यह उसकी पहली यात्रा थी। इस सफर के

लिए उसने सचमुच कितनी सावधानी और कठिनाई से योजना बनायी थी। इसके लिए उसे छोटी–छोटी जो रेजगारी भी हाथ लगी, इकट्ठी करनी पड़ी–उसे अपनी कितनी ही इच्छाओं को दबाना पड़ा–जैसे कि वह मीठी गोलियां नहीं खरीदेगी....खिलौने, गुब्बारे.....कुछ भी नहीं लेगी। कितना बड़ा संयम था यह! और फिर विशेष रूप से उस दिन, जब जेब में पैसे होते हुए भी, गांव के मेले में गोल–गोल घूमने वाले झूले पर बैठने को उसका कितना जी चाह रहा था! पैसों की समस्या हल हो जाने पर, उसकी दूसरी समस्या यह थी कि वह माँ को बताये बिना घर से कैसे खिसके? लेकिन इस बात का हल भी कोई बड़ी कठिनाई पैदा किए बिना ही निकल आया। हर रोज, दुपहर के खाने के बाद, उसकी माँ कोई एक बजे से चार–साढ़े चार बजे तक सोया करती थी। वल्ली का, बीच का यह समय गांव के अन्दर सैर–सपाटे करने में बीतता था। लेकिन आज वह यह समय गांव से बाहर की सैर में लगा रही थी। बस चली जा रही थी– कभी खुले मैदान में से, कभी किसी गांव को पीछे छोड़ते हुए और कभी किसी ढाबे को। कभी यह लगता कि वह सामने से आ रही किसी दूसरी गाड़ी को निगल जायेगी या फिर किसी पैदल यात्री को।....लेकिन यह क्या? वह तो उन सबको, दूर पीछे छोड़ती हुई बड़ी सावधानी–सफाई से आगे निकल गयी। पेड़ दौड़ते हुए उसकी ओर आते और चुपचाप–बेबस से खड़े रहते। अचानक खुशी के मारे वल्ली तालियां पीटने लगी। गाय की एक बछिया अपनी दुम ऊपर उठाये सड़क के बीचों–बीच बस के ठीक सामने दौड़ रही थी। ड्राइवर जितनी जोर से भोंपू बजता, उतना ही ज्यादा वह डर कर बेतहाशा भागने लगती। वल्ली को यह दृश्य बहुत ही मजेदार लगा और वह इतना हँसी, इतना हँसी कि उसकी आंखों में आंसू आ गये। ''बस.....बस बेगम साहिबा!'' संवाहक ने कहा, ''कुछ हँसी कल के लिए रहने दो!'' आखिर बछिया एक ओर निकल गयी। और फिर बस रेल के फाटक तक जा पहुंचे। दूर से रेलगाड़ी एक बिंदु के समान लगा रही थी। पास आने पर वह बड़ी और बड़ी होती चली गयी। जब वह फाटक के पास से धड़धड़ाती–दनदनाती हुई निकली तो बस हिलने लगी। फिर बस आगे बढ़ी और रेलवे–स्टेशन तक जा पहुंची। वहां से वह भीड़–भड़ाक्क वाला एक सड़क से गुजरी, जहां दोनों ओर दुकानों की कतारें थी। फिर मुड़ कर वह एक और बड़ी सड़क पर पहुंची। इतनी बड़ी–बड़ी सजी हुई दुकानें, उनमें एक से एक बढ़कर चमकीले कपड़े और दूसरी चीजें! भीड़ की रेलम–पेल। वल्ली हैरान, भौंचक्की–सी, हर चीज को आंखें फाड़े देख रही थी। बस रूकी, और सभी यात्री उतर गये। ''ए बेगम साहिबा! आप नहीं उतरेंगी क्या? तीस पैसे की टिकट खत्म हो गयी।'' संवाहक ने कहा। ''मैं इसी बस से वापस जा रही हूं'', उसने अपनी जेब में से तीस पैसे और निकाल कर रेजगारी संवाहक को देते हुए कहा। ''क्या बात है?'' ''कुछ नहीं, मेरा बस में चढ़ने को जी चाहा....बस!'' ''तुम शहर देखना नहीं चाहतीं?'' ''अकेली? न बाबा न। मुझे डर लगता है।'' उसने कहा। उसके हाव–भाव पर संवाहक को बड़ा मजा आ रहा था। ''लेकिन तुम्हें बस में आते हुए डर नहीं लगा?'' उसने पूछा। ''इसमें डर की क्या बात है?'' वल्ली ने जवाब दिया। ''अच्छा तो उतर कर....उस जलपान–गृह में हो आओ....काफी पी लो...इसमें डर की क्या बात है?'' ''उफं हूं....मैं नहीं पिऊंगी।'' ''अच्छा तो क्या मैं तुम्हारे लिए कुछ पकौड़े या चबैना लाऊं?'' ''नहीं, मेरे पास इनके लिए पैसे नहीं हैं.....मुझे बस एक टिकट दे दो।'' ''जल–पान के लिए तुम्हें पैसे की जरूरत नहीं। पैसे मैं दूंगा।'' ''मैंने कह दिया न नहीं.....'' उसने दृढ़तापूर्वक कहा। नियत समय पर बस फिर चल पड़ी। लौटती बार भी कोई खास भीड़ नहीं थी। ''क्या तुम्हारी मां तुम्हें नहीं ढूँढ़ रही होगा!'' संवाहक ने टिकट देते हुए उससे पूछा। ''मुझे कोई नहीं ढूँढ़ रहा होगा'', उसने कहा। एक बार फिर वही दृश्य! लेकिन वह जरा भी नहीं उबी! हर दृश्य में उसे पहले जैसा मजा आ रहा था। लेकिन अचानक– ओह देखो....वह बछिया.....सड़क पर मरी पड़ी थी। किसी गाड़ी के नीचे आ गयी थी। ओह! कुछ क्षण पहले जो एक प्यारा, सुन्दर जीव था, अब अचानक अपनी सुन्दरता और सजीवता खो रहा था। अब वह कितना डरावना लग रहा था।...फैली हुई टांगें, पथरायी हुई आंखें, खून से लथपथ.... ओह! कितने

दुःख की बात! ''यह वह बछिया है न जो बस के आगे–आगे भाग रही थी.....जब हम आ रहे थे?'' वल्ली ने संवाहक से पूछा। संवाहक ने सिर हिला दिया। बस चली जा रही थी। बछिया का ख्याल उसे सता रहा था। उसका उत्साह ढीला पड़ गया था। अब खिड़की से बाहर झांक कर और दृश्य देखने की उसकी इच्छा नहीं रही थी। वह अपनी सीट पर जमी बैठी रही। बस तीन बजकर चालीस मिनट पर उसके गांव पहुंची। वल्ली खड़ी हुई उसने जम्हाई लेकर कमर सीधी की और संवाहक को विदा कहते हुए बोली, ''अच्छा, मिलेंगे, जनाब!'' ''बहुत खूब बेगम साहिबा! जब भी बस की सवारी को जी चाहे, चली आना! पर हां.....भाड़े की रेजगारी लाना मत भूलना।'' उसने कहा। हंसते हुए वल्ली बस से नीचे कूद गयी। और फिर वह अपने घर की ओर भाग खड़ी हुई। वह घर में घूसी तो देखा कि मां जगी हुई थी, और किसी से बातें कर रही थी। अरे हां! यह तो दक्षिणी गली वाली काकी थी! कतरनी की तरह उसकी जीभ चलती थी। एक दफा बोलना शुरू करती तो चुप होने का नाम न लेती थी। ''अरे तू कहां थी?'' काकी ने वल्ली को देखकर कहा। यह बात काकी के मुंह से यूं ही निकल गयी थी। वल्ली से उसने उत्तर नहीं चाहा था। इसलिए वल्ली मुसकरा भर दी, और बड़ों की बातचीत चलती रही..... ''आपने ठीक कहा! हमारे बीच और बाहर दुनिया में बीसियों घटनायें होती रहती हैं.....क्या हमें इन सबका पता चलता है?.....और फिर जब हम सोचते हैं कि हम किसी घटना के बारे में जानते हैं, तो क्या हम सचमुच उसे पूरी तरह समझ भी रहे होते हैं?'' वल्ली की मां ने कहा। ''जी हां!'' वल्ली ने कहा। ''क्या जी हां?'' उसकी मां ने पूछा। ''यही जो आप कह रही थीं....बाहर क्या होता है, हमें कुछ पता नहीं रहता.....'' ''बित्ते–भर की इस लड़की को तो देखो..... बड़ों की बात में टांग अड़ाती फिरती है.....जैसे बड़ी पुरखिन हो!'' काकी ने कहा वल्ली मन ही मन मुस्कारा रही थी। वह यह चाहती भी नहीं थी कि उसकी इस मुस्कराहट का अर्थ कोई समझे! और वे समझ भी नहीं पायीं! है न?

प्रश्न :

1. हम अक्सर बच्चों को नासमझ मानते हैं। इस कहानी के आधार पर अब आप बच्चों की समझ और अकलमंदी को लेकर क्या टिप्पणी करेंगें।
2. जिज्ञासा और खोज बचपन का अभिन्न कार्य है, इस कहानी के आधार पर समझाएं।

प्रस्तावित कार्य :

1. प्रशिक्षुओं को यात्रा से सम्बन्धित किसी अनुभव को कक्षा में कहने का अवसर दिया जाये।

2.2

इतवा मुंडा ने लड़ाई जीती

(महाश्वेता देवी)

प्रस्तावना :

"इतवा मुंडा ने लड़ाई जीती" *महाश्वेता देवी द्वारा लिखी एक कहानी है जो हमें उस संस्कृति की यात्रा करवाती जिसे हम 'विकास' के शोर में अनदेखा करना चाहते हैं। कहानी बताती है कि अनदेखा किए जाने की प्रक्रिया का इतिहास लंबा हैं।*

यह कहानी दो तरह की संस्कृतियों के दर्शन करने का अवसर उपस्थित करती है। ये संस्कृतियाँ प्रकृति से भिन्न समझ के साथ जुड़ती हैं। इस समझ में प्रकृति के प्रति दो तरह की आस्थाओं के दर्शन होते है। इतवा के भीतर उठने वाले सवाल उसकी आस्था पर पड़ी चोटों के कारण पैदा हो रहे हैं, और अबकी बार चोट मारने वाले ज्यादा करीब के हैं।

इतवा में सशक्त होने की तड़प है। लेकिन उसकी राह में व्यक्ति तथा संरचनाओं की अनेक बाधाएँ हैं। अपनी इच्छा और अपने जैसों की मदद से वह उस राह को पकड़ ही लेता है जो उसके लिए मुक्ति की राह साबित होती है। मुक्ति, आजाद देश में बंधुआ मजदूरी से, मुक्ति, सामंती शिकंजे से, और मुक्ति स्वयं के डर से।

ग्राम–हाथीघर। माना कभी यहाँ हाथी रहते होंगे लेकिन आज मुश्किल से कोई हाथी दिखाई देगा। वह भी क्या जमाना रहा होगा जब मोती बाबू के पुरखे यहाँ के नामी जमींदार थे। पत्थरों से बनी पशुशाला में उनके हाथी रहा करते थे। पत्थरों से बनी तीस कमरों वाली उस हवेली के अवशेष आज भी बाकी है। निचली मंजिल के कमरों में आज चावल, गेहूँ आदि अनाजों के गोदाम हैं। हाथीशाला को ऊँचा करके धान रखने का गोदाम बना दिया गया है।

इतवा के दादा बताते हैं कि किसी जमाने में यह आदिवासियों का गांव था। तब इसे सालगड़िया कहते थे। साल के पेड़ों की कतारें ऐसी शोभायमान लगतीं थीं जैसे कि कतार में खड़े संतरी गांव का पहरा दे रहे हों।

''गांव का नाम क्यों बदल गया?''

''बाबू लोग आये और सब कुछ ले गये ।''

''क्या आदिवासियों ने रोका नहीं ?''

''तुम बहुत बोलते हो इतवा ! इतने सवाल पूछने की हिम्मत तो तुम्हारे पिताजी की भी नहीं होती थी। हम सब कुछ हार गये क्योंकि पढ़ना लिखना तो हम जानते ही नहीं थे। सरकार के कायदे कानून तो हमारी समझ में आते ही नहीं थे ।''

''बाबा, सिर्फ एक बात और बता दो, यहाँ आने के लिए आप लोगों ने अपनी जमीन कब छोड़ी ?''

''हजारों चन्द्रमा पहले ..... तुम हँसते क्यों हो ?''

''भला चन्द्रमा से भी कोई साल की गिनती करता है?''

''हम हमेशा से ऐसा ही करते हैं और मैं तो जब तक जियूँगा, ऐसी ही करूँगा। जब सिधू और कान्हू ने अंग्रेजों के खिलाफ संथालों की लड़ाई का नेतृत्व किया, तभी हमारे पूर्वजों को भी अपनी जमीन छोड़नी पड़ी। क्या जोरदार लड़ाई थी वह ! अंग्रेज जीत गये, तो संथाल इधर–उधर बिखर गये। उनमें से कुछ लोग यहाँ पहुँचे। जंगल काटकर वह यहाँ बस गये। बहुत समय पुरानी बात है यह ।''

''तो क्या इसी कारण हम मुंडा लोग यहाँ आये ?''

बूढ़े मंगल ने अपने पोते की तरफ देखा। मन ही मन सोचने लगा–यह बच्चा है। अभी क्या जानता है? भला कोई आदिवासी भी अपनी धरती छोड़ सकता है? बहुत मजबूर होकर ही वह ऐसा करेगा। दादाजी ने कहा, ''इसके कुछ साल बाद बिरसा मुंडा अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह भड़काने में सफल हुए। वह भी बड़ी घमासान लड़ाई थी। एक तरफ से बाणों की बौछारें हुईं और दूसरी तरफ से वे गोलियाँ दागने लगे। आखिर हमें ही हार माननी पड़ी। आंधी आने पर जैसे पत्ते बिखरने लगते हैं, उसी तरह हम लोग भी उड़ीसा, बिहार, बंगाल और असम के विभिन्न भागों में बिखर गये। नयी बस्तियाँ बसाने के लिए हमने जंगल काटे। इसीलिए मुंडा और संथाल आज हर जगह दिखाई देते हैं।''

''तो इसी प्रकार आप यहाँ आये ?''

''छोटानागपुर छोड़कर हम चल पड़े। सुवर्ण रेखा नदी पार कर जब हम उस पार पहुँचे तो संथालों ने हमें देखा। वे बड़े खुश हुए। जितने ज्यादा आदिवासी होंगे उतनी ही शक्ति बढ़ेगी न ! तुमने उस नदी को देखा है, जिसे दुलंग कहते हैं ? हम उसे दारांगढ़ा कहते थे। तब इस इलाके में घने जंगल थे और यहाँ बहुत से जंगली जानवर रहते थे। ये जो अपने गांव में लोढ़ा जाति के लोग है, ये तो सचमुच जंगलों में रहने वाले लोग हैं। ये बाघूत भगवान की पूजा करते हैं ताकि इनके जानवरों को चीता न मार जाय और अपनी सुरक्षा के लिए वे देवी बरम की पूजा करते हैं। हम लोगों ने रहने की जगह बनाने के लिए मिलजुल कर लड़कियाँ काटीं, लेकिन हमने कभी जंगल का विनाश नहीं किया। जंगल तो हमारी माँ है। लोढ़ा लोग तो आज भी शिकार करके ही जीवन बसर करते हैं''।

''लेकिन दादाजी, बाबू तो कहते हैं कि तुम आदिवासियों ने ही जंगल का विनाश किया है!''

''यह सच नहीं है। अब तो बहुत थोड़ा जंगल बच गया है। पर जितना भी है, उससे हमें कंदमूल, फल, पत्ते, ईंधन, खरगोश और पक्षी मिलते हैं। यह बूढ़ा साल का पेड़ हमारा ग्राम देवता है जिसकी हम पूजा–अर्चना करते हैं। जिसे प्यार करते हैं, उसे कौन काटेगा?''

''गांव का नाम हाथीघर क्यों पड़ा ?''

''जब हमने जंगल काटकर बस्ती बसायी, खेत बनाये तो उपजाऊ धरती मुस्कुराने लगी और तब आये बाबू लोग। हमेशा ऐसा ही होता है। हमलोग अनपढ़ थे, इसलिए अपनी जमीन खो बैठे। उन्होंने गांव का नाम रखा। जाने दो इतवा, बहुत हुआ। तुझे क्यों हो रही है इतनी उत्सुकता?''

इतवा कैसे बताये ! हर रोज बाबू के घर जाते हुए जब वह प्राथमिक स्कूल की झोपड़ी से होते हुए गुजरता है तो संथाल स्कूल मास्टर बच्चों को बड़ी मजेदार कहानियाँ सुना रहे होते हैं। मास्टरजी अपनी कक्षा की शुरूआत हमेशा कहानियों से ही करते हैं, कि ..... ''तब हवा में उनके बाणों की बौछार शुरू हुई। आकाश में अंधेरा छा गया। उस घमासान लड़ाई का वर्णन कर पाना मेरे बस की बात कहाँ''?

इतवा को नहीं मालूम कि मास्टर जी किस लड़ाई की कहानी सुनाते हैं! कहीं वह महाभारत की लड़ाई तो नहीं या कि रामायण की ! इतवा ने रोहिणी गांव में जात्रा देखी थी। जात्रा के नाटकों द्वारा ही उसे रामायण और महाभारत की कहानियों का पता चला।

इतवा के कानों में स्कूल मास्टर की आवाज घंटी की तरह गूंजती रहती है। गांव के प्रधान मोती बाबू के घर वह काम करता है मोती बाबू भगवान की तरह पूजे जाते हैं। इतवा उनकी गायों–बकरियों को चराने जंगल ले जाता है।

हाथीघर कलकत्ता से सचमुच बड़ी दूर है। हावड़ा से खड़गपुर के लिए रेल पकड़िये, खड़गपुर से बस लीजिए और गुप्तमणि मंदिर के सामने उतरिये। वहाँ रक्षा की देवी बरम की पूजा होती है तथा लोढ़ा जनजाति का पुजारी वहां रहता है। मुम्बई मार्ग पर चलनेवाले सब ट्रक और बसें दर्शनों के लिए गुप्तमणि मंदिर रूकते हैं। गुप्तमणि से रोहिणी के लिए बसें जाती तो हैं, पर बहुत कम। यदि आप वहाँ से दक्षिण पश्चिम दिशा में पैदल चलें तो सात–आठ मील के बाद आपको एक नाला पार करना पड़ेगा और उसके बाद छोटे–छोटे आदिवासी गांवों का झुंड–सा शुरू हो जायेगा। इसके बाद विशाल रोहिणी गांव से होते हुए दक्षिण की ओर दुलंग नदी के किनारे–किनारे चलिए, नदी आपके साथ–साथ नाचती बलखाती सी चलेगी और तब आपको एक ऊँचा साल का पेड़ दिखाई देगा । पेड़ भी इतना ऊँचा कि जैसे आसमान को छूना चाहता हो। इसके साथ ही एक अर्जुन का पेड़ है। तब समझो कि आप हाथीघर पहुँच चुके हैं।

इन पेड़ों की जड़ों के पास आपको मिलेंगी मिट्टी से बनी हाथी और घोड़े की दो विशाल मूर्तियाँ। जड़ों के आसपास इनकी और भी कई छोटी–छोटी मूर्तियाँ मिलेंगे। गांव का हर निवासी, वह चाहे आदिवासी हो या नहीं, यहाँ वरम देवता की पूजा अर्चना के लिए जरूर आता है।

यहाँ से कुछ दूरी पर दुलंग नदी, सुवर्ण–रेखा नदी में मिल जाती है। इन दोनों के संगम स्थल की छटा भी देखते ही बनती है। लगता है जैसे समुद्र ने गेरुए वस्त्र पहन लिये हों। आप चाहें तो यहाँ एक डुबकी लगा सकते हैं। आप डूबेंगे नहीं। यद्यपि धारा का बहाव काफी तेज है लेकिन पानी कम ही होगा। अपनी प्रिय भैंस की पीठ पर चढ़कर इतवा अकसर यहाँ से नदी पार करता है।

आखिर इतवा करता क्या है ? वह गायों, भैंसों व बकरियों को चराने ले जाता है। लोग उसे इतवा क्यों कहते हैं? उसके नाम के पीछे भी आदिवासियों की विशेष परंपरा है। वह इतवार के दिन पैदा हुआ, सो उसका नाम इतवा पड़ गया। यदि वह सोमवार को पैदा होता तो उसका नाम सोमरा या सोमई रखा जाता। आदिवासी समाज में प्रायः जन्म के दिनों के नाम पर नाम रखे जाते हैं। जो लोग अपने बच्चो के बंगाली नाम रखना चाहते हैं, वे वैसा ही करते हैं। इतवा का नाम उसके दादाजी मंगल मुंडा ने रखा। इस राज्य में रहनेवाले मुंडा, लोढ़ा और संथाल आदिवासी यद्यपि बंगला जानते हैं किन्तु अपनी भाषाएँ बोलते हैं।

इतवा हमेशा हिरन की तरह कुचालें भरने को तैयार रहता है। उसकी उम्र सिर्फ दस वर्ष होगी। सिर में लाल, भूरे बालों की जुल्फें। जगमग चमकती आंखें। पहनने के नाम पर हमेशा खाकी नेकर। उसके दादाजी बहुत बूढ़े हो चुके हैं। उम्र का छोटा होते हुए भी जिंदगी के कई मुश्किल पाठ पढ़े हैं इतवा ने। ईंधन के लिए जंगल से लकड़ी, पत्ते इकट्ठे करता है वह। इसलिए हर गिरती हुई टहनी का सुखते हुए पत्तों का उसे ध्यान रखना पड़ता है।

गांव में एक दिन साप्ताहिक बाजार लगता है। इतवा दुकानों के आगे झाड़ू लगाता है, बदले में दुकानदारों ने उसे टाट का एक बोरा दे दिया है। वह इस बोरे को हमेशा अपने पास रखता है। आम के बूढ़े वृक्ष की छाया में अपनी गायें चराते समय, वह जमीन पर गिरी हुई अंबिया उठाता है। लकड़ियों के टुकड़े भी इकट्ठे करता है। कंद–मूल, फल खोदता है और दलदल भरे तालाब से हरी तरकारियों की बेलें खींचता है। और ये सब चीजें अपने बोरे में भरता है।

तब वह दुलंग के उस पास हरे भरे घास वाले तट को पार करता है। जानवरों को चरते छोड़ वह एक संकरे से नाले से सुवर्ण रेखा की तरफ दौड़ता है। तब वहाँ खपची से अपना मछली पकड़ने का जाल फेंकता है। ऐसे अवसरों पर वह खुद को किसी राजा से कम नहीं समझता। नदी, आकाश और हरे भरे खेतों का राजा। वह अपने आपसे कहता है, ''यदि भाग्य ने साथ दिया तो आज जरूर मछली खाएंगे वरना तरकारियाँ तो हैं ही। दुकानदार से तेल, नमक और मसाले लेने के लिए कंद उसे दे देना पड़ेगा। वह नहीं माना तो दादाजी और मैं ही इसे भी खा लेंगें''।

खाने की चीज की बात मन में आते ही इतवा की भूख छू मंतर हो जाती है। मस्ती में झूमता इतवा कभी नदी के जल से बातें करता है तो कभी सरकंडे की सफेद बालों से, तो कभी फूलों से और चौड़े आसमान से बोलता है, ''क्या तुम उस लड़ाई के बारे में जानते हो ? क्या जोरदार लड़ाई थी वह–एकतरफ से बाणों की बौछारें तो दूसरी तरफ से तोपों की गर्जनाओं और घोड़ों की टापों की खड़खड़ाहट से आसमान गूंज उठता था।''

स्कूल मास्टर अपने विद्यार्थियों को जिस लड़ाई की कहानी बताते हैं, वह कौन सी थी, इतवा को नहीं मालूम। कहीं यह 1857–58 का युद्ध तो नहीं था। यह यह कोई और लड़ाई थी; जब बाणों को तोप के गोलों से भिड़ना पड़ा था। मास्टरजी रोज नयी–नयी लड़ाइयों के बारे में बताते हैं। इतवा कुछ नहीं जानता। वह जानने की परवाह भी नहीं करता। उसे लड़ाई से मतलब है, बाकी बातों में उसे दिलचस्पी नहीं। खुले आसमान के नीचे घास के मैदान में अकेला खड़ा इतवा उस लड़ाई के बारे में न जाने क्या–क्या बोलता जाता है, जो वाकई बहुत घमासान रही होगी। लेकिन घास में भनभनाते कीड़ों, हवा में झूलते वनफूलों और गायों के झुंड में कोई भी नहीं जानता कि इतवा क्या बोल रहा है। बेचारे आदिवासी ग्वाले की बातों को गंभीरता से कौन सुनता है ? दुलंग और सुवर्ण रेखा मुस्कुराती हुई बहती हैं। हलांकि कहा तो यही जाता है कि इन्हीं नदियों के तटों पर उस घमासान लड़ाई की आग धधकी थी।

इतवा को इन कहानियों पर विश्वास नहीं होता। बूढ़े लोढ़ा भजन भुक्त की सुनाई हुई कहानियों पर उसे ज्यादा विश्वास होता है। भजन बताता है कि कभी यहाँ शक्तिशाली आदिवासी राजा का राज था। जब बाहरी लोगों ने यहाँ आकर उसका राज्य छीन लिया तो राजा अपने तांबे का घंटा और जादुई छड़ी लेकर दुलंग में कूद गया। आज भी यदि आप सच्चे मन से राजा को फरियाद करें तो राजा पानी के भीतर से ही अपना घंटा बजाता है और अपनी जादुई छड़ी के साथ हाथी पर सवार होकर पानी की सतह पर आता है।

शेर की तरह दहाड़ते हुए आकाश को कंपित करके वह पूछता है, ''मुझे कौन बुला रहा है ? मेरे सिपाही कहाँ हैं? मुझे अपना राज्य वापस लेने के लिए अभी और कितना इंतजार करना होगा ? इस धरती को मैं वनों से ढंका हुआ, जंगली जानवरों और वनवासियों से भरा हुआ कब देख पाऊँगा'' ? ऐसा कहने के बाद वह अपनी घंटी बजाता है। किसी भी तूफानी रात को उसे सुना जा सकता है।

भजन भुक्त अंधा है। जब भी बाजार लगता है, वह बीच बाजार में बैठकर गाता है। और कहानियाँ सुनाता है। घर लौटते हुए इतवा अकसर उसे सहारा देता है। इतवा कहता है, ''दादाजी, आज आपने कितनी मजेदार कहानियाँ सुनायीं। हर आदमी बहुत ध्यान से सुन रहा था। देखा न, आपको दस्सी के कितने सिक्के मिले हैं''।

''इतवा, तुम बहुत अच्छे लड़के हो। मुझे बस एक ही दुख है कि तुम स्कूल नहीं जाते हो। हमारे बच्चे स्कूल नहीं जाते। जायें भी कैसे ! हम लोग उन्हें गायें चराने या लकड़ी इकट्ठी करने के लिए बंधुआ जो बना देते हैं। अब तो हमारे गांव में भी स्कूल बन गया है। संथाल स्कूल मास्टर जो बहुत ही अच्छा है। वह घर–घर जाकर बच्चों को स्कूल भेजने को कहता है। हमारे लड़के–लड़कियों को जरूर पढ़ना सीखना

चाहिए, पर क्या करें, हम तो अपने पेट की पहले सोचते हैं। जब मैं छोटा था, तो स्कूल जाने के लिए चार मील का जंगल पार करना पड़ता था। आज तो हर गांव में स्कूल है। फिर भी ..... अच्छा बेटा, अब घर जाओ। अब यहाँ से मैं खुद ही चला जाऊँगा।''

इतवा दिन भर क्या करता है ? सूर्य देवता की तरह इतवा के पास एक क्षण भी फुर्सत के लिए कहाँ ? वह और उसके दादाजी एक टूटी–फूटी झोंपड़ी में रहते हैं। उसके माँ–बाप तो बचपन में ही चल बसे। इसलिए दादाजी ही उसके लिए माँ भी हैं और पिताजी भी। अपने पिताजी के बोय हुए कटहल के पेड़ की एक टहनी से वह अपनी दो बकरियों को बांधा करता है।

उसका सबसे अच्छा दोस्त है रतन टुडू। वह संथाल है। अपनी बकरियों के साथ इतवा की एक दो बकरियों को भी वह चराने ले जाता है।

अपनी झोंपड़ी के भीतर वे बांस की ऊँची चौकी पर सोते हैं। भोर होते ही मंगल घर से निकल जाता है। सबेरे जागने के बाद इतवा पिछली शाम से बचे बासी भात का कलेवा करता है। कुछ भात अपने दादाजी के लिए रख दिया करता है। उसके बाद वह मोती बाबू के घर की ओर दौड़ पड़ता है। वहाँ उसका इंतजार कर रहा होता है–ढेर सारा काम ।

सबसे पहले वह अंदर के बहुत बड़े अहाते में झाड़ू लगाता है। उसके बाद उसे ट्यूबवेल से पानी निकालना होता है। और तब मकान के पास ही तरकारियों के खेत में उसे पानी देना होता है। घर का काम काज खत्म करके वह गौशाला जाता है। हर गाय और भैंस को वह नाम लेकर पुकारेगा और फिर इन्हें ले जायेगा जंगल चराने।

मवेशियों को चराने ले जाते हुए वह हर रोज कुछ देर के लिए स्कूल के पास रूक जाता है, मास्टरजी की कहानियाँ सुनने के लिए मास्टरजी कहते, ''एक तरफ तोपें और आधुनिक बंदूकें थीं, और दूसरी तरफ थीं तलवारें और पुराने किस्म की बंदूकें। हमारे सिपाहियों ने अद्‌भुत साहस दिखाया। आखिर में जीते तो अंग्रेज ही। लेकिन इसका मुख्य कारण था, उनके बढ़िया किस्म के हथियार और अनुशासित फौज। हमारे सिपाहियों के पास थी सिर्फ उनकी देशभक्ति और बहादुरी। तब भी वह लड़ाई ऐसी थी जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। वास्तव में वह लड़ाई बहुत ही जबर्दस्त थी''।

इतवा भी रोज एक लड़ाई लड़ रहा है। अपने टाट के बोरे में भरने की लड़ाई। पर इस लड़ाई से वह पूरी तरह से अनभिज्ञ है। बड़ी हिफाजत से अपने बोरे को दुलंग में धोता है। बरसात के मौसम यही बोरा उसके लिए बरसाती की काम करता है और जाड़ों में कंबल का। वैसे सर्दियों के लिए उनके पास एक गुदड़ी भी है। गानोर के साप्ताहिक बाजार से फटे–पुराने कपड़े खरीद कर उसके दादाजी ने एक गुदड़ी तैयार की है। रात को सोते समय इतवा इस गुदड़ी को अपने दादाजी को दे देता है। दादाजी बूढ़े हैं और उन्हें ठंड भी तो ज्यादा लगती है। इतवा का गुजारा तो बोरे से भी हो जाता है।

यह कितने दुख की बात है कि गांव में स्कूल होते हुए भी इतवा पढ़ नहीं पाया, हालांकि उसके दादाजी चाहते थे कि वह कुछ पढ़ लें।

इतवा का जन्म बांधना या सोहराई त्यौहार के दिन हुआ था। यह त्यौहार अकसर दीपावली के बाद पड़ता है। हाथीघर में आदिवासी और अन्य लोग शांतिपूर्वक रहते हैं। वे दुर्गापूजा और कालीपूजा मनाते हैं और जात्राा मंडलियाँ हैं और वे अपनी जात्राओं को संथाली या मुंडारी भाषाओं में खेलना पसंद करते हैं। सारे कलाकार आपस में दोस्त होते हैं और भाषा को अच्छी तरह समझते हैं।

बांधना के दिन बाघूत भगवान की पूजा की जाती है। बाघूत भगवान को जानवरों का रक्षक समझा जाता है। हालांकि आज मुश्किल से कोई शेर मिलेगा, लेकिन कहा जाता है कि कभी आदिवासियों के ढेर सारे

जानवर शेर का शिकार बनते थे। बाघूत ही शेर से उनकी रक्षा करता था। देवता की प्रतिमा के सामने सिन्दूर में रंगे कुछ पत्ते रखे जाते हैं और हर किसी को अपनी–अपनी गाय पूजा स्थल पर लाने को कहा जाता है। जो भी गाय सबसे पहले सिंदूरी पत्ते को खाती है, उसे बहुत पवित्र समझा जाता है। उसके सींगों पर तेल और सिंदुर का लेप किया जाता है। लोग इस गाय के मालिक के पास इकट्ठे होते हैं। गाय का मालिक सभी आदिवासियों को दावत देता है।

रात के समय लोग ढोल बजाते हुए गौशाला के पास जाते हैं। गाय की तारीफ में गाने गाते हैं। गाय उनके लिए सब से प्रिय दोस्त है।

इतवा अकसर इस गायक मंडली में शरीक होकर गीत गाता है।

जागो, जागो, माँ भगवती जागो,
जागो, जागो, माँ भगवती जोगो!
जगो रे जागो, पड़ेवा की इस रात को जागो।

गायों के मालिक गायन मंडली को रुपये–पैसे देते हैं। बाद में इनाम की इस रकम को भी एक दावत में खर्च कर दिया जाता है।

दूसरे दिन औरतें गौशाला की सफाई करती हैं। घरों और फर्शों की मिट्टी से लिपाई करती हैं और सफेद रंग की मिट्टी से अल्पना बनाती हैं। इस अवसर पर गाय के खुरों का डिजाइन बनाना बहुत जरूरी होता है। उसके बाद तीन प्रमुख इष्ट देवताओं–बुडू बोंगा, हारम बूढ़ी और धरम की पूजा की जाती है और एक लाल मुर्गे, एक–एक काली और सफेद मुर्गी की बलि दी जाती है। पूजा के बाद दावत होती है। एक बार फिर औरतें तेल और सिंदूर गायों के सींगों पर लगाती हैं। फिर गायों को खेतों में ले जाया जाता है।

अगले दिन सभी गायों व भैंसों को एक अहाते में रस्सियों से बांधकर, सभी आदिवासी उनके चारों तरफ नाचते गाते हैं।

इस तरह इतवा के गांव में बांधना का उत्सव मनाया जाता है। कुछ दूसरे गांवों के आदिवासी हालांकि बाघूत को नहीं मानते लेकिन इस दिन किसी अन्य देवता की पूजा करते हैं। कुछ वर्गों में बांधना का त्योहार लगातार पांच दिनों तक मनाया जाता है तो कुछ लोग तीन दिनों तक बनाते हैं। जिनके पास गायें नहीं होती वे भी त्योहार में हिस्सा लेते हैं।

इतवा का जन्म भी इसी त्योहार के दौरान हुआ था। लोगों ने कहा था यह बच्चा बड़ा भाग्यवान है, जिंदगी में कोई बड़ा काम करेगा नामकरण तो परंपरा के अनुसार ही किया गया। पानी से भरा कलश ग्राम देवता के नाम पर धान की बाल और घास के साथ नदी में प्रवाहित किया गया। चुपके से 'मंगल' बोलकर धान की एक और बाल और प्रवाहित की गयी। दरअसल उत्सव के दौरान पैदा होने वाला बच्चा लड़का हो तो परंपरा के अनुसार दादाजी का नाम लेना होता है। यदि यह दूसरी बाल घास को छू लेती है तो बच्चे का नाम मंगरा या मंगला रखा जाता लेकिन ऐसा नहीं हुआ। उसके पिताजी तो चाहते थे कि उसे कोई बंगाली नाम दिया जाय लेकिन दादाजी नहीं माने। उसका कहना था कि वह इतवार को पैदा हुआ है, इसलिए उसका नाम इतवा रखा गया।

जब वह छह महीने का था तब उसका तुकुई लुत्र संस्कार करके कान छेदे गये। (आदिवासी लोग अन्नप्राशन नही मनाते) तुकुई लुत्र के दिन अहाते में धान बिछाये गये और बीचोबीच एक लकड़ी का तख्ता रख कर इतवा को उस पर लिटा दिया गया। और तब उसके कानों का छेदन हुआ। अतिथियों को गुड़ भात खिलाया गया। एक काले मुर्गे की बलि दी गयी। दावत के बाद आदिवासी माताएँ थोड़ा–थोड़ा तेल

और एक–एक टोकरी धान ले आयीं। तेल इतवा के सिर की मालिश के लिए था और धान बच्चे को उपहार स्वरूप दिये गये।

यद्यपि पूरी बिरादरी को न्यौता दे सकने की हिम्मत मंगल की नहीं थी तथापि आदिवासियों की परंपरा के अनुसार यदि उन्हें कोई दावत पर बुलाता है तो उनका भी यह कर्तव्य बनता है कि वे अपनी तरफ से चावल, दाल या तरकारियाँ, जो भी हो सके ले जायें।

एक वर्ष की उम्र में ही इतवा के माँ–बाप चल बचे। चूंकि माता–पिता दिन भर खेतों में ही काम करते थे, इसलिए मंगल ही एकमात्र सहारा था।

आदिवासियों का नया साल माघ के महीने में शुरू होता है। इसकी शुरूआत माघ चंदु या माघेसीम उत्सव के साथ होती है। कुंवारियों और नवविवाहित लड़कियाँ इस अवसर पर बड़े बुढ़ों के चरण धोकर उसका आशीर्वाद लेती हैं।

फसल काटने के मौसम में हाथीघर के संथाल, मुंडा और लोढ़ा आदिवासी कनक बाबू के खेतों मे काम किया करते हैं। कनक बाबू शहर में रहते हैं। धान की फसल काटने के बाद वे अपना हिस्सा अपने घर ले जाते हैं। इस साल कनक बाबू ने अपनी जमीन बिना आदिवासियों को बताए किसी बाहरी व्यक्ति को बेच दी। नये मालिक ने खेत में काम करने के लिए नये मजदूर लगाये। आदिवासियों ने यह बात सपने में भी नहीं सोची थी कि जिस फसल को वे बो रहे हैं, उसे काटने से भी उन्हें वंचित कर दिया जायेगा। उन्हें दैनिक मजदूरी की बजाय अनाज मिला करता था। इस बार उनके हाथों से वह भी छिन गया।

संथाल चंद मुरमू यह देख आपे से बाहर हो गया। वह गुस्से से चिल्लाया, ''हमें बिना बताए जमीन कैसे बेच दी गयी? हमने खेती बोयी है और हम ही फसल भी काटेंगे''।

झगड़ा बढ़ गया। पुलिस आयी और हाथीघर के आदिवासियों को पकड़ ले गयी। चंद के पिताजी सुबल और मंगल को जयचंद नामक संथाल वकील को मिलने के लिए 26 मील पैदल चलना पड़ा। सुबल बोला, ''जयचंद, तुम्हारे पिताजी और मैं दोस्त थे। तुम्हारे गांव में मेरी बेटी ब्याही है। हमारी मदद कीजिए। पुलिस हिरासत से हमारे लोगों को छुड़ा दीजिए''।

जयचंद भला आदमी था, बड़ी मुश्किल से वह छत्तीसों लोगों को छुड़ा पाया। हालांकि इस काम में उसे कई महीने लग गये। शहर से लौटते समय इतवा के माँ–पिताजी ने पता नहीं क्या खाया, जिससे कि उन्हें विषाक्तता हो गयी। वे शहर के अस्पताल में ही चल बसे। चंद मुरमू नन्हें इतवा को घर ले आया और बूढ़े मंगल की गोद में रख सिर झुका कर चुपचाप खड़ा हो गया।

मंगल बोला, ''चंद, क्या खाया था उन्होंने''?

''शायद सड़े गले फल या फफूंद लगी मिठाई।''

''वे वैसे कहां से लाए?''

''चाचाजी, हमने सोचा कि खाली हाथ घर लौटाने के बजाय कहीं कुछ दिन काम कर लें। वे ईंट के भट्टे में काम कर रहे थे।''

''मैं तो बहुत बूढ़ा हो चुका हूँ, चंद बेटे। मैं कैसे पालूंगा इतने छोटे बच्चे को और कैसे हम दोनों को पेट पालूंगा?''

गांव की एक बुजुर्ग औरत आलोमणि ने कहा, ''मुझे दे दो भैया इस बच्चे को, मैं इसकी देखभाल करूंगी''। आलोमणि को पूरा गांव चाची कहता है।

''जाओ, ले जाओ इसे। यह कैसा अभागा बालक है जो अपने मां–बाप को ही खा गया।''

''इसमें इस बालक का क्या दोष है, चाचा'' चंद बोला।

आलोमणि बोली, ''बोलने दो इसे। मन की भड़ास निकल जायेगी तो कुछ हल्का हो जायेगा। वरना भीतर ही भीतर आग सुलगती रहेगी''।

मंगल दो दिन तक अपने घर पर भावहीन चेहरा लिए पड़ा रहा। तीसरे दिन वह आलोमणि के पास गया। ''बच्चा मुझे दे दो। अब मुझे ही इसका पिता और माता बनना है।''

बच्चे को कंधे पर ले वह मोती बाबू के यहाँ पहुँचा और कुछ काम मांगने लगा। ''क्या तुम वह सब काम कर सकते हो जो तुम्हारा बेटा करता था'' ?

''बाबू, आप तो जानते ही हैं, एक जमाना था जब मैं सब काम कर सकता था। तब तो मेरा लड़का भी स्कूल जाता था।''

''यही तो तुम्हारी गलती थी। यदि तुमलोग ही अपने बच्चों को स्कूल भेजने लगे तो हमारे खेत–खलिहानों में काम कौन करेगा ? जानवरों को कौन चरायेगा ? तुम यह कैसे कह सकते हो कि मैं तुमलोगों को ठगता हूँ। मैं तुमलोगों को एक वक्त का खाना और चाय नाश्ता देता हूँ। यही नही साल में दो जोड़ी कपड़े भी देता हूँ, ऊपर से 74 किलो धान देता हूँ। कोई कैसे कह सकता है कि मोती बाबू मजदूरों को ठगते हैं !''

''मैं आपके उपकार कैसे भूल सकता हूँ, बाबू जी! मेरी पूरी जिंदगी आपकी सेवा में बीती। इसीलिए मेरी इच्छा थी कि कम से कम मेरा बेटा तो कुछ पढ़ ले।''

''फिर क्यों छुड़वाया स्कूल ! पढ़ने देते ।''

''मैं कैसे कर पाता बाबूजी, उसकी माँ के मर जाने के बाद अकेला पड़ गया था जो कुछ आप देते थे, उससे हम दोनों के पेट का ही पूरा नहीं होता था। मजबूर होकर उसे आपके भाई के यहाँ ग्वाले की नौकरी पर लगाना पड़ा।''

''सब ईश्वर के हाथ में है मंगल! कौन पढेगा, कौन नहीं, सब भाग्य की बात है!''

''छोड़ो बाबू भाग्य की बातें। आप यह बताइए कि मुझे काम दे रहे हैं या नहीं!''

''तू तो बड़ी खरी–खोटी सुनाता है रे मंगल!''

''मैं तो अनपढ़ आदिवासी हूँ बाबूजी ! मुझे क्या पता कि क्या होती है अच्छी बोली! मेरा लड़का और बहू चल बसे हैं! अब भी तुम सोचते हो कि मैं मीठी बोली बोलूंगा।''

''ओ हो ! तो बुरे दिन चल रहे हैं आजकल।'' मोती बाबू की मां ने बीच में ही टोका, ''मंगल से बात करने का यही तरीका है क्या मोती ! यह बुजुर्ग आदमी इज्जतदार आदिवासी है। यह एक बार बोल दे, तो तुम्हारे यहां एक भी आदिवासी न आये''!

''चलो ठीक है। इसे काम दे दो ।''

''मुझे बच्चा भी साथ में लाना होगा बाबूजी !''

''तब काम कैसे करोगे!''

''यह मुझपर छोड़ दीजिए। आपको अपना काम पूरा मिलना चाहिए।''

आदिवासियों में अनाथ बालक का पालन–पोषण बिरादरी के लोगों द्वारा किया जाता है। चंद मुरमू की पत्नी बोली, ''मैं दो बच्चों को तो पाल ही रही हूँ। एक मेरा बेटा सिंगराई है, दूसरा भतीजा है रतन। इतवा मेरे

लिए तीसरे बच्चे की तरह होगा। ये तीनों दुधभाई होंगे। आप अपनी उम्र का लिहाज करके इसे मुझे दे दीजिए''।

''मेरे पास इतवा के अलावा और है ही क्या ?''

''तब ठीक है, लेकिन जब आपको बाहर जाना पड़े या बाजार जाना पड़े, तब आप इसे मेरे पास छोड़ देना। काम से लौट आने के बाद लिये जाना।''

''चलो ठीक है।''

तब से आज तक इतवा, सिंगराई और रतन बहुत करीबी रहे हैं। छह वर्ष की उम्र से ही तीनों दोस्तों की तिकड़ी बड़ी मशहुर रही है।

आदिवासियों का एक और मशहूर त्यौहार है–करम पूजा। यह त्यौहार भादों के महीने में खेती की समृद्धि के लिए मनाया जाता है। बारीकी से बुनी हुई बांस की डलियों में मिट्टी भरकर औरतें उनमें विविध अनाजों के बीज बोती हैं। कुछ दिन बाद ये बीज अंकुरित हो जाते हैं।

अगले दिन करम देवता की पूजा के लिए आंगन को साफ करके बुहारा जाता है। पूरे दिन के उपवास के बाद औरतें अंकुरित बीजों की टोकरियां वहां लाती हैं। ढोल बजाते, नाचते–गाते हुए गांव भर स्त्री –पुरूष 'करम' नामक पेड़ की एक टहनी काटने को जाते हैं। इस टहनी को ईश्वर रूप दिया जाता है। पिछली बार इतवा और उसके दोस्त भी इस अवसर पर खूब नाचे थे। गीत के बोल कुछ इस तरह थे–

हम जा रहे हैं पावन 'करम' की डाल काटने

देखो, कितने उल्लास से वह स्वागत करता

है यह डाल करम देवता

देखो कितना सुंदर है हमारा राजा!

इस टहनी को मिट्टी की वेदी में प्रतिस्थापित किया जाता है। वेदी के चारों ओर औरतें गोल चक्कर बनाकर बैठती हैं, बीच में होता है पुजारी। और तब पूजा होती है।

करम् देवता की कहानी भी कम दिलचस्प नहीं है। कथा बांचते बांचते पुजारी स्त्रियों को फूल चढ़ाने का आदेश देता है।

कथा खत्म होने के बाद स्त्रियां अपना उपवास तोड़ती हैं। वे नाचती गाती हुईं अपने घरों को जाती हैं। उसके बाद शुरू होता है पुरुषों का नृत्य। बाद में लौटकर स्त्रियां भी उनके साथ नाचने लगती हैं।

करम पूजा इतवा का प्रिय त्यौहार है। भजन भुक्त ने एक बार बताया था कि जब संथाल और मुंडा लोग अपनी जमीन पर रहते थे, तब यह त्यौहार बहुत ही सज धज के साथ मनाया जाता था। खेत फसलों की हरियाली से लहलहाते थे।

''दादा जी, अब वे खेत कहां गये?''

''जादू के खेल की तरह सब कुछ खत्म हो गया है, बेटे!''

''और हम फिर भी करम पूजा मनाते हैं!''

''हममें से कुछ लोगों के पास अब भी थोड़ी बहुत जमीन बची है। और मौसम के आने पर मौसम का त्योहार तो मनाना ही पड़ता है बेटे!''

सुबल मुरमू इतवा को त्यौहार की रीति समझाने की कोशिश करता है। रतन, जो हाई स्कूल में पढ़ने जाता है, दोस्तों को बताता है कि स्कूल में तो सरस्वती पूजा भी मनाई जाती है।

''हां! क्यों नहीं! हमारे गांव के कई लड़कों ने वहां से पढ़ाई की है। उनमें से कम से कम दस तो अध्यापक बन गये हैं। सही शिक्षा के बिना आदिवासियों की उन्नति कैसे हो सकती हैं!''

आलोमणि बताती है, 'जब हम बच्चे थे, तब कहां थे आज की तरह के स्कूल! आज तो लड़कियां भी स्कूल जाने लगी हैं। मेरे भाई ने तो अपनी लड़की को शहर के स्कूल में पढ़ने को भेज दिया है। वह वहीं रहेगी भी''।

सुबल बताता है, ''उन दिनों स्कूल बहुत दूर होते थे, फिर हमारे मां बाप भी स्कूल भेजने का महत्त्व कहां समझते थे। लड़कियों की पढ़ाई तो दूर की बात है, लड़कों का भी पढ़ने के लिए बहुत ही कम भेजा जाता था''।

''हम अपने बच्चों को पढ़ाते लिखाते नहीं, इसीलिए दुख दर्द झेलते हैं। हर कोई तो चाचा गुरा सिंह की तरह भाग्यवान नहीं हो सकता!''

गुरा सिंह का नाम लेते ही हर कोई हंसने लगा। इतवा ने सोचा गुरा सिंह की कहानी जरूर पता करेगा। आखिर ये हैं कौन?

तब इतवा सात वर्ष का रहा होगा। एक दिन मंगल ने कहा, ''चलो, मैं तुम्हें स्कूल ले चलूंगा, मैंने तुम्हारी नेकर ठीक कर दी है, कमीज थोड़ी फटी तो है, पर है साफ। चल जायेगी''। संथाल स्कूल मास्टर गंगाधर हैंब्रोम ने इतवा का नाम ओर अनुक्रमांक लिखा। मंगल से कहा, ''इसे एक स्लेट और खड़िया ले दें। मैं इसे किताबें, कापियां और लकड़ी की पेंसिलें दे दूंगा''।

''आप कब तक किताबें दे दीजिएगा?''

''जब सरकार से मिलेंगी। इस साल कक्षाएं तो चालू हो गयीं लेकिन किताबें अभी तक नहीं पहुंची। किताबों के लिए मैं रोज रोज शहर का चक्कर लगा रहा हूं। सड़कों की हालत तो आप जानते ही हैं। चाचा, आप मेरा परिचय हाथीघर आदिवासी क्लब के कार्यकर्ताओं से करवा दीजिए न''!

''ठीक है, मैं करवा दूंगा। लेकिन मास्टर साहब, इस बच्चे का जरा ध्यान रखिएगा। पढ़ना लिखना ठीक से सीख जाय। मैं तो इसके पिताजी को भी पढ़ाना लिखाना चाहता था। लेकिन क्या करें! आदिवासी के पास जब जमीन नहीं होती, तब उसका चूल्हा भी नहीं जलता। इसीलिए हमें अपने बच्चों को बाबुओं की चाकरी में भेजना पड़ता है।''

''यह समस्या तो झेलनी ही पड़ती है चाचा, खासकर हम आदिवासियों को। मुझे मोहिनी गांव के स्कूल में जाने के लिए अपने घर वालों से ही झगड़ना पड़ा था। वैसे तो मुझे वजीफा मिलता था, तब भी मुझे बाबू के खेत में काम करना पड़ता था। दूसरे नंबर पर आया, तब जाकर मेरे पिताजी को कुछ दया आयी।''

''चूंकि हम लोग पढ़ना लिखना नहीं जानते थे, कोर्ट कचहरी से घबराते थे इसलिए बाबू लोगों ने धीरे–धीरे हमारी जमीनें, हमारे पशु पक्षी, सब हड़प लिये।''

''हां चाचा, आप सही कहते हैं। शिक्षा बहुत जरूरी है। अनपढ़ होने के कारण हमें पता ही नहीं चलता कि सरकार ने हमारे लिए कौन कौन–सी योजनाएं चला रखी हैं।''

''मैं अपने इतवा को तुम्हें सौंपे जा रहा हूं।''

''आप निश्चिंत रहें। सुनो इतवा, एक बात पूछता हूं, जब तुम्हें कहीं से गुड़ मिलता है, तो तुम उसे अकेले खाते हो या अपने दोस्तों के साथ मिल–बांट कर खाते हो।''

''हम मिल–बांट कर खाते हैं।''

'तो सुनो, हर अच्छी चीज को मिल–बांट कर ही लेना चाहिए। स्कूल तो बहुत अच्छी जगह है, तुम अपने दोस्तों को भी अपने साथ ले आना।''

''मैं उन्हें भी आने को कहूंगा।''

''आज मैं तुम्हें अपने भारत के बारे में बताउंगा कि यह कितना बड़ा है।''

''भा–र–त। क्या भारत ही हमारा देश है?''

''देखो, इसे नक्शा कहते हैं।''

''हाथीघर कहां है?''

''यहाँ हमारा प्रांत पश्चिम बंगाल है। यह हमारा मेदिनीपुर है। हाथीघर यहीं कहीं होना चाहिए, दक्षिण पश्चिमी किनारे पर।'' ''मुझे क्यों नहीं दिख रहा।''

''मैं शहर से जिले का नक्शा ले आउंगा। लेकिन तुम हाथीघर कैसे ढूंढोगे?''

''क्यों? मै। पढ़ना सीखूंगा। तब सब बातें जान जाउंगा।''

''यहीं मैं सुनना चाहता था। अच्छा, अब इस श्यामपट्ट को देखो। 'अ' यह हमारी वर्णमाला का पहला अक्षर है। यहीं से तुम्हें अपनी पढ़ाई आरंभ करनी है।''

''अ, अ आ।''

''अब इसे अपनी स्लेट पर लिखो। मैं तुम्हें लिखाना बताउंगा।''

पहली मुलाकात के बाद ही इतवा को अपने अध्यापक बहुत अच्छे लगने लगे। जैसे दया और धैर्य की प्रतिमूर्ति। इतवा को एक ही शिकायत थी कि जब तक वह स्कूल में रहा, मास्टर जी ने अपने पाठ की शुरूआत लड़ाइयों की कहानी से कभी नहीं की।

एक दिन इतवा स्कूल से आ रहा था। रास्ते में अपनी नयी साइकिल पर जाते हुए मोती बाबू दिख गये। रूककर बोले, ''तो मंगल अपने पोते को भी स्कूल भेज रहा है।''

''हां बाबू।''

''वह बहुत बड़ी गलती कर रहा है। पिछले दिनों मैंने मंगल को कहा तो था कि मैं पोते को भी काम दूंगा।''

इतवा चुपचाप खड़ा रहा।

''यदि तुम लोग ही स्कूल जाने लग गये तो हमारा काम कौन करेगा। चलो कब तक पढ़ोगे। घर में कितना अनाज होगा।''

जैसे ही बाबू बड़े पीपल से आगे निकले, इतवा भाग कर अपने दादा जी के पास आया। पीपल का यह पेड़ बहुत पुराना है। लोग कहते हैं इस पर सांप रहते थे। इतवा को इस बात पर यकीन नहीं होता। उसे तो यही मालूम है कि सांप जमीन के भीतर बिलों में रहते हैं और चिड़ियों के घोंसलों से अंडे खाने के लिए ही कभी कभार पेड़ पर चढ़ते हैं। सांप बड़े कपटी होते हैं। कभी कभार छिप कर घरों में घुस जाते हैं और

लोगों को काट लेते हैं। पानी मे रहने वाले सांप और धामिन सांप जहरीले नहीं होते लेकिन धामिन सांप अपनी पूंछ से कोड़े मार सकती है। कुछ संथाल लोग सांपों को खाते भी हैं। बताते हैं। कि इनका मांस बड़ा स्वादिष्ट होता है।

''क्या इसका मांस खेत के चूहों जैसे स्वादिष्ट होता है?''

''उससे थोड़ा अलग।''

हालांकि मंगल तो ये सब चीजें नहीं खाता लेकिन इतवा ने अपने दोस्तों के यहां किस्म किस्म के जानवरों जैसे– खेत के चूहे, सेह, सांप, आदि का मांस चख रखा है।

इतवा ने घर पहुंच कर मंगल को बताया कि रास्ते में मोती बाबू मिले थे और उसके स्कूल जाने की बात जानकर बड़े नाराज हुए थे।

''मुझे पता है। मोती बाबू नहीं चाहते कि हमारे बच्चे स्कूल में पढ़ें। पर सरकार ने आदिवासी बच्चों के लिए हमारे अपने इलाकों में स्कूल खोले हैं। आदिवासियों को जरूर पढ़ना लिखना सीखना चाहिए। हर कोई तो गुरा सिंह की तरह भाग्यशाली नहीं हो सकता।''

''गुरा सिंह ने क्या किया?''

''फिर कभी बताउंगा।''

सारी बकरियों को इकट्ठा करके वे अंदर लाये। इतवा ने ट्यूबवेल से पानी भरा। मंगल ने खाना बनाने के लिए आग जलायी। इतवा को मछली काटने को दी। ''बाबा, फिर यह न कहना कि अपनी सारी कमाई मछली पर खर्च कर दी।''

''नहीं बेटा नहीं। आज स्कूल में तुम्हारा पहला दिन था न! इसीलिए कुछ खास चीज तो बनानी चाहिए!''

सुबल मुरमू, मंगल के साथ गपशप करने और बीड़ी सुलगाने आया। बचपन से ही मंगल और सुबल दोस्त रहे हैं। दोनों ही बड़े अच्छे निशानेबाज रहे हैं। स्थानीय मुकाबलों में अनेक पुरस्कार जीतते रहे हैं। आदिवासी लोग अमूमन अच्छे खिलाड़ी होते हैं। चाहे किसी हाई स्कूल का वार्षिक उत्सव हो या बिरसा मुंडा की जंयंती, सिधू व कान्हू की याद में शहीदी दिवस हो या कोई और क्रीड़ उत्सव, निशानेबाजी के मुकाबले जरूर होते हैं। कुछ लोढ़ा लड़कियां भी श्रेष्ठ निशानेबाज हैं लेकिन वे इन मुकाबलों में हिस्सा नहीं लेतीं।

इतवा ने धीरे से सुबल को बताया, ''मास्टरजी कहते हैं, सिंगराई और रतन को भी स्कूल लाना''।

''मैं जानता हूं इतवा, उन्हें भी जाना चाहिए स्कूल। पर मोती बाबू के भाई के पास 50 गाय भैंसे हैं। मैं उन्हें बोल चुका हूं कि दोनों लड़कों को जानवर चराने के लिए भेज दूंगा।''

मंगल ने आह भरी, ''यह कब तक चलेगा! एक जून खाना, कुछ कपड़े और कुछ धान के बदले हमारे बच्चे कब तक अनपढ़ रहेंगे। सारी दुनिया आगे बढ़ रही है लेकिन आदिवासी बच्चे अनपढ़ व अज्ञानी ही रह जायेंगे''।

''आप सही कहते हैं। हर कोई तो गुरा सिंह की तरह भाग्यशाली नहीं हो सकता।''

इतवा से रहा न गया, ''आज तो आपको गुरा सिंह की कहानी बतानी ही पड़ेगी''।

''मैं बताऊँगा बेटे तुम्हें गुरा सिंह की कहानी, सुबल ने ढाढस बंधाया। ''लेकिन पहले मछलियों को काटकर और साफ करके तो लाओ। देखते हैं मंगल को खाना बनाना याद भी है कि नहीं। पता है इतवा, एक

जमाने में तेरे बाबा बहुत ही बढ़िया खाना बनाते थे। शिकार के त्यौहार के बाद अकसर यही खाना बनाता था। अब तो जानवर भी जाने कहां गायब हो गये हैं। क्यों मंगल! जंगल भी कहां खो गये?''

उदास होकर मंगल बोला, ''उड़ीसा में नया ग्राम के आस पास थोड़े से जंगल बच गये हैं। सुवर्णरेखा पर नया पुल बन जाने से थोड़ा फायदा तो जरूर होगा, लेकिन जो थोड़े बहुत जंगल दिखाई देते हैं, तब ये भी गायब हो जायेंगे। हमारे पास रह जायेगा सिर्फ रेगिस्तान''।

''इससे पहले कि वहां से पेड़ गायब हो जायें, हमें एकबार तो बच्चों को वह जगह दिखा लानी चाहिए। कम से कम ये भी देखें कि आदिवासी लोग पूरी तरह से जंगलों पर कैसे निर्भर करते हैं।''

''हाँ, हमें जरूर चलना चाहिए।''

इतवा पूछने लगा, ''पूरी तरह से जंगलों पर कैसे निर्भर करते हैं? मैं समझा नहीं''?

सुबल जैसे ख्वाबों में खो गया, ''महुवे के बीजों से तेल निकालकर वे खाना बनाते हैं और अपनी बत्तियाँ जलाते हैं। महुवे के फूलों को सुखाकर वे छोटे–छोटे गोले बनाते हैं और खाते हैं। कंद–मूलों, पत्तियों और फलों के सहारे वे अपनी गुजर करते हैं। वे हिरण, चिड़ियों और छोटे जानवरों का शिकार भी खाते हैं। साल के पत्तों के दोने बनाते हैं और नीम व साल के बीजों की पिराई करके तेल निकालते हैं''।

''उनकी जिंदगी तो बड़े मजे में कटती होगी।''

''एक जमाना था जब सभी आदिवासी ऐसा ही जीवन जीते थे। जंगल हमारी मां है। हम सब उसकी संतानें हैं। जब हमने खेती शुरू की तब भी हमने जंगलों पर निर्भरता छोड़ी नहीं, पर इतवा अब जमाना बदल गया है। इसलिए जीना है तो जमाने के साथ–साथ आदिवासियों को भी बदलना होगा।''

''सुबल, इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि बच्चों को स्कूल भेजो।''

''हाँ, तुम सही कहते हो। इस साल नहीं, तो अगले साल ही सही।''

''बाबा, आप मुझे गुरा सिंह की कहानी नहीं बता रहे?'' इतवा अधीर होकर बोला।

''इस कहानी के लिए तुम मंगल के ही पीछे क्यों पड़े हो ? मैं बताऊँगा तुम्हें गुरा सिंह की कहानी। अब तुम स्कूल भी जाने लगे हो, इसलिए तुम्हें यह कहानी जरूर सुनानी चाहिए। आदिवासी इस कहानी से बहुत कुछ सीख सकते हैं।''

''अच्छा तो सुनो, हालांकि यह थोड़े समय पहले की ही बात है लेकिन लगता है जैसे युगों पुरानी दास्तान हो। सुवर्णरेखा के किनारों पर मुंडा और लोढ़ा आदिवासियों के अनेक गांव थे। इन गांवों में गुरा सिंह की बहुत जमीन थी। मुझे लगता है मंगल भाई तुम्हारा इतवा भी बड़ा हीरा लड़का है। बाजार वाले दिन हमेशा भजन भुक्त के साथ घर लौटता है। एक जमाना था, जब भजन के पास भी काफी जमीन थी। अच्छा सुनो, गुरा सिंह बहुत बड़ा जमींदार था। उसके पांच लड़के थे और दस मवेशी उसके सारे लड़के मुर्ख और अनपढ़ निकले। गुरा सिंह शराब का बड़ा शौकीन था।''

''सुबल भाई, यह शराब तो ऐसी है कि पूछो मत। हम आदिवासी इसे नहीं, बल्कि यह हमें पी जाती है।''

''मंगल भाई, हम अपने दुख भुलाने के लिए पीते हैं शराब।''

''यह जो देशी शराब है ना 'हेंदिया', इससे कुछ नुकसान नहीं होता। नुकसान तो उस विदेशी शराब से होता है जो बाजार में मिलती है।''

''इसी की वजह से गुरा सिंह खत्म हो गया। गोपी उससे कहा करता था, पैसे की परवाह मत कर गुरा, जितनी इच्छा हो पी ले। मैं तुम्हारे खाते में लिख दूंगा। बस इस कोरे कागज पर अंगूठा टेक दो।''

''तो गुरा सिंह वैसा ही करता था?''

''हां, वह वैसा ही करता था। साल के अंत में गुरा सिंह को पता चला कि उसके पास सिर्फ 10 बीघा जमीन बच गयी है। बाकी पर गोपी ने कब्जा जमा लिया था। वह रोता–बिलखता हमारे पास आया और कहने लगा, मैं घोर संकट में हूँ भैया। गोपी मुझे अदालत में ले जा रहा है। मैंने सारी जमीन उसे बेच दी है, ऐसा बयान देने को कहता है। उसके लड़के भी मदद मांगने के लिए आये। तब मैंने, मंगल ने और अन्य लोगों ने गुरा से वचन लिया कि वह शराब पीना छोड़ देगा। तब हमने उसे लेकर शहर जाने और वहां पर चतुर संथाल वकील से मिलने का दिन तय किया।''

''एक आदिवासी वकील?''

''हाँ, बेटा, आदिवासी वकील हो सकते हैं, अध्यापक हो सकते हैं और अब तो आदिवासी लड़कियाँ भी अध्यापिका और नर्सें बन रही हैं। वकील ने पहले कहा, 'इस गोपी की पिटाई की जरूरत है और गुरा सिंह की भी'। उसके बोलने का यही तरीका था। अंत में उसने कहा, 'गुरा, जब तुम अदालत के सामने जाओ तो जो भी मजिस्ट्रेट कहे तुम वहीं कहना अपनी तरफ से एक भी शब्द मत बोलना।''

''तब क्या हुआ?''

''अदालत में चपरासी ने आवाज लगाई, ...'गुरा सिंह। गुरा सिंह।' .....और तब गुरा ने दुहराया,..... ..... 'गुरा सिंह!' ..... 'ढंग से जवाब दो, क्या तुम गुरा सिंह हो?' वह भी वैसे ही बोला, 'ढंग से जवाब दो, क्या तुम गुरा सिंह हो?' इसी प्रकार कुछ देर तक चलता रहा। मजिस्ट्रेट अचरज में पड़ गया। गोपी के वकील ने कहा, 'क्या तुम गधे हो? इतनी बेकूफी क्यों दिखा रहे हो'? गुरा ने दुहराया, 'क्या तुम गधे हो, इतनी बेवकूफी क्यों दिखा रहे हो'?

''मजिस्ट्रेट ने पूछा, 'क्या तुम सीधी सादी बात भी नहीं समझ पा रहे हो? वाकई मूर्ख हो क्या?' गुरा ने भी मजिस्ट्रेट को ये ही शब्द सुना दिये। मजिस्ट्रेट को गुस्सा आ गया। उसने कहा, ''मैं इस मामले की सुनवाई टालता हूं। मामला रद्द समझा जाय। इस अदालत में तुम ऐसे बेवकूफ आदमी को कहां से पकड़ लाये ?''

''तब?''

''तब संथाल वकील ने मजिस्ट्रेट को सारी बातें बतायीं। गोपी को प्रताड़ित होना पड़ा। उस पर जुर्माना भी हुआ। उन्होंने जान लिया कि वह गैर कानूनी तरीके से आदिवासियों की जमीन खरीद रहा था।''

''गुरा सिंह को जमीन वापस मिली?''

''बिल्कुल। तब हम सब चाय की दुकान पर गये। गोपी वहां आया और चिल्लाया, 'गुरा सिंह, मैं तुम्हें खत्म करके रहूंगा'। और गुरा ने जवाब दिया, 'गोपी, मैं तुम्हें खत्म करके रहुंगा'। हम सब ने गोपी को चाय की दुकान से भगा दिया।''

''गोपी भाग गया और कभी वापस नहीं आया। आदिवासियों को शराब की लत में डालकर उनकी जमीन हथिया लेने का यह अंतिम प्रयास था। हमने बाजार से उसकी दुकान भी हटवा दी। यही है गुरा सिंह की कहानी। यही अवसर था जब एक अशिक्षित आदिवासी ने दूसरों का मुकाबला किया और अपनी जमीन बनाये रखी।''

मंगल ने कहा, ''यदि वह पढ़ा लिखा होता, तो वह अपनी जमीन को रख सकता था। इससे साबित होता है कि कैसी भी बाधायें हों, आदिवासियों को शिक्षित अवश्य होना चाहिए।''

जिस समय इतवा को नयी पुस्तकें मिलीं, ग्रीष्म अवकाश शुरू हो चुका था। अध्यापक ने कहा, ''छुट्टियों में अक्षरमाला अच्छी तरह सीखना। तब हम स्कूल में पाठ शुरू करेंगे''।

''क्या छुट्टियों में आप घर जा रहे है साहब?''

''हाँ, मुझे भी पढ़ाई करनी है।''

''क्यों? आप तो पहले ही अध्यापक हैं?''

''मैं और अच्छा अध्यापक बनने के लिए पढ़ाई कर रहा हूँ। तुम्हें अच्छी तरह पढ़ना सीखना चाहिए। कौन जानता है कि एक दिन कक्षा में तुम ही प्रथम आओ।''

हाँ, इतवा बहुत अच्छी तरह पढ़ना चाहता था, लेकिन उसे अपने दादाजी की भी मदद करनी होती थी। मोती बाबू के घर बहुत काम था। मंगल स्वयं सारा काम नहीं कर सकता था।

ग्रीष्म अवकाश के दौरान बहुत सी नयी बातें हुई। रतन, सिंगराई और इतवा दुबारा एक साथ खेलने लगे। जब इतवा ने उन्हें गुरा सिंह की कहानी सुनाई तो वे बहुत चकित हुए। वे खूब हंसे।

इसके बाद भजन भुक्त की पोती सोनी का विवाह हुआ।

भजन ने इतवा से कहा, ''मैं गरीब आदमी हूँ, मैं सभी लोगों को नहीं बुला सकता, लेकिन तुम जरूर आना''।

जब मंगल ने यह सुना तो सोचा कि यदि इतवा शादी में गया तो बाड़ कौन करेगा।

''शादी एक ही दिन की तो है। मैं उसके बाद बाड़ लगा दूंगा। मैं दुलंग के पार जाकर नागफनी की शाखायें ले आऊँगा और रोप दूंगा। इससे बकरियां नहीं आ सकेंगी। जब बारिश आयेगी तो शाखाएं बढ़ जायेंगी । ठीक है न।''

''हाँ वह तो ठीक है। पर तुम्हें पढ़ाई भी करनी है।''

''मैं पढ़ाई भी कर लूंगा और बाकी सारे काम भी कर दूंगा। आप देखते रहना।''

''ठीक है। तुम शादी में चले जाना। भजन तुम्हें बहुत चाहता है।''

कटाई के बाद खेत में बची पड़ी धान को तुंग कहते हैं। गांव का कोई भी व्यक्ति उसे ला सकता है। लेकिन इसमें आदमियों को जंगली चूहों से मुकाबला करना पड़ता है। ये चूहे सुरंग जैसे बिल बनाते हैं और उनके परिवार यहां अन्न के गुप्त भंडार बना लेते हैं। आदिवासी बच्चे इन गोदामों का पता लगाकर चावल निकाल लेते हैं और कुछ तो चूहों को भी खा जाते हैं।

आज भी लोढ़ा लोग चूहों, गिरगिटों, सर्पो, केंकड़ों, मछलियों आदि को खा जाते हैं। उन्हें जंगल के कई गुप्त रहस्यों में विशेषज्ञता प्राप्त होती है। जो लोढ़ा खेती बाड़ी में लगे हैं उनमें भी यह शिकार कौशल बरकरार है। वे बकरी की खाल का ढोल बनाते हैं जिसे नाचते गाते समय बजाते हैं। जितने भी देवी–देवताओं की पूजा करते हैं, उनमें शीतला का त्यौहार अभी भी महत्त्वपूर्ण है।

इतवा ने मंगल से कहा, ''छुट्टियों में मैं गायों को चराने ले जाऊँगा। तुम सब्जियों की क्यारियों में पानी देना। मैं बाहर के आंगन को भी आराम से बुहार दूंगा''।

''लेकिन तुम पढ़ोगे कब?''

''मैं शाम को पढ़ लूंगा। तुम देख लेना।''

''ठीक है, पर सावधान रहना।''

''क्यों, तुम क्या सोच रहे हो?''

''मैं सोच रहा था कि दिन भर मैं बेकार नहीं बैठ सकता। मैं खजूर के पत्ते काट लाऊँगा और उनसे चटाई बुनूंगा। मैं पहले भी यही करता था।''

जब इतवा गायों को बाड़ से बाहर ले जा रहा था तब मोती बाबू ने उसे देखा। वे प्रसन्न मुद्रा में थे।

''तो तुमने अपने दादा की मदद करने का निर्णय लिया है।''

''जी बाबू साहब। छुट्टियों में।''

''क्यों, तुम फिर स्कूल जाओगे?''

इतवा ने केवल सिर हिलाया। मोती बाबू को क्या पता कि स्कूल में अध्यापक ने उसे क्या कहा था। उन्होंने कहा था कि वे सभी संथाल, मुंडा और लोढ़ा बच्चों को स्कूल लायेंगे। जब स्कूल दुबारा खुलेगा तो वे कहानियों की पुस्तकें लायेंगे और पढ़कर सुनायेंगे। परीक्षा के बाद वे अपने पास से पुरस्कार देंगे।

अध्यापक ने कहा था, ''इतवा, पुराने समय में केवल धनुष वाण रखना ही पर्याप्त था। आजकल के जमाने मे जीने के लिए शिक्षा जरूरी है''।

जब इतवा बाबू की गायें और अपनी बकरियाँ लेकर दुलंग के पार आया और सुवर्ण–रेखा के रेतीले किनारों पर पहुंचा तो अचानक ही वह स्वतंत्र और प्रसन्न नजर आया। उसने अपनी बाहें पसारी और नाचने लगा। वह कूदा और चक्कर काटने लगा। मछली का जाल लगाकर वह लंबी–लंबी घास में चलने लगा। उसने देखा कि बूढ़ा खरगोश वहीं पर था। इसे वहीं रहने दो, उसने सोचा। इतवा उसे न तो मारेगा और न ही कहीं किसी को उसके बारे में बतायेगा। उसने कुछ खाने वाले पत्ते एकत्र किये और पांच–छह मछलियाँ पकड़ी। उसकी नजर चिड़ियों के कुछ खाली घोंसलों पर गयी। उसने विचार किया कि इन्हें घर ले जाय। लकड़ी जलाने के लिए ये बहुत अच्छे रहेंगे। सोना की शादी में दो दिन और थे। आज और कल। परसों शादी है। जैसे ही उसने घोंसलों को टाट के थैले में रखा, आकाश और हवा की ओर मुंह करके चिल्लाया, ''तुम्हें क्या पता है, मैं सब कुछ पढ़ने लगूंगा–अ, आ, इ, ई''। आकाश ने जैसे जवाब दिया हो। लंबी–लंबी घास खुशी से लहराने लगी।

अगले दिन सोना का भाई इतवा को बुलाने आया। ''शादी से पहले और भी कई नेग हैं, क्या तुम उन्हें नहीं देखोगे?''

इतवा उसके साथ चला गया। उसने देखा कि महिलाएँ गांव के देवता गरम के पास एक नया मिट्टी का घड़ा ले गयी हैं और उसे गीत गा–गाकर प्रतिष्ठित कर रही हैं। आज सोना का पिता इस घड़े में मछली और भात पकायेगा और अपने पूर्वजों का श्राद्ध करेगा। महिलाएँ हाथों में फावड़े लिये हुए गीत गा रहीं थीं और पुरुष ढोल बजा रहे थे। उन्होंने पुराने सिद्ध वृक्ष की जड़ों से तीन फावड़े मिट्टी ली तथा भजन के आंगन में लाकर बिछा दी जहाँ विवाह की वेदी बनायी जानी थी। जमीन पर फावड़ा चलाने से पहले धरती माता की पूजा की गयी तथा उसे चोट पहुँचाकर मिट्टी निकालने के लिए क्षमा मांगी गयी।

इसके बाद महिलाएँ गीत गाती हुई दुलंग नदी पर गयीं। एक तीर चलाकर पानी में पहचान बनायी गयी तथा पानी को घड़ों में भरा गया। तब दुलहे के घर पर एक संदेशवाहक भिजवाया गया जिसको एक पात्र दिया गया। इस पात्र में पके हुए चावल, मिठाइयाँ, एक शीशा, एक कंधा और एक जोड़ी कंगन रखे हुए थे। सोना नयी साड़ी में पूरी दुलहन लग रही थी। उसकी गर्दन पर एक लाल रंग की माला थी, कलाई पर

पीले धागे बंधे थे और हल्दी से उसकी देह चमक रही थी। कोई विश्वास नहीं कर सकता था कि यह वहीं सोना है जो कल तक जंगलों में बकरी चराती घूमती थी।

''हमारे साथ खाओ'', इतवा से भजन ने कहा।

''दादाजी, आज नहीं, इतवा ने जवाब दिया, ''अब मुझे बाबा के पास जाने दीजिए''।

पुराने आम के बगीचे में इतवा ने मंगल को देखा। उसने लकड़ियों का एक गट्ठर एकत्र किया हुआ था और थका सा, बहुत अधिक थका सा दिख रहा था। इतवा को मालूम नहीं था कि उसके दादाजी कितने बूढ़े हो चुके हैं।

''बाबा, घर जाओ। मैं गाय चरा लूंगा, बगीचे में पानी दे दूंगा और गट्ठर घर ले जाऊँगा''

''मुझे यहीं आराम करने दो। इस गट्ठर को दुकानदार के पास ले जाओ और इसके बदले थोड़ा तेल और नमक ले आना। जब घर पहुंच जाओ तो चुल्हे पर चावल चढ़ाकर उबाल लेना।''

''मेरे साथ आओ।''

''मैं जल्दी ही आऊँगा। बताओ कि भजन के घर तुमने क्या देखा?''

''उनके बहुत से रीति–रिवाज वही हैं जो हमारे हैं।''

''तुम सोना को क्या उपहार दोगे?''

''मैं क्या दे सकता हूँ?''

''जो मैंने चटाई बुनी है वह दे देना।''

''वह तो बहुत सुंदर है। तुमने उसमें रंग भी भरे हैं। बाजार में वह पांच या सात रुपये की बिक जायेगी।''

मंगल कांपती आवाज में बोलने लगा, ''इतवा , तुम्हें शादी खाली हाथ नहीं जाना चाहिए। आदिवासियों में शादी–विवाह पर सबकी जिम्मेदारी होती है। जिसकी जितनी हैसियत हो हरेक कुछ न कुछ लेकर आता है''।

''जो शहरों में रहते हैं वे क्या करते हैं?''

''वे शादी के लिए गांवों में आते हैं, ठीक है न? मुझे क्या पता कि हमारे रिवाजों को वे शहरों में कैसे निभाते हैं।''

''चंद चाचा बता रहे थे कि जिस गांव के हम असली रहनेवाले हैं, वहाँ के रीति–रिवाज अलग थे।''

''उसे पता होगा। वह बहुत घूमा–फिरा है। लेकिन समय कितना भी क्यों न बदल गया हो हम अपने रीति–रिवाज, तीज त्योहार और रहन–सहन को बनाये रखने की कोशिश करते हैं। ऐसा नहीं है कि हम उनको उसी रूप में बनाये हुए हैं जैसे वे शुरू में थे। पहले सरहुल बाहा या सुरजोम बाहा त्योहारों पर सैकड़ों साल वृक्ष फूलों से लदे होते थे, पलाश और सेमल पर रंगों की छटा होती थी। सारी रात आदमी और औरतें नाचते रहते थे। वे भी क्या दिन थे। और आज उतने पेड़ ही नहीं है।''

''हमारे अध्यापक कह रहे थे कि स्वतंत्रता दिवस के उपलक्ष्य में हम काफी सारे पेड़ लगायेंगे।''

''यह तो बढ़िया बात है। अब तुम दुकानदार के यहाँ जाओ।''

''आपने कितनी सारी लकड़ियाँ इकट्ठी की है, बाबा।''

''ये इस सूखे आम के पेड़ की हैं।''

''बाबा, इसके नीचे मत बैठो। कोई शाखा टूटकर गिर पड़ेगी।''

''नहीं रे, यह पेड़ तो मेरा दोस्त है।''

''हूँ! क्या कोई पेड़ भी दोस्त होता है?''

''हाँ, होता है। मैं इन सब पेड़ों को जानता हूँ। तुम्हें पता भी नहीं है, इन सब पेड़ों की शादी हो चुकी है।''

''शादी।''

''हाँ, लोढ़ा दुलहे को अपनी दुलहन से विवाह करने से पहले आम के पेड़ से शादी करनी होती है। इसी प्रकार लड़कियों को पहले महुआ के पेड़ से शादी करनी पड़ती है।''

''अजीब रिवाज हैं। इतवा। हर किसी को पेड़ की तरह मजबूत और उपयोगी होना चाहिए।''

इतवा लकड़ी के गट्ठर को दुकानदार के पास ले गया। वहाँ से तेल और नमक लेने के बाद वह मछली का शोरबा बनायेगा और उनमें वे जड़े भी डालेगा जो उसने कल एकत्र की थीं। दादाजी हर शाम कुछ चावल घर लाते थे। बाबू उसे चावल देते रहते थे और वर्ष के अंत में हिसाब में जोड़ देते थे। बाबा को पानी भरना होता था। आंगन बुहारना होता था। बाबा खुद इतना सारा काम कैसे कर सकते थे!

क्या इतवा को मां–बाप की याद आती थी? उसे उनमें से कोई भी याद नहीं था। दादा ही उसके सब कुछ थे। उसे पता था कि उसकी मां गाया करती थी। इतवा भी अच्छा गाता था। एक दिन वह मुंडा नौटंकी मंडली में शामिल होगा और राजा की भूमिका करेगा। अपनी लकड़ी की तलवार भांजेगा और गलत काम करने वालों को सजा देगा।

कटाई के बाद यदि फसल अच्छी होती तो आदिवासी नौटंकी करते थे। हाथीघर के आदिवासी लोग अपनी ही नौटंकी मंडली शुरू करने वाले थे।

जब इतवा ने घर का काम पूरा कर लिया तो दरवाजे की कुंडी लगायी और दौड़कर मोती बाबू के बाग में चला गया और सब्जी की क्यारियों में पानी देने लगा। मोती बाबू बहुत खुश हुए। उसने कहा, ''अरे इतवा, तुम तो बहुत जल्दी काम करते हो। यदि तुम मेरे पास काम करो तो भरपूर खाना मिलेगा और कपड़े भी। केवल नेकर ही नहीं बल्कि कमीज और गमछा भी''।

''लेकिन .....।''

''हाँ, मैं जानता हूँ मंगल के दिमाग में तो भूसा भरा है। रतन और सिंगराई को देखो। मेरे भाई के घर में वे राजा की तरह रह रहे हैं।''

इतवा ने इन सब की अनसुनी करने का प्रयास किया।

अगले दिन इतवा ने एक तरफ नेकर और कमीज पहनी तथा बगल में नयी चटाई दबाये विवाह के लिए चल पड़ा। दुलहा दूसरे गांव का एक हृष्ट–पुष्ट जवान था। सोना सोने की परी जैसी लग रही थी। इतवा को उसके भाई मानिक ने बताया कि दुलहा बहुत बहादुर था। एक बार वह भालू भी मार चुका है।

''कहाँ ?''

''उनके गांव के पास वाले जंगल में। मैं भी वहाँ शिकार के लिए जाऊँगा।'' महिलाएँ गा रहीं थीं :

दुलहन की शादी होगी महुए के पेड़ से
और दुलहा ब्याहेगा बड़े से आम को
कितना आनन्द होगा इस विवाह का

दुलहे का नाम होगा हर आम के पत्ते पर
दुलहन के नाम की होंगी महुए की पत्तियाँ
कितना आनन्द होगा इस विवाह का।

सोना को उसी पानी में नहलाया जिसे तीर चलाकर चिह्नित किया गया था और एक दिन पहले घड़ों में भरकर लाया गया था। इसके बाद वह लाल किनारी वाली सफेद साड़ी पहनकर बाहर आयी। उसने अपनी भाभी का हाथ पकड़ रखा था। दुलहे ने भी अपनी भाभी का हाथ पकड़ रखा था। लोढ़ा पुजारी ने उनके हाथों पर धागा बांधा और एक–दूसरे के हाथ में हाथ दिया। इसके बाद उसने पानी के छींटे मार कर उन्हें पवित्र किया और हाथ छुड़वाये। सोना को दुलहे के चारों ओर उलटा घुमाया गया। जब दुलहा उसे घर ले जायेगा तब वह उसकी मांग में सिंदुर भरेगा।

विवाह संस्कार के पश्चात् चावल और मांस की दावत दी गयी। सांझ ढलने से पहले एक परदे वाली बैलगाड़ी में सोना को बिठाकर उसके पति के घर रवाना किया गया। सोना रोने लगी और उससे भी अधिक उसकी छोटी बहन रोयी। बूढ़े और अंधे भजन ने कहा, ''आज मेरी प्यारी बिटिया दूर जा रही है। मेरे ह्रदय को आज वह खाली कर गयी है''।

आदिवासियों में दहेजप्रथा नहीं है। दुलहे वालों को दुलहन की कीमत के रूप में 101 रुपये देने पड़ते हैं जबकि दुलहन सोने की तरह चमक रही होती है।

मंगल ने कहा, ''सोना की शादी हो गयी। अब अपनी पढ़ाई पर भी ध्यान दो इतवा और आज शाम को आदिवासी क्लब में भी जाओ। एक बैठक है''।

''क्या बच्चे बैठक में आ सकते हैं ?''

''हाँ, इस बार बच्चे भी आयेंगे।''

''हाँ, इस बार बच्चे भी आयेंगे।''

''तुम्हारी आवाज क्यों कांप रही है? क्या तबीयत ठीक नहीं है?''

''अब मैं बूढ़ा हो चला हूँ। अब पहले वाली बात कहाँ है।''

लेकिन तुम्हें उस समय एक जिंदा रहना है जबतक कि मैं बड़ा न हो जाऊँ और इस विद्यालय से मोहिनी के विद्यालय में नहीं पहुंच जाऊँ जहाँ छात्रावास भी है। एक दिन मैं भी अध्यापक बनूँगा। यदि तुम उस समय तक जीवित नहीं रहोगे तब मैं तुमसे कभी बात नहीं करूँगा, बाबा।''

''मैं बिरसा भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि उस दिन तक मुझे अवश्य जीवित रखे।''

गर्मियों की छुट्टियाँ बहुत अच्छी रहीं। हर वर्ष 1855–1856 की संथाल क्रांति की याद में 30 जून को सिधू कान्हू दिवस मनाया जाता है जिसके उपलक्ष्य में हाथीगढ़ आदिवासी क्लब टूर्नामेंट आयोजित करता है। 15 नवंबर को संथालों के महान नायक बिरसा भगवान का जन्मदिन मनाया जाता है। शाम के समय क्लब के अंदर ये लोग पुस्तक पत्रिकाएँ पढ़ते हैं और कैरम खेलते हैं। जितेन मुरमू नामक एक सज्जन शहर से इस क्लब के लिए खेल पत्रिकाएँ, अखबार और अन्य पुस्तकें भेजता है। वह शहर में एक बैंक में काम करता है। बड़े बच्चे, छोटे बच्चे को फुटबाल का प्रशिक्षण देते हैं और उन्हें कसरत आदि सिखाते हैं।

प्रहराज सिंह मुंडा बारी गांव में वरिष्ठ अध्यापक है। उसने कहा, ''कुछ पढ़ाई–लिखाई और खेल सीखो। इससे तुम्हें जल्दी नौकरी मिलेगी''।

आदिवासी क्लब सांस्कृतिक समारोह जैसे नृत्य और संगीत प्रतियोगिताओं तथा अंत्याक्षरी का भी आयोजन करता है।

लेकिन इस वर्ष हर चीज अलग थी।

प्रहराज ने कहा, ''यह बहुत दुख की बात है कि हमारे अधिकांश बच्चे पढ़ने नहीं जाते जो जाते हैं, वे ठीक ढंग से नहीं पढ़ते''।

चंद ने कहा, ''जब मां–बाप बच्चों को रोटी नहीं दे सकते तो पढ़ायेंगे कैसे''?

''हाँ, यह बात मैं आपसे कहना चाहता हूँ। जितेन ने हमें एक पैट्रोमैक्स की लालटेन भेजी है। हममें से जो लोग अतिरिक्त समय दे सकते हैं, वे शाम के समय यहाँ आकर बच्चों को पढ़ायें। हममें से प्रत्येक परिवार इसमें एक रुपया देगा। उस रकम का उपयोग तेल, स्लेट, पेंसिल आदि खरीदने में किया जायेगा।''

''ठीक है। लेकिन वे पढ़ भी गये तो क्या होगा। चरानी तो है गाय ही।''

''यह तुम कैसे कह सकते हो। हम बड़ों को अध्यापकों की बात अच्छी तरह समझनी चाहिए। उनकी उपेक्षा के लिए भी हम जिम्मेदार हैं। हमारे बच्चे दिन में स्कूल जायेंगे और रात को हम उन्हें पढ़ायेंगे।''

भैरों सिंह मुंडा इन वर्षों में बहुत ही गुस्सैल हो गया था। वह चिल्लाया, ''यह तो ठीक है। लेकिन हमारी सड़कों का क्या होगा? हमारे यहाँ सड़कें नहीं हैं, इसलिए यहाँ बसें नहीं आतीं और चूंकि पानी का कोई साधन नहीं है, इसलिए हम वर्ष में दो फसल नहीं ले सकते''।

''हम लोगों में चेतना जगायेंगे और सब अपनी मांगों के लिए लड़ेंगे। माँ भी बच्चे को तभी दूध पिलाती है जब वह रोता है। लेकिन सबसे जरूरी है शिक्षा।''

मंगल ने भैरों सिंह को गुरा सिंह की कहानी याद दिलाया। प्रहराज ने दुहराया ''हाँ गुरा सिंह की कहानी याद करो।'' कभी भी अपना अंगूठा खाली कागत मत लगाओ। साथ ही शराब पीना छोड़ दो''।

''और कुछ,'' भैरों ने चिल्लाकर पूछा।

''ठीक है। हमारे बारे में कहा जाता है कि हमने वनों का विनाश किया है। हमें पता है कि इसके लिए वास्तव में कौन उत्तरदायी है। इस वर्ष हमारे स्कूली बच्चे क्लब में, स्कूल के आसपास और हमारे घरों के आसपास पेड़ लगायेंगे।''

''तुम्हें पौधा कौन देगा?''

''सरकार।''

''तुम क्लब में कब से शाम को पढ़ाना शुरू कर रहे हो?''

''कल से ही क्यों नहीं? हम बच्चों को गाना और बांसुरी बजाना भी सिखायेंगे। इतवा, रतन, सिंगराई सभी अच्छा गाते हैं। मैंने गाय चराते समय उनसे सुना है। मंगल चाचा की तरफ देखो–वह इस उम्र में भी कड़ी मेहनत करता है ताकि अपने पोते को स्कूल भेज सके। तुम तो जवान आदमी हो। क्या तुम उससे कुछ नहीं सीख सकते?''

''ठीक है। नया अध्यापक अच्छा लगता है। देखते हैं हम उसकी क्या मदद करते हैं।''

''लोढ़ा लोगों में लड़कियाँ भी बी. ए. तक पढ़ गयी हैं। चाचाजी, यह बात तो माननी पड़ेगी कि प्रयत्न किया जाय तो सफलता अवश्य मिलती है।''

इतवा बहुत खुश था। जो क्लब अभी तक बड़े लोगों का था अब वहाँ बच्चे भी जाने लगेंगे।

अगले दिन गाय चराते समय इतवा जोर–जोर से गा रहा था। दुलंग नदी के पानी की ओर देखकर उसने कहा, ''अब तुम देखना अच्छी तरह देखना, हर एक चीज बदलेगी। हमारा अध्यापक बहुत अच्छा है, क्या तुम्हें पता है''?

आदिवासी बच्चों को स्कूल में कई प्रकार की मुश्किलें आती हैं। चूंकि वे खुले मैदानों में नदी के पास जंगलों के बीच रहते हैं, इसलिए उन्हें पाठशाला का कमरा घुटनभरा लगता है। अगर उनका अध्यापक भी आदिवासी हो तो उन्हें बड़ी खुशी होती है। वह उन्हें समझ सकता है और उनकी समस्याओं को अच्छी तरह जान सकता है। हालांकि इस क्षेत्र के अधिकतर आदिवासी बंगाली भाषा बोलते हैं, लेकिन बेचारे गरीब अशिक्षित ग्रामीण शहरी लोगों द्वारा बोली गयी बंगाली को भी नहीं समझते। फिर भी उन्हें मोती बाबू की भाषा समझने में कोई परेशानी नहीं होती क्योंकि वे उसी गांव के हैं।

अचानक इतवा ने एक गोह देखी। वह चिल्लाया, ''छुप जा, छुप जा''। लोढ़ा लोग दुर्गा पूजा के दूसरे दिन गोह की तलाश में रहते हैं। एक कथा के अनुसार इस दिन उनका राजा कालकेतु एक बार जादुई नीला फूल लेने के लिए जंगल में गया। वहां कहीं भी यह फूल नहीं मिला। तब वह उसके बदले में गोह पकड़ लाया। आने पर गोह वनदेवी बन गयी और उसने कालकेतु को एक आदिवासी राज्य की स्थापना में मदद की। लोढ़ा लोग, जो पेशे से शिकारी होते हैं, मानते है कि वे भी कालकेतु की तरह वीर और साहसी बनेंगे।

कुछ कंदमूल और हरी सब्जियाँ एकत्र करने के बाद इतवा अपनी प्रिय भैंस की पीठ पर चढ़ गया। उसे सिधू या कान्हू अथवा बिरसा भगवान के बारे में बहुत कम ज्ञात था। लेकिन वह आसमान की ओर देखकर चिल्लाया, ''एक बार मैं पढ़ना सीख जाऊँ तो इन सबके बारे में जान जाऊँगा''।

इतवा को यह पता नहीं था कि यह उसकी खुशी का अंतिम दिन है, पढ़ाई सीखने के बारे में उसकी इच्छा थोड़े ही समय रहने वाली थी। जब वह भैंस की पीठ पर लेटकर गुनगुनाता हुआ गांव की ओर आ रहा था तो उसने देखा कि लोग चिल्लाते हुए उसकी ओर दौड़े आ रहे हैं, ''इतवा, तुम कहाँ हो ? मंगल एक पेड़ के नीचे दब गया है''।

''नहीं।'' इतवा चीखा और चंद तथा भैरों की तरफ भागा। वे इतने मुरझाये हुए क्यों लग रहे थे ?

''मोती बाबू के आम के बगीचे की तरफ जाओ।''

''क्या हुआ है ?''

''पेड़ की एक शाखा गिर गयी है। तुम जाओ। मैं गायों को गौशाला में बांध दूंगा।''

''यह वही बूढ़ा पेड़ होगा''।

हाँ, यह वही बूढ़ा पेड़ था। लोगों ने पेड़ की शाखा को हटाया और मंगल को उसके नीचे से हटाकर लिटा दिया। उसकी दायीं टांग सूज गयी थी और माथे पर पसीना बह रहा था जिससे लगता था कि उसे बहुत दर्द हो रहा है।

''बाबा, बाबा''।

''इतवा तुम ठीक कहते थे कि यह पेड़ गिरने वाला है। बीड़ी जलाने के लिए इस डाल की ओर झुका तो यह मेरे ऊपर गिर पड़ी।''

चंद ने कहा, ''भगवान का शुक्र है कि शाखा तुम्हारे सीने पर नहीं गिरी''।

''मुझे घर ले चलो।''

लोगों ने हाथों की पालकी सी बनाकर उसे घर पहुंचाया। उनमें से एक आदिवासी डॉक्टर शशि लोढ़ा को बुला लाया।

प्रहराज सिंह अक्सर गांव के रोगियों को इलाज के लिए शहर के अस्पताल ले जाता था। उसने तत्काल अपनी राय दी कि यह मामला शशि लोढ़ा के बस का नहीं है।

''जाओ ओर मोती बाबू से रबर के टायरों वाली गाड़ी ले आओ।''

''क्या बाबू गाड़ी देंगे?''

''उन्हें देनी चाहिए। मंगल चाचा उनके पास बरसों से काम कर रहे हैं और उनका काम करते हुए ही चोट लगी है।''

मंगल ने अचेत से स्वर में कहा ''नहीं, मैं जिंदगी में कभी अस्पताल नहीं गया।''

''चाचा, हर चीज कभी न कभी पहली बार होती है। इस बार मोहिनी का स्वास्थ्य केन्द्र इसे ठीक नहीं कर सकता।''

''हमारी शशि बकरियों और गायों की टूटी हड्डियां जोड़ देती है।''

''लेकिन तुम गाय बकरी थोड़े ही हो। तुम्हें इतवा के बारे में भी सोचना चाहिए।''

गुस्से से चंद ने कहा ''मोती बाबू का यह पेड़ काटना पड़ेगा। क्या पता यह किसी की जान न ले ले''।

आलोमणि ने इस पेड़ के बारे में बताना चाहा कि इस पर भूत प्रेत रहते हैं लेकिन आदमियों ने उसे चुप करा दिया। मोती बाबू ने थोड़ी आनाकानी करने के बाद गाड़ी दे दी। हालांकि उसने यह भी कहा कि अगर मंगल की जगह उसका पोता इतवा काम पर आता तो यह दुर्घटना नहीं होती। ''यह सब मंगल की जिद्द के कारण हुआ है।'' मोती बाबू ने कहा ।

मोती बाबू ने कुछ पैसे भी दिये। वे यह बात जानते थे कि पानी में रहकर मगर से बैर नहीं किया जाता । उसे चारों ओर से आदिवासियों ने घेर रखा था। अगर वे नाराज हो जाते तो वे संदेशवाहक द्वारा संदेश दूसरे गांव में भेज देते जो हाथों में साल के पेड़ के गांठदार डंडे रखते और फिर वे मोती बाबू की जमीन पर धनुषबाण से हमला कर देते। (आदिवासियों में संदेश भेजने की प्रचलित प्रथा के अनुसार साल पेड़ की भीतरी छाल की गांठे बनाते हैं। चार संदेशवाहक चार गांवों में जाते हैं। तीन गांठों का अर्थ है कि घटना तीन दिन बाद होगी। प्रत्येक गांव से संदेशवाहकों को अन्य गांवों में भेजा जाता है और यह क्रम चलता रहता है। इस प्रकार खबर प्रकाश की गति से सब ओर फैलती है) हाल ही में आदिवासी अपना अधिकार मांगना सीख गये हैं। इसलिए मोती बाबू ने अब उन्हें नाराज करना ठीक नहीं समझा।

मंगल की मुख्य चिंता इतवा के बारे में थी। आलोमणि ने उसे दिलासा दिया। ''हम तुम्हारे पोते और बकरियों की देखभाल करेंगे। हम रोजाना शाम को तुम्हारे घर में दिया जला देंगे। तुम्हें चिंता करने की कोई बात नहीं''।

''लड़के को अकेला सोना पड़ेगा।''

''अरे, हम सब हैं तो।''

इतवा ने उनके साथ शहर जाते समय कुछ नहीं कहा। प्रहराज काफी लोगों को जानता था। मंगल को अस्पताल में भर्ती कराने के बाद उसने डॉक्टर से कहा कि अगले दिन उसका एक्सरे कर दिया जाय।

रात को वे सब शंकर सिंह मुंडा के घर सोये। वह शिक्षा विभाग में चपरासी था। उन्होंने एक ढाबे में खाना खाया। ढाबे वाले ने चावल ज्यादा नहीं दिये। इतवा के यहाँ अच्छा नहीं लग रहा था।

अगले दिन मंगल की एक्सरे रिपोर्ट आयी जिससे पता चला कि उसकी पैर की हड्डी टूटी हुई है और उसकी टांग पर एक माह तक पलस्तर चढ़ा रहेगा। डॉक्टर ने बताया कि उसके बाद भी यह पता नहीं कि वह इस टांग से काम कर सकेगा या नहीं। उसने कहा कि यह तो भगवान ही जानता है।

मंगल बोला ''मैं वापस आऊँगा। इतवा, तुम स्कूल जाओगे''।

वापसी यात्रा के दौरान इतवा चुपचाप रहा। इतवा को स्कूल जाना सपना सा लगने लगा। आम की डाल ने मंगल की टांग ही नहीं तोड़ी, इतवा का संसार ही झंझोड़ दिया। रास्ते में प्रहराज ने इतवा के लिए कुछ मिठाई और आम का मुरब्बा खरीदा। वे एक बैलगाड़ी पर चढ़कर गांव आये।

प्रहराज शहर से खबर लेकर आया कि मंगल को एक माह और अस्पताल मे रहना पड़ेगा क्योंकि बूढ़े व्यक्ति की हड्डियाँ जुड़ने में बहुत समय लेती हैं।

अब मोती बाबू से बचना मुश्किल था। सुबल, चंद, आलोमणि, भैरों सभी ने इतवा को सलाह दी थी कि मोती बाबू की बात मान लें। उन्होंने कहा ''फिलहाल काम करो। उसकी बात न मानना पागलपन है। हम जानते हैं कि तुम्हारे बाबा तुम्हें पढ़ाना चाहते हैं। जब वह अस्पताल से वापस आ जाय तो दुबारा स्कूल जाना शुरू कर देना''।

इतवा काफी समझदार हो गया था। उसे पता था कि उसके पास एक झोपड़ी, एक बाड़ा और थोड़ी बकरियाँ ही हैं। यदि वह मोती बाबू के यहाँ काम करेगा तो कम से कम उन लोगों के साथ रह सकेगा, जो उसकी जान–पहचान के हैं।

मोतीबाबू उसके निर्णय से बहुत खुश हुए, ''अब तुम होशियार हो गये हो, तुम जानते हो कि यदि भगवान चाहता कि तुम पढ़ो तो तुम्हारे बाबा के साथ यह दुर्घटना नहीं होती''।

इतवा ने कोई जवाब नहीं दिया। दिनभर काम करने के बाद रात को रतन के साथ पढ़ने बैठा तो वह कुछ याद न कर सका। जब स्कूल खुले तो अध्यापक को उसकी अनुपस्थिति का पता चला। लड़कों ने जो कुछ हुआ सारी बात अध्यापक को बतायी। अध्यापक ने कहा ''मैं उसके पास जाकर देखता हूँ कि वह कैसे दिन बिता रहा है''। वह रात को क्लब भी न जा सका क्योंकि बकरियाँ अकेली रह जातीं।

लेकिन इतवा ने उसकी परवाह नहीं की। उसे डर था कि कहीं वह रो न पड़े लेकिन वह उस समय रोया जब मंगल अस्पताल से आया और उसे एक जोरदार तमाचा मारते हुए कहा, ''अच्छा होता अगर मैं मर जाता। तो तुम फिर से ग्वाले बन गये। मैं नहीं चाहता था कि तुम अनपढ़ रहो और बाबुओं के गुलाम रहो। तुमने कटहल के पेड़ क्यों नहीं बेच दिये? तुमने बकरियाँ क्यो नहीं बेच दीं। तुम मेरे आने तक भूखे क्यों नहीं रहे? तुमने पढ़ाई क्यों छोड़ी, इतवा''?

''बाबा, बाबू इंतजार नहीं करता। वह किसी और को नौकर रख लेता। और तुम तो इतना काम करने के लायक नहीं रहे हो।''

''क्यों नहीं ?''

''तुम्हें लाठी के सहारे चलना पड़ता है। तुम कड़ी मेहनत नहीं कर सकते।''

आलोमणि ने कहा, ''मंगल दादा, समझदारी से काम लो। इतवा एक दिन अवश्य स्कूल जायेगा। सदा एक–सा समय नहीं रहता''। मंगल चुप रहा।

लेकिन अगले दिन वह गया और खजूर के पत्ते तोड़ लाया। खाली क्यों बैठा जाय। आदिवासी आदमी कभी खाली नहीं बैठ सकता। इसलिए वह चटाई बुनेगा।

इतवा स्कूल नहीं गया। लेकिन वह बाबू के घर उस समय जाता जब रास्ते में अध्यापक विद्यार्थियों को कहानी सुना रहा होता। इतवा को पता था कि अध्यापक शहर से कहानी की किताब लाये थे जैसा कि उन्होंने पहले वादा किया था। वे लड़ाइयों और युद्धों की कहानियाँ सुना रहे थे।

''हाँ, एक बार बहुत भयंकर लड़ाई हुई थी। कभी दोनों तरफ से तीर चल रहे थे, कभी एक ओर से तोपें, बंदूकें और दूसरी तरफ तीर चलाये जा रहे थे।''

इतवा भी इन कहानियों को किसी दूसरे को सुनाना चाहता था। उसने आकाश को जंगली घास को, पानी को आवाज दी और सारी कहानी सुनायी। वह जानता था कि हमेशा से कहीं न कहीं लड़ाइयाँ चल रही थी। बूढ़ा खरगोश भी तो जिंदा रहने के लिए लड़ता रहता है। किसी आदमी या जानवर की छाया देखते ही उसके कान खड़े हो जाते हैं और वह घने जंगल में खो जाता है। जब इतवा पानी में जाल फेंकता है तो मछलियों का संघर्ष शुरू हो जाता है और वे उससे दूर रहने का प्रयास करती हैं। जंगली फूलों को देखो। मानसून के समय वे सुवर्णरेखा नदी के लाल पानी में छुप जाते हैं और पानी घट जाता है तो बाहर आ जाते हैं। सारा जीवन आक्रमण और बचाव ही तो है।

एक दिन अध्यापक ने उसे पकड़ लिया, ''इतवा, भागो मत ! सच बताओ तुम स्कूल क्यों नहीं आ रहे''?

''मैं मोती बाबू के यहाँ काम करता हूँ।''

''क्या तुम जानते हो कि पढ़ने आओगे तो तुम्हें वजीफा मिलेगा और दुपहर में नाश्ता भी।''

इतवा खड़ा–खड़ा पैर के अंगूठे से जमीन कुरेदने लगा और साहस करके बोला ''तुम रोजाना लड़ाई की बात करते हो। क्या लड़ाई खत्म हो गयी है या चल रही है''।

अध्यापक ने इतवा के सिर पर हाथ रखा और बोला ''लड़ाइयाँ तो बहुत हैं, इतवा''।

''क्या सब खत्म हो गयी हैं?''

''क्यों क्या तुम किसी लड़ाई में जाकर लड़ना चाहते हो ?''

''मैं? मैं? सुनो साहब, तुम अपना खाना खुद पकाते हो न। यदि मैं आपको कुछ कंदमूल लाकर दूँ तो क्या लोगे? बहुत स्वादिष्ट हैं।''

''तुम पहले स्कूल आओ।''

''बाबा भी चाहते हैं कि मैं स्कूल जाऊँ पर उनकी टांग में चोट लग गयी थी। मोती बाबू ने धमकी दी थी कि वे कोई और आदमी रख लेंगे। इसलिए ..... और घर में खाने को दाना भी नहीं था।''

''क्या तुम्हारे अन्य दोस्तों के साथ भी यही समस्या है।''

''हाँ।''

''तुम रात को क्लब में क्यों नहीं आते?''

''क्यों?''

''क्योंकि कल बिरसा दिवस है।''

''तो क्या हुआ ? वह तो हर साल आता है।''

''इस साल बहुत भीड़ होगी, हमें क्लब को सजाना है!''

''मुझे बेवकूफ मत बनाओ। इतवा, तुमलोग बहुत सिर पर चढ़ते जा रहे हो। समय खराब है इसलिए मैं चुप हूँ। लेकिन यह तो हद हो गयी है। बिरसा दिवस ! भारी भीड़ ! तुम जैसे जंगली लोगों के मुंह से यह शब्द अच्छे नहीं लगते।''

इतवा गुस्से से भर गया। लेकिन मोती बाबू का डर इतना था कि कुछ कहे बिना घर आ गया।

''बाबा क्या हम जंगली है?''

''कौन कहता है?''

''मोती बाबू ऐसा क्यों कहते हैं? क्या इसलिए कि हम अनपढ़ हैं, गरीब हैं, काली चमड़ी वाले हैं और मिट्टी की झोपड़ियों में रहते हैं?''

''तो हम जंगली हैं। क्या वाकई मैं जंगली हूँ। अगर हम जंगली उसका काम नहीं करेंगे तो कौन करेगा?''

''अब मैं उसके यहाँ काम नहीं करूंगा''।

''आओ। चलो नदी पर चलें। कपड़े धोने के सोड़े से अपने कपड़े धोयें। हम कल की सभा में चाहे फटे कपड़े पहनें पर गंदे नहीं पहनने चाहिए। अपने बालों की तरफ देखो। ऐसा लगता है कौवे का घोंसला है। आओ मैं इन्हें धो दूँ।''

अगली सुबह इतवा बहुत खुश हुआ जब उसने भारी भीड़ देखी और जोशीले नारे सुने, ''बिरसा मुंडा अमर रहे! सिधू–कान्हू अमर रहें''। वह रतन और सिंगराई को वहाँ देखकर भी बहुत प्रसन्न हुआ।

''क्या बाबू ने तुम्हें आज की छुट्टी दे दी ?''

''बाबू से किसने पूछा है? हमें आना था हम आ गये।''

''इस साल तो बहुत ज्यादा भीड़ है!''

''तुम्हें पता है, हमारे अध्यापक अध्यक्ष बने हैं?''

इस वर्ष मंगल, भैरों, सुबल, आलोमणि और भजन सभी मंच पर बैठे हुए थे। प्रहराज लाउडस्पीकर ठीक कर रहा था। वह बैटरी से चलता था। इससे पहले इतनी अधिक तैयारी कभी नहीं हुई थी।

''शांत ! शांत!'' प्रहरात ने माइक पर आवाज लगायी।''

''हमारे अध्यक्ष गंगाराम हैं जो आपसे दो शब्द कहेंगे।''

गंगाराम खड़ा हो गया। वह अच्छे शरीर का और मृदुभाषी था। लेकिन आज वह दबंग और जोशीली आवाज में बोला ''हमारे पास हमारे महान वीरों–सिधू और कान्हू की तस्वीरें नहीं हैं जिससे उनके चित्र बनाये जा सकें। लेकिन बिरसा भगवान की है। कृपया आप सब लोग खड़े हो जायें। मैं यह आपको दिखाता हूँ। कृपया इन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करें। मैं बताता हूँ कि इनकी जीवनी आपको हिम्मत और प्रेरणा देगी। आपको अहसास होगा कि गरीब होते हुए भी आप हर बाधा को पार कर सकते हैं''।

क्या चित्र था वह ! सफेद कागज पर लकड़ी के कोयले से बना हुआ चित्र बांस की चटाई पर चिपका था। साफे में उनका चेहरा बहुत रौबीला लग रहा था। आंखे मशाल की तरह चमक रही थीं। अचानक भीड़ के बीच से इतवा चिल्लाया, ''बिरसा भगवान ! बिरसा भगवान ! उन्होंने हमारे लिए जबर्दस्त लड़ाई लड़ी थी।'' भीड़ ने भी यही कहा और वहाँ ''जय बिरसा भगवान ! जय बिरसा भगवान''! के नारे गुंजने लगे।

इतवा का सीना गर्व से मानो फटा जा रहा था। क्या वाकई आदिवासी जंगली हैं हम लोग क्या जंगली लोगों में बिरसा मुंडा जैसा कोई महानायक हुआ था ? ऐसे लग रहा था जैसे इतवा खुशी और उल्लास से लंबा हो गया है। नहीं, इतवा जान गया कि वे जंगली नहीं हैं। उनके जीवन को ग्वालों और मजदूरों के

जीवन तक सीमित नहीं रखा जा सकता। इतवा पढ़ेगा और उन सवालों का जवाब ढूंढेगा जो उसे सताते हैं। वे गारे मिट्टी की झोपड़ियों में ही क्यों रहते हैं ? बाबा एक फटी सी धोती में ही क्यों रहते हैं ? उसे इन सब बातों के उत्तर चाहिए। उसका सीना ऐसे हिलोरें ले रहा था जैसे अंदर दुलंग और सुवर्ण रेखा नदियाँ उफन रही हैं।

ग्वाले के रूप में इतवा के जीवन का यह अंत था। आदिवासी लोगों के नेताओं ने अपने बच्चों को पाठशाला भेजने का रास्ता निकालने का निश्चय किया। अपने क्षेत्र में आदिवासी स्कूल खुलवाने के लिए उन्होंने संघर्ष करने की ठानी। लंबे संघर्ष के बाद उन्हें स्कूल के लिए आदिवासी अध्यापक भी मिल गया। यदि आदिवासी बच्चे स्कूल न जाते तो ये सारे प्रयत्न निरर्थक हो जाते।

मोती बाबू को बड़ा गुस्सा आया, ''क्या, कोई ग्वाला काम पर नहीं आयेगा! मैं देखता हूँ उनको''।

लेकिन उनके बड़े भाई ने उन्हें समझाया, ''तुम क्या कर लोगे? हम केवल छह परिवार हैं जबकि वे सैकड़ों। उनसे विनय करो, आग्रह करो, गुस्सा करने के दिन लद गये''।

हार मानते हुए मोती बाबू उनके पास गये।

''क्या हुआ मंगल?''

''कुछ नहीं हुआ, बाबू।''

''इतवा काम पर नहीं आया, क्या तुम्हें पता नहीं है।''

''इतवा अब काम नहीं करेगा। वह पढ़ने जाने लगा है। उसे वहाँ किताबें मिलेंगी, कपड़े मिलेंगे, भोजन मिलेगा, वजीफा भी ! जब सब कुछ मिल रहा है तो काम पर क्यों आयेगा ?''

''पर इस पढ़ने–लिखने से उसे क्या मिलेगा ? क्या वह राजा बन जायेगा या और कुछ ?''

''बाबू, वह इंसान बन जायेगा।''

''यह षड्यंत्र है। लेकिन तुम भी कान खोलकर सुन लो। जब रोपाई और कटाई का वक्त आयेगा तो मैं तुममें से किसी को भी काम नहीं दूंगा।''

मंगल ने अपना सिर खुजलाया और बोला, ''बाबू क्या यह ठीक होगा? हम ऐसा नहीं होने देंगे। हवा बदल गयी है बाबू । जंगली अब एक हो गये हैं''।

मोती बाबू को अपना गुस्सा पीकर घर लौटना पड़ा।

आज स्कूल मास्टर ने इतवा से कंद–मूल स्वीकार कर लिये। उसे यह करना भी चाहिए था। क्या अध्यापक अपने प्रिय छात्र से तुच्छ भेंट स्वीकार न करें?

विद्यालय के बाद इतवा नदी के पार गया। वह पीठ के बल रेत पर लेट गया और आकाश से बोला, ''तुम्हें पता है कितनी जबर्दस्त लड़ाई थी वह''? नदी, आकाश और घास–धूप में चमककर मुस्कुराने लगे। बुद्धू लड़का। इतवा मुंडा नहीं जानता था कि उसकी लड़ाई खत्म हो गयी है और वह जीत चुका है।

तो इस प्रकार इतवा की कहानी पूरी हुई।

प्रश्न अभ्यास

1. यह कहानी जिस बच्चे पर केन्द्रित है उसके जीवन के आधार पर 'आदिवासी बच्चा/बच्ची' विषय पर निबंध लिखिए।
2. कहानी से उन अंशों को चिन्हित कीजिए जिनमें संस्कृतियों का टकराव मुखर हुआ है। इन अंशों में भिन्न संस्कृतियों के प्रकृति के साथ संबंधों के तर्कों का विश्लेषण कीजिए।
3. बंधुवा मजदूरी तथा भारतीय राज्य के बीच संबंधों के बारे में यह कहानी क्या समझाती है?
4. शिक्षा तथा उत्पीड़नों से मुक्ति में संबंधों को समझने में यह कहानी किन–किन रूपों में मदद करती है?

प्रस्तावित कार्य :

1. इस कहानी जैसे ही अन्य कहानियों का संकलन करें।

2.3

बड़े भाई साहब

(प्रेमचन्द)

प्रस्तावना :

शिक्षा और परीक्षा एक ही है, यह बात हमारे समाज के जहन में अंदर तक पैठी हुई है। इतना कि, बिना परीक्षा के हम शिक्षा की कल्पना भी नहीं कर पाते हैं तथा परीक्षा की बात करते हुए हमारे मुख पर भय और तनाव न दिखे तो इसे अचरज माना जाता है। समाज में, बच्चों के मन पर भयावी परीक्षा हावी है, तो शिक्षा पर अनावश्यक ज्ञान का बोझ। पर, यह बात नई नहीं है और ना ही परीक्षा को लेकर समाज का नज़रिया और ना ही इस नज़रिये की आलोचना।

परीक्षा कभी भी सिर्फ स्कूल के भीतर की बात नहीं रही है। इसका जितना डर स्कूल के अंदर है, उससे कहीं ज्यादा डर स्कूल के बाहर के संसार में व्याप्त है। यह डर किस प्रकार से अपनी पैठ हर जगह बनाए हुए है, इसका एक जीवंत उदाहरण प्रेमचंद की रचना 'बड़े भाई साहब' में मिलती है। इसे उन्होंने 1910 में लिखा था जब हमारा देश औपनिवेशिक गुलाम था। लेकिन, यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि आज के लोकतांत्रिक भारत की शिक्षा के लिए भी यह रचना उतनी ही प्रासंगिक है। यह रचना परीक्षा को केन्द्र में रखकर मौजूदा शिक्षा व्यवस्था पर चोट करती है और ऐसी व्यवस्था का बाल मन पर पड़नेवाले असर को भी प्रस्तुत करती है, कैसे? इसका निर्णय आप स्वयं इस रचना को पढ़कर करें।

मेरे भाई साहब मुझसे पाँच साल बड़े थे, लेकिन केवल तीन दरजे आगे। उन्होंने भी उसी उम्र में पढ़ना शुरू किया था जब मैने शुरू किया था; लेकिन तालीम जैसे महत्त्व के मामले में वह जल्दबाजी से काम लेना पसंद न करते थे। इस भावना की बुनियाद खूब मजबूत डालना चाहते थे जिस पर आलीशान महल बन सके। एक साल का काम दो साल में करते थे। कभी–कभी तीन साल भी लग जाते थे। बुनियाद ही पुख्ता न हो, तो मकान कैसे पायेदार बने!

मैं छोटा था, वह बड़े थे। मेरी उम्र नौ साल की थी, वह चौदह साल के थे। उन्हें मेरी तंबीह और निगरानी का पूरा जन्मसिद्ध अधिकार था। और मेरी शालीनता इसी में थी कि उनके हुक्म को कानून समझूँ।

वह स्वभाव से बड़े अध्ययनशील थे। हरदम किताब खोले बैठे रहते और शायद दिमाग को आराम देने के लिए कभी कापी पर, कभी किताब के हाशियों पर चिड़ियों, कुत्तों, बिल्लियों की तस्वीरें बनाया करते थे। कभी–कभी एक ही नाम या शब्द या वाक्य दस–बीस बार लिख डालते। कभी एक शेर को बार–बार सुंदर अक्षर में नकल करते। कभी ऐसी शब्द–रचना करते, जिसमें न कोई अर्थ होता, न कोई सामंजस्य! मसलन एक बार उनकी कापी पर मैने यह इबारत देखी– स्पेशल, अमीना, भाइयों–भाइयों, दर–असल, भाई–भाई, राधेश्याम, श्रीयुत् राधेश्याम, एक घंटे तक– इसके बाद एक आदमी का चेहरा बना हुआ था। मैंने चेष्टा की

कि इस पहेली का कोई अर्थ निकालूँ; लेकिन असफल रहा और उनसे पूछने का साहस न हुआ। वह नवीं जमात में थे, मैं पाँचवी में। उनकी रचनाओं को समझना मेरे लिए छोटा मुँह बड़ी बात थी।

मेरा जी पढ़ने में बिलकुल न लगता था। एक घंटा भी किताब लेकर बैठना पहाड़ था। मौका पाते ही होस्टल से निकलकर मैदान में आ जाता और कभी कंकरियाँ उछालता, कभी कागज की तितलियाँ उड़ाता, और कहीं कोई साथी मिल गया तो पूछना ही क्या। कभी चारदीवारी पर चढ़कर नीचे कूद रहे हैं, कभी फाटक पर सवार, उसे आगे–पीछे चलाते हुए मोटरकार का आनंद उठा रहे हैं। लेकिन कमरे में आते ही भाई साहब का रौद्र रूप देखकर प्राण सूख जाते। उनका पहला सवाल होता– कहाँ थे? हमेशा यही सवाल, इसी ध्वनि में पूछा जाता था और इसका जवाब मेरे पास केवल मौन था। न जाने मुँह से यह बात क्यों न निकलती कि जरा बाहर खेल रहा था। मेरा मौन कह देता था कि मुझे अपना अपराध स्वीकार है और भाई साहब के लिए इसके सिवा और कोई इलाज न था कि स्नेह और रोष से मिले हुए शब्दों में मेरा सत्कार करें।

इस तरह अंग्रेजी पढ़ोगे, तो जिंदगी–भर पढ़ते रहोगे और एक हर्फ़ न आयेगा। अंग्रेजी पढ़ना कोई हँसी–खेल नहीं है कि जो चाहे पढ़ ले, नहीं तो ऐरा–गैरा नत्थू–खैरा सभी अंग्रेजी के विद्वान हो जाते। यहाँ रात–दिन आँखें फोड़नी पड़ती है और खून जलाना पड़ता है, तब कहीं यह विद्या आती है। और आती क्या है, हाँ, कहने को आ जाती है। बड़े–बड़े विद्वान भी शुद्ध अंग्रेजी नहीं लिख सकते, बोलना तो दूर रहा। और मैं कहता हूँ, तुम कितने घोंघा हो कि मुझे देखकर भी सबक नहीं लेते। मैं कितनी मेहनत करता हूँ, तुम अपनी आँखों देखते हो, अगर नहीं देखते, तो यह तुम्हारी आँखों का कसूर है, तुम्हारी बुद्धि का कसूर है। इतने मेले–तमाशे होते है, मुझे तुमने कभी देखने जाते देखा है, रोज ही क्रिकेट और हाकी मैच होते हैं। मैं पास नहीं फटकता। हमेशा पढ़ता रहता हूँ, उस पर भी एक–एक दरजे में दो–दो, तीन–तीन साल पड़ा रहता हूँ फिर तुम कैसे आशा करते हो कि तुम यों खेल–कुद में वक्त, गँवाकर पास हो जाओगे? मुझे तो दो–ही–तीन साल लगते हैं, तुम उम्र–भर इसी दरजे में पड़े सड़ते रहोगे। अगर तुम्हें इस तरह उम्र गँवानी है, तो बेहतर है, घर चले जाओ और मजे से गुल्ली–डंडा खेलो। दादा की गाढ़ी कमाई के रूपये क्यों बरबाद करते हो?

मैं यह लताड़ सुनकर आँसू बहाने लगता। जवाब ही क्या था। अपराध तो मैंने किया, लताड़ कौन सहे? भाई साहब उपदेश की कला में निपुण थे। ऐसी–ऐसी लगती बातें कहते, ऐसे–ऐसे सूक्ति–बाण चलाते कि मेरे जिगर के टुकड़े–टुकड़े हो जाते और हिम्मत टूट जाती। इस तरह जान तोड़कर मेहनत करने कि शक्ति मैं अपने में न पाता था और उस निराशा में जरा देर के लिए मैं सोचने लगता– क्यों न घर चला जाऊँ। जो काम मेरे बूते के बाहर है, उसमें हाथ डालकर क्यों अपनी जिंदगी खराब करूँ। मुझे अपना मूर्ख रहना मंजूर था; लेकिन उतनी मेहनत! मुझे तो चक्कर आ जाता था। लेकिन घंटे–दो घंटे बाद निराशा के बादल फट जाते और मैं इरादा करता कि आगे से खूब जी लगाकर पढ़ूँगा। चटपट एक टाइम–टेबिल बना डालता। बिना पहले से नक्शा बनाये, बिना कोई स्कीम तैयार किये काम कैसे शुरू करूँ? टाइम–टेबिल में, खेल–कूद की मद बिलकुल उड़ जाती। प्रातःकाल उठना, छः बजे मुँह–हाथ धो, नाश्ता कर पढ़ने बैठ जाना। छः से आठ तक अंग्रेजी, आठ से नौ तक हिसाब, नौ से साढ़े नौ तक इतिहास, फिर भोजन और स्कूल। साढ़े तीन बजे स्कूल से वापस होकर आधा घंटा आराम, चार से पाँच तक भूगोल, पाँच से छः तक ग्रामर, आधा घंटा होस्टल के सामने टहलना, साढ़े छः से सात तक अंग्रेजी कम्पोजीशन, फिर भोजन करके आठ से नौ तक अनुवाद, नौ से दस तक हिंदी, दस से ग्यारह तक विविध विषय, फिर विश्राम।

मगर टाइम–टेबिल बना लेना एक बात है, उस पर अमल करना दूसरी बात। पहले ही दिन से उसकी अवहेलना शुरू हो जाती। मैदान की वह सुखद हरियाली, हवा के वह हल्के–हल्के झोंके, फुटबाल की

उछल–कूद, कबड्डी के वह दाँव–घात, बालीबाल की वह तेजी और फुरती मुझे अज्ञात और अनिवार्य रूप से खींच ले जाती और वहाँ जाते ही मैं सब कुछ भूल जाता। वह जानलेवा टाइम–टेबिल, वह आँखफोड़ पुस्तकें किसी की याद न रहती, और फिर भाई साहब को नसीहत और फजीहत का अवसर मिल जाता। मैं उनके साये से भागता, उनकी आँखों से दूर रहने कि चेष्टा करता। कमरे मे इस तरह दबे पाँव आता कि उन्हें खबर न हो। उनकी नजर मेरी ओर उठी और मेरे प्राण निकले। हमेशा सिर पर एक नंगी तलवार–सी लटकती मालूम होती। फिर भी जैसे मौत और विपत्ति के बीच में भी आदमी मोह और माया के बंधन में जकड़ा रहता है, मैं फटकार और घुडकियाँ खाकर भी खेल–कूद का तिरस्कार न कर सकता।

2

सालाना इम्तहान हुआ। भाई साहब फेल हो गये, मैं पास हो गया और दरजे में प्रथम आया। मेरे और उनके बीच केवल दो साल का अंतर रह गया। जी में आया, भाई साहब को आड़े हाथों लूँ– आपकी वह घोर तपस्या कहाँ गयी? मुझे देखिए, मजे से खेलता भी रहा और दरजे में अव्वल भी हूँ। लेकिन वह इतने दुःखी और उदास थे कि मुझे उनसे दिली हमदर्दी हुई और उनके घाव पर नमक छिड़कने का विचार ही लज्जास्पद जान पड़ा। हाँ, अब मुझे अपने ऊपर कुछ अभिमान हुआ और आत्मसम्मान भी बढ़ा। भाई साहब का वह रोब मुझ पर न रहा। आजादी से खेल–कूद में शरीक होने लगा। दिल मजबूत था। अगर उन्होंने फिर मेरी फजीहत की, तो साफ कह दूँगा– आपने अपना खून जलाकर कौन–सा तीर मार लिया। मैं तो खेलते–कूदते दरजे में अव्वल आ गया। जबान से यह हेकड़ी जताने का साहस न होने पर भी मेरे रंग–ढंग से साफ जाहिर होता था कि भाई साहब का वह आतंक अब मुझ पर नहीं है। भाई साहब ने इसे भाँप लिया– उनकी सहज बुद्धि बड़ी तीव्र थी और एक दिन जब मैं भोर का सारा समय गुल्ली–डंडे की भेंट करके ठीक भोजन के समय लौटा, तो भाई साइब ने मानो तलवार खींच ली और मुझ पर टूट पड़े– देखता हूँ, इस साल पास हो गये और दरजे में अव्वल आ गये, तो तुम्हें दिमाग हो गया है; मगर भाईजान, घमंड तो बड़े–बड़े का नहीं रहा, तुम्हारी क्या हस्ती, है, इतिहास में रावण का हाल तो पढ़ा ही होगा। उसके चरित्र से तुमने कौन–सा उपदेश लिया? या यों ही पढ़ गये? महज इम्तहान पास कर लेना कोई चीज नहीं, असल चीज है बुद्धि का विकास। जो कुछ पढ़ो, उसका अभिप्राय समझो। रावण भूमंडल का स्वामी था। ऐसे राजाओं को चक्रवर्ती कहते हैं। आजकल अंग्रेजों के राज्य का विस्तार बहुत बढ़ा हुआ है, पर इन्हें चक्रवर्ती नहीं कह सकते। संसार में अनेकों राष्ट्र अंग्रेजों का आधिपत्य स्वीकार नहीं करते। बिल्कुल स्वाधीन हैं। रावण चक्रवर्ती राजा था। संसार के सभी महीप उसे कर देते थे। बड़े–बड़े देवता उसकी गुलामी करते थे। आग और पानी के देवता भी उसके दास थे; मगर उसका अंत क्या हुआ? घमंड ने उसका नाम–निशान तक मिटा दिया, कोई उसे एक चिल्लू पानी देनेवाला भी न बचा। आदमी जो कुकर्म चाहे करे; पर अभिमान न करे, इतराये नहीं। अभिमान किया और दीन–दुनिया से गया।

शैतान का हाल भी पढ़ा ही होगा। उसे यह अभिमान हुआ था कि ईश्वर का उससे बढ़कर सच्चा, भक्त कोई है ही नहीं। अंत में यह हुआ कि स्वर्ग से नरक में ढकेल दिया गया। शाहेरूम ने भी एक बार अहंकार किया था। भीख माँग–माँगकर मर गया। तुमने तो अभी केवल एक दरजा पास किया है और अभी से तुम्हारा सिर फिर गया, तब तो तुम आगे बढ़ चुके। यह समझ लो कि तुम अपनी मेहनत से नहीं पास हुए, अंधे के हाथ बटेर लग गयी। मगर बटेर केवल एक बार हाथ लग सकती है, बार–बार नहीं। कभी–कभी गुल्ली–डंडे में भी अंधा–चोट निशाना पड़ जाता है। उससे कोई सफल खिलाड़ी नहीं हो जाता। सफल खिलाड़ी वह है, जिसका कोई निशान खाली न जाय। मेरे फेल होने पर न जाओ। मेरे दरजे में आओगे, तो दाँतो पसीना आ जायेगा। जब अलजबरा और जामेट्री के लोहे के चने चबाने पड़ेंगे और इंगलिस्तान का इतिहास पढ़ना पड़ेगा! बादशाहों के नाम याद रखना आसान नहीं। आठ–आठ हेनरी ही गुजरे है। कौन–सा

कांड किस हेनरी के समय हुआ, क्या यह याद कर लेना आसान समझते हो? हेनरी सातवें की जगह हेनरी आठवाँ लिखा और सब नंबर गायब! सफाचट। सिफर भी न मिलेगा, सिफर भी! हो किस ख्याल में! दरजनों तो जेम्स हुए हैं, दरजनो विलियम, कोड़ियों चार्ल्स! दिमाग चक्कर खाने लगता है। आँधी रोग हो जाता है। इन अभागों को नाम भी न जुड़ते थे। एक ही नाम के पीछे दोयम, सोयम, चहारुम, पंजुम लगाते चले गये। मुझसे पूछते, तो दस लाख नाम बता देता। और जामेट्री तो बस खुदा की पनाह! अ ब ज की जगह अ ज ब लिख दिया और सारे नंबर कट गये। कोई इन निर्दयी मुमतहिनों से नहीं पूछता कि आखिर अ ब ज और अ ज ब में क्या फर्क है और व्यर्थ की बात के लिए क्यों छात्रों का खून करते हो। दाल–भात–रोटी खायी या भात–दाल–रोटी खायी, इसमें क्या रखा है; मगर इन परीक्षको को क्या परवाह! वह तो वही देखते हैं, जो पुस्तक में लिखा है। चाहते हैं कि लड़के अक्षर–अक्षर रट डालें। और इसी रटंत का नाम शिक्षा रख छोड़ा है और आखिर इन बे–सिर–पैर की बातों के पढ़ने से क्या फायदा?

इस रेखा पर वह लंब गिरा दो, तो आधार लंब से दुगुना होगा। पूछिए, इससे प्रयोजन? दुगुना नहीं, चौगुना हो जाय, या आधा ही रहे, मेरी बला से, लेकिन परीक्षा में पास होना है, तो यह सब खुराफात याद करनी पड़ेगी। कह दिया– 'समय की पाबंदी' पर एक निबंध लिखो, जो चार पन्नों से कम न हो। अब आप कापी सामने खोले, कलम हाथ में लिये, उसके नाम को रोइए। कौन नहीं जानता कि समय की पाबंदी बहुत अच्छी बात है। इससे आदमी के जीवन में संयम आ जाता है, दूसरों का उस पर स्नेह होने लगता है और उसके कारोबार में उन्नति होती है; लेकिन इस जरा–सी बात पर चार पन्ने कैसे लिखें? जो बात एक वाक्य में कही जा सके, उसे चार पन्ने में लिखने की क्या जरूरत? मैं तो इसे हिमाकत समझता हूँ। यह तो समय की किफायत नहीं, बल्कि उसका दुरूपयोग है कि व्यर्थ में किसी बात को ठूँस दिया। हम चाहते हैं, आदमी को जो कुछ कहना हो, चटपट कह दे और अपनी राह ले। मगर नहीं, आपको चार पन्ने रंगने पड़ेंगे, चाहे जैसे लिखिए। और पन्ने, भी पूरे फुलस्केप आकार के। यह छात्रों पर अत्याचार नहीं तो और क्या है? अनर्थ तो यह है कि कहा जाता है, संक्षेप में लिखो। समय की पाबंदी पर संक्षेप में एक निबंध लिखो, जो चार पन्नों से कम न हो। ठीक! संक्षेप में चार पन्ने हुए, नहीं शायद सौ–दो सौ पन्ने लिखवाते। तेज भी दौड़िये और धीरे–धीरे भी। है उल्टी बात या नहीं? बालक भी इतनी–सी बात समझ सकता है, लेकिन इन अध्यापकों को इतनी तमीज भी नहीं। उस पर दावा है कि हम अध्यापक है। मेरे दरजे में आओगे लाला, तो ये सारे पापड़ बेलने पड़ेंगे और तब आटे–दाल का भाव मालूम होगा। इस दरजे में अव्वल आ गये हो, तो जमीन पर पाँव नहीं रखते। इसलिए मेरा कहना मानिए। लाख फेल हो गया हूँ, लेकिन तुमसे बड़ा हूँ, संसार का मुझे तुमसे ज्यादा अनुभव है। जो कुछ कहता हूँ, उसे गिरह बाँधिए नहीं तो पछताइयेगा।

स्कूल का समय निकट था, नहीं ईश्वर जाने, यह उपदेश–माला कब समाप्त होती। भोजन आज मुझे निःस्वाद–सा लग रहा था। जब पास होने पर यह तिरस्कार हो रहा है, तो फेल हो जाने पर तो शायद प्राण ही ले लिए जायँ। भाई साहब ने अपने दरजे की पढ़ाई का जो भयंकर चित्र खींचा था; उसने मुझे भयभीत कर दिया। कैसे स्कूल छोड़कर घर नहीं भागा, यही ताज्जुब है; लेकिन इतने तिरस्कार पर भी पुस्तकों में मेरी अरुचि ज्यों–की–त्यों बनी रही। खेल–कूद का कोई अवसर हाथ से न जाने देता। पढ़ता भी था, मगर बहुत कम। बस, इतना कि रोज का टास्क पूरा हो जाय और दरजे में जलील न होना पड़े। अपने ऊपर जो विश्वास पैदा हुआ था, वह फिर लुप्त हो गया और फिर चोरों का–सा जीवन कटने लगा।

3

फिर सालाना इम्तहान हुआ, और कुछ ऐसा संयोग हुआ कि मैं फिर पास हुआ और भाई साहब फिर फेल हो गये। मैंने बहुत मेहनत न की पर न जाने कैसे दरजे में अव्वल आ गया। मुझे खुद अचरज हुआ। भाई साहब ने प्राणांतक परिश्रम किया था। कोर्स का एक–एक शब्द चाट गये थे; दस बजे रात तक इधर, चार

बजे भोर से उधर, छः से साढ़े नौ तक स्कूल जाने के पहले। मुद्रा कांतिहीन हो गयी थी, मगर बेचारे फेल हो गये। मुझे उन पर दया आती थी। नतीजा सुनाया गया, तो वह रो पड़े और मैं भी रोने लगा। अपने पास होने वाली खुशी आधी हो गयी। मैं भी फेल हो गया होता, तो भाई साहब को इतना दुःख न होता, लेकिन विधि की बात कौन टाले।

मेरे और भाई साहब के बीच में अब केवल एक दरजे का अंतर और रह गया। मेरे मन में एक कुटिल भावना उदय हुई कि कहीं भाई साहब एक साल और फेल हो जायँ, तो मैं उनके बराबर हो जाऊँ, फिर वह किस आधार पर मेरी फजीहत कर सकेंगे, लेकिन मैंने इस कमीने विचार को दिल से बलपूर्वक निकाल डाला। आखिर वह मुझे मेरे हित के विचार से ही तो डाँटते हैं। मुझे उस वक्त अप्रिय लगता है अवश्य, मगर यह शायद उनके उपदेशों का ही असर हो कि मैं दनादन पास होता जाता हूँ और इतने अच्छे नंबरों से।

अब भाई साहब बहुत कुछ नर्म पड़ गये थे। कई बार मुझे डाँटने का अवसर पाकर भी उन्होंने धीरज से काम लिया। शायद अब वह खुद समझने लगे थे कि मुझे डाँटने का अधिकार उन्हें नहीं रहा; या रहा तो बहुत कम। मेरी स्वच्छंदता भी बढ़ी। मैं उनकी सहिष्णुता का अनुचित लाभ उठाने लगा। मुझे कुछ ऐसी धारणा हुई कि मैं तो पास ही हो जाऊँगा, पढ़ूँ या न पढ़ूँ मेरी तकदीर बलवान है, इसलिए भाई साहब के डर से जो थोड़ा–बहुत पढ़ लिया करता था, वह भी बंद हुआ। मुझे कनकौए उड़ाने का नया शौक पैदा हो गया था और अब सारा समय पतंगबाजी की ही भेंट होता था, फिर भी मैं भाई साहब का अदब करता था, और उनकी नजर बचाकर कनकौए उड़ाता था। माँझा देना, कन्ने बाँधना, पतंग टूर्नामेंट की तैयारियाँ आदि समस्याएँ अब गुप्त रूप से हल की जाती थीं। भाई साहब को यह संदेह न करने देना चाहता था कि उनका सम्मान और लिहाज मेरी नजरो से कम हो गया है।

एक दिन संध्या समय होस्टल से दूर मैं एक कनकौआ लूटने बेतहाशा दौड़ा जा रहा था। आँखें आसमान की ओर थीं और मन उस आकाशगामी पथिक की ओर, जो मंद गति से झूमता पतन की ओर चला जा रहा था, मानो कोई आत्मा स्वर्ग से निकलकर विरक्त मन से नये संस्कार ग्रहण करने जा रही हो। बालकों की एक पूरी सेना लग गयी; और झाड़दार बाँस लिये उनका स्वागत करने को दौड़ी आ रही थी। किसी को अपने आगे–पीछे की खबर न थी। सभी मानो उस पतंग के साथ ही आकाश में उड़ रहे थे, जहाँ सब कुछ समतल है, न मोटरकारें हैं, न ट्राम, न गाडियाँ।

सहसा भाई साहब से मेरी मुठभेड़ हो गयी, जो शायद बाजार से लौट रहे थे। उन्होने वहीं मेरा हाथ पकड़ लिया और उग्र भाव से बोले– इन बाजारी लौंडो के साथ धेले के कनकौए के लिए दौड़ते तुम्हें शर्म नहीं आती? तुम्हें इसका भी कुछ लिहाज नहीं कि अब नीची जमात में नहीं हो, बल्कि आठवीं जमात में आ गये हो और मुझसे केवल एक दरजा नीचे हो। आखिर आदमी को कुछ तो अपनी पोजीशन का ख्याल करना चाहिए। एक जमाना था कि कि लोग आठवाँ दरजा पास करके नायब तहसीलदार हो जाते थे। मैं कितने ही मिडलचियों को जानता हूँ, जो आज अव्वल दरजे के डिप्टी मजिस्ट्रेट या सुपरिटेंडेंट है। कितने ही आठवीं जमात वाले हमारे लीडर और समाचार–पत्रों के संपादक हैं। बड़े–बड़े विद्वान उनकी मातहती में काम करते हैं और तुम उसी आठवें दरजे में आकर बाजारी लौंडों के साथ कनकौए के लिए दौड़ रहे हो। मुझे तुम्हारी इस कमअकली पर दुःख होता है। तुम जहीन हो, इसमें शक नहीं; लेकिन वह जेहन किस काम का, जो हमारे आत्मगौरव की हत्या कर डाले? तुम अपने दिल में समझते होंगे, मैं भाई साहब से महज एक दर्जा नीचे हूँ और अब उन्हें मुझको कुछ कहने का हक नहीं है; लेकिन यह तुम्हारी गलती है। मैं तुमसे पाँच साल बड़ा हूँ और चाहे आज तुम मेरी ही जमात में आ जाओ– और परीक्षकों का यही हाल है, तो निस्संदेह अगले साल तुम मेरे समकक्ष हो जाओगे और शायद एक साल बाद तुम मुझसे आगे निकल जाओ– लेकिन मुझमें और तुममें जो पाँच साल का अंतर है, उसे तुम क्या, खुदा भी नहीं मिटा सकता। मैं

तुमसे पाँच साल बड़ा हूँ और हमेशा रहूँगा। मुझे दुनिया का और जिंदगी का जो तजरबा है, तुम उसकी बराबरी नहीं कर सकते, चाहे तुम एम. ए., डी. फिल. और डी. लिट्. ही क्यों न हो जाओ। समझ किताबें पढ़ने से नहीं आती है। हमारी अम्माँ ने कोई दरजा पास नहीं किया, और दादा भी शायद पाँचवी–छठी जमात के आगे नहीं गये, लेकिन हम दोनों चाहे सारी दुनिया की विद्या पढ़ ले, अम्माँ और दादा को हमें समझाने और सुधारने का अधिकार हमेशा रहेगा। केवल इसलिए नहीं कि वे हमारे जन्मदाता है, बल्कि इसलिए कि उन्हें दुनिया का हमसे ज्यादा तजरबा है और रहेगा। अमेरिका में किस तरह की राज्य –व्यवस्था है और आठवें हेनरी ने कितने विवाह किये और आकाश में कितने नक्षत्र है, यह बाते चाहे उन्हें न मालूम हो, लेकिन हजारों ऐसी बातें हैं, जिनका ज्ञान उन्हें हमसे और तुमसे ज्यादा है।

दैव न करे, आज मैं बीमार हो जाऊँ, तो तुम्हारे हाथ–पाँव फूल जायँगे। दादा को तार देने के सिवा तुम्हें और कुछ न सूझेगा; लेकिन तुम्हारी जगह पर दादा हों, तो किसी को तार न दें, न घबरायें, न बदहवास हों। पहले खुद मरज पहचानकर इलाज करेंगे, उसमें सफल न हुए, तो किसी डाक्टर को बुलायेंगे। बीमारी तो खैर बड़ी चीज है। हम–तुम तो इतना भी नहीं जानते कि महीने भर का खर्च महीने भर कैसे चले। जो कुछ दादा भेजते हैं, उसे हम बीस–बाईस तक खर्च कर डालते हैं और पैसे–पैसे को मोहताज हो जाते हैं। नाश्ता बंद हो जाता है, धोबी और नाई से मुँह चुराने लगते हैं; लेकिन जितना आज हम और तुम खर्च कर रहे हैं, उसके आधे में दादा ने अपनी उम्र का बड़ा भाग इज्जत और नेकनामी के साथ निभाया है और एक कुटुंब का पालन किया है, जिसमें सब मिलाकर नौ आदमी थे। अपने हेडमास्टर साहब ही को देखो। एम.ए. हैं कि नहीं; और यहाँ के एम.ए. नहीं, ऑक्सफोर्ड के। एक हजार रूपये पाते हैं, लेकिन उनके घर इंतजाम कौन करता है? उनकी बूढी माँ। हेडमास्टर साहब की डिग्री यहाँ आकर बेकार हो गयी। पहले खुद घर का इंतजाम करते थे। खर्च पूरा न पड़ता था। करजदार रहते थे। जब से उनकी माताजी ने प्रबंध अपने हाथ में ले लिया है, जैसे घर में लक्ष्मी आ गयी हैं। तो भाईजान, यह गरूर दिल से निकाल डालो कि तुम मेरे समीप आ गये हो और अब स्वतंत्र हो। मेरे देखते तुम बेराह नहीं चल पाओगे। अगर तुम यों न मानोगे, तो मैं (थप्पड़ दिखाकर) इसका प्रयोग भी कर सकता हूँ। मैं जानता हूँ, तुम्हें मेरी बातें जहर लग रही हैं...

मैं उनकी इस नयी युक्ति से नत–मस्तक हो गया। मुझे आज सचमुच अपनी लघुता का अनुभव हुआ और भाई साहब के प्रति मेरे मन में श्रद्धा उत्पन्न हुई। मैंने सजल आँखों से कहा– हरगिज नहीं। आप जो कुछ फरमा रहे हैं, वह बिलकुल सच है और आपको कहने का अधिकार है।

भाई साहब ने मुझे गले लगा लिया और बोले– मैं कनकौए उड़ाने को मना नहीं करता। मेरा जी भी ललचाता है, लेकिन क्या करूँ, खुद बेराह चलूँ तो तुम्हारी रक्षा कैसे करूँ? यह कर्तव्य भी तो मेरे सिर पर है!

संयोग से उसी वक्त एक कटा हुआ कनकौआ हमारे ऊपर से गुजरा। उसकी डोर लटक रही थी। लड़कों का एक गोल पीछे–पीछे दौड़ा चला आता था। भाई साहब लंबे हैं ही, उछलकर उसकी डोर पकड़ ली और बेतहाशा होस्टल की तरफ दौड़े। मैं पीछे–पीछे दौड़ रहा था।

कुछ करने के लिए

'बड़े भाई साहब' पर आधारित नाटक को इंटरनेट के Youtube पर देखा जा सकता है। उसके कुछ लिंक इस प्रकार से हैं :

https://www.youtube.com/watch?v=AEs5hZtYtEA

https://www.youtube.com/watch?v=5jik_1zESQQ

इस नाटक को डाउनलोड करके अध्ययन केन्द्र पर लैपटाप या प्रोजेक्टर की मदद से देखा जा सकता है और फिर उसपर चर्चा हो सकती है।

बोध प्रष्न

1. शिक्षा से संबंधी किन मुद्दों को इस रचना में उठाया गया है? आज के संदर्भ में आप उन मुद्दों को कितना प्रासंगिक मानते हैं?
2. परीक्षा का डर स्कूल के बाहर किस प्रकार से व्याप्त है? इस रचना के आधार पर समझाएं।
3. स्कूल के माध्यम से सीखे हुए ज्ञान और बिना स्कूल के सीखे हुए ज्ञान को लेकर इस रचना में क्या कहा गया है।
4. भय और तनाववाली शिक्षा बाल मन को किस प्रकार से प्रभावित करती है, इस रचना के आधार पर चर्चा करें।
5. 'बड़े भाई साहब' कहानी सन् 1910 में मुंशी प्रेमचंद के द्वारा लिखी गई थी। आज के संदर्भ में इस कहानी को आप पुनः कैसे लिखेंगे और उसमें किन–किन मुद्दों को उठाएंगे।
6. परीक्षा से जुड़े आपके संस्मरण क्या हैं? उनको लिखे तथा विश्लेशित करें।
7. परीक्षा ने सहोदरों में कैसे तनाव किए। क्या शिक्षा से उत्पन्न है यह तनाव? विश्लेषण करें।

रोचक गतिविधि

- हर अध्ययन केन्द्र के प्रशिक्षु एक टोली बनाकर 'बड़े भाई साहब' नाटक का मंचन अपने केन्द्र पर करें। वे अपने आस–पास के प्रखण्ड व संकुल संसाधन केन्द्रों पर भी विभिन्न स्कूलों के शिक्षक/शिक्षिकाओं को आमंत्रित करके इस नाटक का मंचन कर सकते हैं।
- 'बड़े भाई साहब' को किसी ऐसे व्यक्ति को पढ़ने के लिए देना जो शिक्षक या शिक्षिका नहीं है, और फिर इस रचना के विषय में उनकी क्या टिप्पणी है, इसको जानना।
- 'बड़े भाई साहब' में जिस प्रकार के मुद्दों की चर्चा की गई है, उन्हीं मुद्दों पर आधारित कुछ अन्य रचनाओं का पता लगाना और उनको पढ़कर विश्लेषण करना।

2.4

उसका स्कूल

(नवीन सागर)

प्रस्तावना :

बालमन की समझ हमेशा से वयस्क समाज के लिए पहेली रहा है। कारण भी स्पष्ट है, कभी भी उसकी पूरी क्षमता के लिए आकलन की कोशिश ही नहीं की गई। इसलिए हरबार एक खंडित परिणाम प्राप्त होता है। उसे विस्मय भरी नज़रों से देखने की परंपरा हमने विकसित कर ली है। जिद्द, जुनून, विद्रोह, हाजिर जवाबी आदि उनके व्यक्तित्व के वे हिस्से हैं जहाँ बड़े–बड़े सूरमा घुटने टेकते दिखते हैं। यही हिस्से शिक्षाशास्त्र से लेकर साहित्य के मुद्दे बनते हैं।

नवीन सागर की रचना 'उसका स्कूल' में मुन्नी का चरित्र उस बाल वर्ग का प्रतिनिधि चरित्र है जिसके अन्दर व्यवस्था के प्रति विद्रोही तेवर है, तो कुछ कर गुजरने की जिद्द और जुनून। 'उठना तो दूर, मुन्नी हिलती तक नहीं, ना कुछ बोली ही।' यह मुन्नी का मौन विद्रोह ही तो है, समाज के प्रति, माँ के प्रति,..... ..... । मुन्नी का शाम को लौटना, फिर बस्ता खोल चीजें नवेरना उसका जुनून है और विद्यालय की तरफ बढ़ते कदम जिद्द। कथान्त में माँ के समझ रोते–रोते विद्यालय पड़ना उसके विद्रोह की पराकाष्ठा है। निशिचित रूप से मुन्नी का चरित्र आज के आजाद भारत के 'सबके लिए शिक्षा' जुमले पर चोट करती दिख रही है। नवीन सागर ने बाल मन की उस पक्ष को भी उजागार करने की कोशिश की है जो अक्सर बच्चे/बच्चियों के अकादमिक उपलब्धियों या अधिगम की चर्चा में गौण हो जाती है। पूरी कहानी पढ़ने के पश्चात् निश्चित रूप से हम बालमन के एक और पक्ष को समझ सकेंगे।

यह बहसों का अड्डा है, दुनिया भर की बातें, इस सरकारी क्वार्टर के लॉन में रोज शाम से रात तक चलती रहती हैं। प्रोफेसर अखिलेश न सिर्फ कॉलोनी में बल्कि पूरे शहर में इस बात के लिए जाने जाते हैं कि उनसे किसी भी मुद्दे पर बहस कर लीजिए। वैसे वे खुद मनुष्य की उत्पत्ति, उसकी भाषा और शिक्षा पर बातें करना ज्यादा पसंद करते हैं। राजनीति में कोई खास दिलचस्पी उन्हें नहीं है मगर सिर पर आ ही जाए तो पीछे नहीं हटते। वे बातचीत के दौरान, और वैसे भी, मोटे फ्रेम का चश्मा लगाते हैं। उनका चौकोर चेहरा चौड़े और गोल कंधों के ऊपर नम्र विजेता भाव में सदैव मुस्कराता रहता है। जब वे बोलते हैं तो उनकी उठी हुई नाक के सिरे से माथे पर दो रेखाएँ एक–दूसरे से थोड़े फासले पर उभर आती हैं.....एक झटके से उनकी रेखाएँ विलीन हुई, उन्हें कुछ याद हो आया और वे मंत्रमुग्ध लोगों से क्षमा माँगते हुए सधे कदमों भीतर चले गए। सूने रोशन कमरों के परदे हटाते हुए वे बरामदे में पहुँचे। बाई आँगन धो रही थी। बाई ने देखा कि वे कुछ कहना चाहते हैं तो हाथ रोक दिया। ''सुधा ने कुछ बताया कि नहीं?'' प्रोफेसर ने अपने खास अपनत्व भरे लहजे में पूछा। ''मिलीं ही कहाँ? न सुबह न अब।'' ''कल से तो और भी नहीं मिलेंगी। कालेज पढ़ाने जाया करेंगी।'' सुनते ही बाई के टेढ़े–मेढे पीले दाँत खुल गए। वह प्रसन्नता में हँसने लगी। बोली, ''चलो मेम साहब की इच्छा पूरी हुई। पूरे साल उपास किया। भगवान ने अब जाके सुनी।'' ''लेकिन पहले यह तो सोचो कि रिंकी और पिण्टू को सँभालेगा कौन? मेम साहब तो दिन भर कालेज में रहेंगी।'' प्रोफेसर का स्वर अत्यंत घरेलू था। अरे हाँ! बाई ने यह तो सोचा ही नहीं था। न कभी मेम साहब ने ही यह सोचा। बाई असमंजस में पड़ गयी। प्रोफेसर तनिक घरेलू तकाजे से देखते हुए सोचने

लगे, बाई खुद तीन घरों में काम करती है उसे छोड़कर दिन भर बच्चों को सँभाले यह तो उससे कहना तक भद्दा लगेगा और फिर यह उसकी दक्षता का सरासर दुरुपयोग ही होगा। मगर इंतजाम करेगी तो बाई ही करेगी उन दोनों से तो कुछ होने से रहा। इस असमंजस में पड़ी बाई का चेहरा फिक्रमंद होता चला गया कि प्रोफेसर को अचानक एक रास्ता सूझा। उन्होंने उतावलेपन से पूछा, ''तुम्हारी मुन्नी कितने साल की है?'' ''दस–ग्यारह की होगी।'' बाई को लगा कि किनारा मिल गया और फिर एकदम बोली, ''मगर वो तो स्कूल जाती है।'' सुनकर प्रोफेसर एक झटके से उलझन में पड़ गए। होंठ की कोर से दाँत दबा कर तरकीब सोचने लगे। आखिर उन्होंने पूछा, ''किस क्लास में पढ़ती है?'' ''पाँचवें दरजे में।'' वे कुछ कहने को हुए कहते–कहते रुके। फिर कहने को हुए और फिर रुके। उन्हें कुछ नहीं सुझा तो जाते–जाते सारा बोझ बाई पर डालते हुए कह गए, ''मैं कुछ नहीं जानता। इन बच्चों की देख–रेख का इंतजाम कर पाओ तो ठीक, नही ंतो सुधा से कह दो कि पढ़ाने न जाए।'' प्रोफेसर की बात में बाई ने निराला अपनत्व अनुभव किया, वह मान से भर उठी। सुराही का पानी पिया। इससे पहले सुराही को वह सिर्फ भरती आयी है। उसने ऐसा दो बार किया। दूसरी बार के आधा गिलास पानी से उसने कुल्ले किए और गिलास माँजकर घर चली गई। प्रोफेसर लॉन में बैठे तब तक अपनी बात का छोर पकड़ चुके थे।

मुन्नी के गाल आँसुओं से तर हो गए। कोठरी के एक कोने में कन–स्तरों के बीच वह आड़ी–तिरछी जा पड़ी। उसकी माँ ने कई बार उसे टेहुनी पकड़ कर उठाना चाहा मगर वह हुमसी तक नहीं। वह अब स्कूल नहीं जाएगी, यह सोच–सोच कर उसे इतना रोना आया कि बाई सहम–सी गई। उसने जानते–बूझते कि उसकी बच्ची स्कूल के लिए इतना हीड़ेगी, ऐसा किया। उसे ग्लानि हो रही थी मगर वह मजबूर थी। वे लोग भले हैं कुछ कहते नहीं हैं मगर उनके गैरिज में रहें हम और उन पर मुश्किल पड़े तो हमीं मुँह फेर लें! आखिर वे लोग किसके पास जाएँ! उन दोनों बच्चों को कौन सँभालेगा। वह कौन–सा मुँह लेकर जाएगी उन लोगों से कहने कि उससे कुछ नहीं हुआ। मेम साहब के जाने का समय हो रहा है और यह लड़की है कि रोए जा रही है। बाई ने दरवाजे से झाँक कर धूप देखी और बोली, ''चल उठ मुन्नी, टेम हो गया।''

उठना तो दुर, मुन्नी हिली तक नहीं, न कुछ बोली ही। जब मनाए–मनाए वह नहीं उठी तो बाई ने उसकी टेहुनी पकड़ी और उसे जोर से खींचा। दो खाली कनस्तरों के साथ वह जमीन पर घिसटती गयी मगर उसने जमीन नहीं छोड़ी। बाई को गुस्सा आ गया। दो–चार नीचट हाथ जमाते हुए उसने उसे घसीट कर कमरे के बीचो–बीच डाल दिया। और चिल्लाई, ''उठ हरामजादी, उठती है कि नहीं?'' मुन्नी सहम गयी। धीरे धीरे उठी दरवाजे की तरफ बढ़ चली। बाई उसके पीछे–पीछे बाहर निकल गयी। साँकल चढ़ाते हुए बोली, ''बंद कर अब रोना और चल सीधी।'' बाई को अपनी सख्ती अच्छी नहीं लगी। उसका मन भीतर से न जाने कैसा हो गया। धूप उसे बहुत तेज लगी और वह चिरपरिचित कालोनी एकदम परायी–सी। उसे क्षण भर को ऐसा लगा, न जाने कौन उसकी मुन्नी को लिए जा रही है, न जाने यह कौन–सी जगह है और न जाने वह कहाँ से कब से यह देख रही है। मेम साहब गेट तक निकल आयी थीं। उन दोनों को देखकर उल्टे पाँव लौट पड़ीं। उन्होंने घड़ी देखी और राहत की साँस ली। पहले ही दिन लेट होना पड़ेगा यह सोचकर वे बहुत उद्विग्न हो गयी थीं। दोनों बच्चें के खिलौने, कपड़े और खाने–पीने की चीजें उन्होंने सुबह से ही सजाकर रख दी थीं। बच्चों को खिला–पिला दिया था और तीन–चार बार उन्हें चूम भी चुकी थीं। प्रोफेसर यह सब बड़े ही स्नेह से देखते मुस्कराते रहे थे। बाई और मुन्नी को देखकर भी वे वैसे ही मुस्कराए। मेमसाहब ने मुन्नी को गौर से देखा, सब चीजों के बारे में जल्दी–जल्दी बताया और दरवाजे बंद रखने की ताकीद देकर 'चलो' कहती हुई प्रोफेसर के साथ चल दीं।

पीछे–पीछे बाई भी बाहर निकल गयी। वह उन दोनों को स्कूटर पर जाता देखती रही। उसे अकारण घबराहट–सी होने लगी। मुन्नी के पास जाने को उसके पाँव अपने–आप मुड़ गए मगर फिर उसने पाया कि वह सीधी चली गयी। शाम को बाई घर लौटी तब तक मुन्नी आ चुकी थी। दोनों पैर पसार कर अपना बस्ता खोले चीजें नबेर रही थी। गरदन झुकाए एकदम मगन देखकर बाई की हिम्मत घर में घुसने की नहीं हुई वह धीरे से सरक कर पड़ोस में चली गयी। मगर वहाँ उसका मन नहीं लगा। जल्दी ही लौट आयी। मुन्नी बस्ता जमा चुकी थी और ऐड़ियाँ उठाए खूँटी पर टाँग रही थी। दूसरे दिन वह जाते–जाते मुन्नी से कह गयी। ''धूप चबूतरे पर आते ही चली जाना।'' मुन्नी हमेशा चबूतरे पर धूप देखकर ही जाती रही है। धूप ने चबूतरा छुआ कि मुन्नी ने खूँटी से बस्ता उतारा। वह गुनगुनाती बुदबुदाती हुई बाहर निकली। एड़ियाँ उठा कर साँकल चढ़ाते–चढ़ाते उसे याद हो आया तो भीतर जाकर पाँच–पाँच के तीन सिक्कों से भरी एक छोटी–सी डिब्बी उठाकर उसने बस्ते में डाल ली दरवाजा बंद किया और चल दी। स्कूल के रास्ते में प्रोफेसर के घर के आगे जब वह पहुँची तो मेम साब गेट पर खड़ी दिखीं। उन्होंने हैरानी से मुन्नी को देखा और आवाज दी। मुन्नी पक्षियों की तरह चौंक गयी। जैसे सपने से तीखी धूप में जागी हो। हड़बड़ा के जहाँ की तहाँ रुकी रह गयी और बस्ते को हाथ से मुचड़ने लगी। ''खड़ी क्यों रह गई? आओ न!'' मेम साहब ने झुँझला कर कहा। वह सहमी चाल से उनके पास पहुँची। उन्होंने गेट खोलकर उसे अंदर किया और अपने साथ भीतर ले गयीं। प्रोफेसर ने देखा कि वह बस्ता टाँगे है। वे हँसकर बोले, ''अच्छा! बस्ता भी लाई है!'' तो मेम साब ने विचित्र–सी आवाज में कहा, ''यह तो स्कूल जा रही थी।'' प्रोफेसर ने मुन्नी की ओर मुस्कराते हुए देखा और बोले, ''भुल गई होगी। इतने दिनों की आदत जो है। क्यों बेटे है न!'' मुन्नी ने डरी–डरी आँखों से उन्हें देखा और धीरे–धीरे चलती हुई बच्चों के कमरे में चली गयी। शाम को बाई घर लौटी तो मुन्नी दूसरी ओर करवट लिए पड़ी थी, बाई ने उसे पुकारा मगर वह चुप ही पड़ी रही। कंधों पर हाथ रखकर मुलायमियत से खींचा नहीं। झाँक कर देखा, अरे! यह तो बुरी तरह रो रही है! ''क्यों रो रही हो? मुन्नी क्या बात है बेटी?'' मुन्नी चुप। बाई ने उसके सिर पर हाथ फेरा पुचकारा और भीगी आवाज में बोली,''रोते नहीं हैं मुन्नी, बताओ क्या बात है?'' मुन्नी लगभग चिल्ला पड़ी। ''उनके बच्चों ने हमारी सारी किताबें फाड़ डालीं।'' फिर एक झटके से उठी और बस्ता पटकती हुई बोली, ''देखो।'' बाई ने बस्ता उलट दिया। सारी किताबें चिन्दी–चिन्दी। मुन्नी को बाई ने कातर होकर देखा और खोयी–खोयी–सी आवाज में बोली, ''मगर तुम बस्ता ले क्यों गयी थीं?'' पूछते–पूछते उसका गला रुँध गया। मुन्नी कुछ न बोली। रोती रही। चबूतरे पर शाम का घिरता अँधेरा था। अँधेरे में एक कुत्ता कान खड़े किए बैठा था। उसकी आँखें झपक रही थीं। और वह सुन रहा था कि मुन्नी रोए चली जा रही है।

प्रष्न :

1. प्रस्तुत कहानी में शिक्षा से सम्बन्धित किन मुद्दों को उठाया गया है?
2. आपके घर में प्रोफेसर साहब वाली स्थिति रहेगी तो आप क्या करेंगे?

प्रस्तावित कार्य :

1. आपकी दृष्टि में कहीं मुन्नी जैसी लड़की हो उसके परिजनों को इस प्रकार की कहानियाँ सुनावें।
2. अपने गाँव/मुहल्ला में इस कहानी का नाटक मंचन करावें।

2.5

तोता

(रविन्द्रनाथ टैगोर)

प्रस्तावना :

रविन्द्रनाथ टैगोर रचित 'तोता' शीर्षक कहानी आज की शिक्षा व्यवस्था के वास्तविक स्वरूप को उजागर करती है। टैगोर वैसे शिक्षाशास्त्री हैं जो बालक/बालिका के वास्तविक स्वतंत्रता में विश्वास रखते हैं। आज हम बच्चों को शिक्षित करने हेतु किस प्रकार की योजना बनाते हैं उसको इस कहानी में बताने का प्रयास किया गया है। हम बच्चों को शिक्षित करने हेतु योजना तो बनाते हैं उससे समाज का हर वर्ग उपकृत होता है किन्तु तोता रूपी बच्चे हमारी योजनाओं में मूल स्वभाव को छोड़ काल कवलित हो जाते हैं। बच्चों की स्वतंत्रता छिन जाती है, उनको घेरने के लिए विशाल भवन बन जाते हैं। विविध विषयों के विशेषज्ञ अपने ज्ञान को वलात् उसमें भरते हैं जिससे उसकी स्वभाविक अभिव्यक्ति ही समाप्त हो जाती है।

आज ज्ञान प्राप्ति हेतु जिस तरह के संस्थायें चलाये जा रहे हैं। बालकों को शिक्षित करने हेतु जो उपाय स्वीकृत किये जाते हैं, उससे हमारे बच्चे अपनी स्वच्छन्दता को खो दे रहे हैं। उनका उछलना, कूदना, हँसना–हँसाना सब समाप्त होता जा रहा है। बच्चों का लड़कपन समाप्त हो गया है, यदि उसके परिणाम ढूँढते हैं तो पता चलता है कि प्राप्ति तो कुछ भी नहीं, किन्तु बच्चों ने अपना सारा बचपन ही खो दिया। जो इसके इन पंक्तियों से भी स्पष्ट होता है –

महाराज पक्षी की शिक्षा संपूर्ण हुई। राजा ने पूछा, ''अब भी फुदकता है?'' भानजे ने खींसे निपोर कर कहा, ''अजी, राम भजो।'' ''उड़ता है?'' ना! ''गाता है?'' 'न!' ..... राजा ने उँगली से पक्षी को दबाया। न उसके मुंह से हाँ–हुं हुई, न हल्की सी सिसकी ही निकली और न पंख विहीन देह में कोई हरकत हुई। उसके पेट में पोथियों के सूखे पन्ने खरखराहट सी करने लगी।''

आज के इस शैक्षिक परिवेश में जहाँ बालमन प्रतिदिन तिरस्कृत होते हैं। प्रतिदिन उनके ऊपर नये–नये विषयों के बोझ पर बोझ डाले जा रहे हैं। शिक्षालय में नित्य नये–नये कायदे–कानून से उन्हें बाँधा जा रहा है। वहाँ प्रस्तृत कहानी निश्चय ही उपकारी सिद्ध होगा। जिसे पढ़कर बालमन पर पड़ने वाले अस्वभाविक दबाव को जाना जा सकता है।

एक पक्षी था। वह बड़ा मूर्ख था। गाता तो था, पर शास्त्र नहीं पढ़ता था। फुदकता और उड़ता था मगर यह नहीं जानता कि कायदा–कानून किसे कहते हैं ?

राजा ने कहा, ''ऐसा पक्षी किस काम का ? जंगल के फल खाकर जो शाही फल–बाज़ार में नुकसान पहुंचाएँ।''

मंत्री को बुलाकर आदेश दिया, ''इस पक्षी को शिक्षा दो।'' और उस पक्षी को शिक्षा देने का जिम्मा सौंपा गया–राजा के भानजों को। पंडितों की सभा जुटी। जमकर विचार–विमर्श हुआ। बड़ी ज्वलंत समस्या थी, ''उस पक्षी की अशिक्षा का कारण क्या है?'' इस बात पर खूब बहस हुई। बड़े–बड़े पंडितों ने चर्चा में हिस्सा लिया। सभी ने एक स्वर में कहा, ''यह पक्षी छोटा सा घोंसला बनाता है। वह इतना छोटा है कि उसमें विद्या जैसी भारी– भरकम चीज़ रखने की जगह ही कहां है? इसलिए सबसे पहली ज़रूरत यह है–इस पक्षी के लिए एक शानदार पिंजरे का निर्माण किया जाए।''

राजपंडितों का सुझाव एकदम अनूठा था। उन्हें अपार दक्षिणा मिली और वे बेइंतहा खुश होकर अपने–अपने घर लौट गए। सुनार बैठा पिंजरा बनाने। पिंजरा ऐसा अद्‌भुत बना कि देश–विदेश के लोग उसे देखने के लिए टूट पड़े।

सौंदर्य के पारखी जो थे! किसी ने कहा, ''शिक्षा की तो हद हो गई!'' किसी ने कहा, ''शिक्षा न भी तो क्या, पिंजरा तो बन ही गया। पक्षी के भाग्य का सब चमत्कार है?'' सुनार को थैलियां भर–भर कर बख्शीश मिली।

पंडितगण बैठे पक्षी को विद्या सिखाने। नसवार लेकर कहने लगे, ''थोड़ी पोथियों से काम नहीं चलेगा। पक्षी को पढ़ाना क्या कोई मामूली बात है?'' आज्ञाकारी भानजे तो बस आज्ञा का ही इंतजार कर रहे थे। तत्काल पोथी लिखने वालों को बुलाया गया। वे भी आज्ञाकारी कम नहीं थे। फौरन पोथियों की नकल का काम शुरू हो गया। फिर नकलों की भी नकल। नकल–दर–नकल। देखते–देखते पोथियों का पहाड़ खड़ा हो गया।

जिसने भी देखा उसने गला फुलाकर प्रशंसा की, ''शाबाश! शाबाश! विद्या रखने की अब जगह ही कहां है?''

नकल–नवीसों को पारितोषिक मिला–बैलगाड़ियां भर–भर कर। बैलों ने घर की ओर मुंह किया और दौड़ पड़े। किसी के घर में कोई कमी नहीं रही।

बेशकीमती पिंजरे की चौकसी के लिए भानजों को बहुत चिंता सता रही थी। एक तरफ चिंता और दूसरी ओर व्यस्तता।

उनके ज़िम्मे बहुत से काम थे–सफाई का काम। मरम्मत का काम। काम ही काम। लाजवाब सलीके से, बेहद करीने से। पिंजरे की झाड़–पोंछ व चमचमाती पालिश देखने के बाद लोगों ने कहा, ''उन्नति हो रही है।'' बड़ा काम ज़्यादा आदमियों से ही सम्पन्न होता है, सो उस बड़े काम के लिए और ज़्यादा आदमी बढ़ाए गए। वे हर महीने मोटी–मोटी तनख्वाह लेकर भारी–भारी रजिस्टर भरने लगे, सो भरते ही गए। सभी लोगों के ममेरे, चचेरे व मौसेरे भाई हवेली और कोठियों में गद्दे बिछाकर आराम से बैठ गए!

संसार में कई तरह के अभाव हैं पर टीका–टिप्पणी करने वाले निंदकों की कमी नहीं है। निंदक बेशुमार हैं। ज़रूरत से ज़्यादा। उन्होंने कहा, ''पिंजरे की तो उन्नति हो रही है, मगर पक्षी की देख–भाल करने वाला कोई नहीं है।''

राजा के कानों में भनक पड़ी। उन्होंने सबसे अधिक ज़िम्मेदार भानजे को बुलाकर कहा ''मेरे राज–दुलारे, यह क्या बात सुन रहा हूं?''

भानजे ने सहज भाव से निवेदन किया, ''महराज, आप तो ईश्वर की तरह सब कुछ जानते हैं। फिर भी अगर आप सच्चाई का पता लगाना चाहते हैं तो बुलवाइए सुनारों को, पंडितों को, नकल–नवीसों को, बुलवाइए मरम्मत करने वालों को, बुलवाइए चौकसी करने वालों को। निठल्ले निंदकों के पास और काम ही क्या है? उन्हें खाने को नहीं मिलता इसलिए निंदा करते हैं।''

जवाब सुनकर राजा ने स्थिति का ज़ायजा लिया, गहराई से समझा और अंत में भानजे के गले में सोने का बहुमूल्य हार पहना दिया।

शिक्षा कितनी तेज़ी से चल रही है, उसकी असलियत जानने के लिए राजा की इच्छा हुई कि स्वयं अपनी नज़रों से छान–बीन करें।

इसलिए एक दिन वह अपने एक विश्वस्त मंत्री, दीवान और मित्रों के साथ विद्याशाला का मुआयना करने गए।

उनके दर्शन होते ही डयोढ़ी के पास बज उठे– शंख, घड़ियाल, ठाक, ढोल, तासे, तुरही, नगाड़े, कांसे, बंशी, मृदंग, खोल और करताल। पंडितगण गला फाड़–फाड़ कर चुटिया हिला–हिला कर मंत्र पाठ करने लगे। मिस्त्री, मजदूर, सुनार, नकल–नवीस, पहरेदार और उन सबके बीच ममरे, चचेरे, वे मौसेरे भाई बुलंद स्वर में जय–जयकार करने लगे।

बड़ा भानजा बोला,''महाराज गौर फरमाइये, सारा तामझाम आंखों के सामने है। कुछ भी छिपा नहीं रह सकता, फिर आपकी आंख तो पर्वत को भी भेद कर साफ देख सकती है।''

महराज बेहद खुश होकर लौट पड़े। डयोढ़ी को पार करने के बाद हाथी पर सवार होने वाले ही थे कि झुरमुट की ओट में दुबका निंदक बोल उठा, ''हुजूर आपने पक्षी को देखा की नहीं?''

पहले तो महाराजा कुछ चौंके फिर अपने आपको सम्भालते हुए बोले, ''अरे, यह तो मैं भूल ही गया। पक्षी को देखने का ध्यान ही नहीं रहा।''

लौटकर पंडितों से पूछा, '' पक्षी को तुम लोग कैसे सिखाते हो, क्या सिखाते हो? ज़रा उसे देखने की इच्छा हो रही है।''

राजा की इच्छानुसार उन्हें सब कुछ दिखाया गया और वह देख कर बेइन्तहा खुश हुए। परन्तु पक्षी को सिखाने का तामझाम इतना बड़ा था, कि पक्षी स्वयं कहीं नज़र ही नहीं आ रहा था। राजा ने भी सोचा अब उसे देखने की ज़रूरत ही क्या है? राजा बुद्विमान था, वह तुरंत ताड़ गया कि बन्दोबस्त में किसी तरह की कोई कमी नहीं है।

पिंजरे में न दाना था न पानी था। थी केवल विद्या की भरमार। ढेर सारी पोथियों के ढेर सारे पन्ने, फाड़–फाड़ कर कलम की नोक से पक्षी के मुंह में ठूंसे जा रहे थे। गाना तो बंद ही था। चीखने चिलाने की भी कोई गुंजाइश नहीं थी। देखने मात्रा से ही रोम–रोम सिहर उठता था। इस बार राजा ने हाथी पर चढ़ते समय 'कन–उमेठी' सरदार को आदेश दिया कि वह निंदक के दोनों कानों को अच्छी तरह खींच दे।

पक्षी दिन–ब–दिन, पढ़े लिखे लोगों के व्यवहार के कारण, अधमरी स्थिति में पहुंच गया। लोग समझ गए कि प्रगति काफी आशाजनक है। परंतु पक्षी की अपनी प्रकृति थी। पक्षी पूर्व दिशा में सूर्य के उजाले की ओर टुकर–टुकर देखता और ढीठ की तरह जंगली तरीके से अपने पंख फड़फड़ाता। इतना ही नहीं, कभी–कभार यह भी देखने में आया कि वह अपनी चोंच की नोंक से अमूल्य पिंजरे की छड़े काटने की चेष्टा करता है।

पहरे पर लगे कोतवाल ने जब यह देखा तो वह भृकुटी तान कर चिलाया, ''यह कैसी गुस्ताखी है?'' तब विद्याशाला–यानि पक्षी के स्कूल में छेनी–हथौड़ा लेकर लुहार हाजिर हुआ। फिर ठकाठक और धमाधम का उम्दा संगीत शुरू हुआ। देखते ही देखते लोहे की जंजीर तैयार हो गई। फिर देखते–देखते पक्षी के पंख भी काट दिए गए।

राजा के तुनक–मिजाज संबंधियों ने हंडिया सा मुंह बनाकर, सिर हिलाते कहा, '' इस राज्य के पक्षियों की बात न पूछो। अक्ल तो उनमें थी ही नहीं। परंतु अब तो कृतज्ञता भी नहीं रही।''

लुहार की आमदनी दिन–ब–दिन बढ़ती गई और लुहारिन की देह पर सोने के जेवर जगमगाने लगे। कोतवाल की लाजवाब होशियारी देख कर राजा ने उसे बड़ा ईनाम दिया।

पक्षी मर गया। कब मरा, किसी भी इतिहासकार को उसकी सही तिथि का पता नहीं चला। नासपीटे निंदक प्रचार करने लगे, ''पक्षी तो मर गया।

''राजा ने सबसे बड़े भानजे को बुलाकर पूछा, ''राजा बेटे, यह मैं क्या सुन रहा हूं?'' भानजे ने हाथ जोड़ कर विनती की, ''महाराज, पक्षी की शिक्षा संपूर्ण हुई।'' राजा ने पूछा, ''अब भी फुदकता है?'' भानजे ने खींसे निपोर कर कहा, ''अजी, राम भजो।'' ''उड़ता है?'' ''ना!'' ''गाता है?'' ''ना।''

राजा ने कहा, ''एक बार पक्षी को लाकर दिखाओ।'' पक्षी आया। साथ में कोतवाल, प्यादे और घुड़सवार। राजा ने उंगली से पक्षी को दबाया।

न उसके मुंह से हां–हुं हुई, न हल्की सी सिसकी ही निकली और न उसकी पंख–विहिन देह में कोई हरकत हुई। केवल उसके पेट में पोथियों के सूखे पन्ने खरखराहट सी करने लगे। बाहर, नये वसंत की दक्खिनी बयार में सारी कलियों, सारे फूलों ने एक गहरी आंह भरी।

प्रश्न :

1. आज की शिक्षा व्यवस्था में प्रस्तुत कहानी कैसे उपयुक्त है? सोदाहरण विवेचित करें।
2. कहानी में जिस प्रकार से तोते के साथ व्यवहार किया गया है, क्या हमारा समाज अपने बच्चों की शिक्षा को लेकर भी वैसी ही सोंच रखता है, विश्लेषण करें।
3. आज की शिक्षा व्यवस्था बालमन को किस प्रकार प्रभावित करती है? इस कहानी के आधार पर विवेचित करें।

प्रस्तावित कार्य :

1. अपनी कक्षा में तोता कहानी का नाट्यमंचन करावें।
2. 'तोता' को आप–अपने शिक्षक/शिक्षिका को पढ़ने के लिए दें। इस कथानक के सम्बन्ध में उनकी टिप्पणी को अंकित करें।

2.6

झण्डा

(कृष्ण कुमार)

प्रस्तावना :

यह कहानी समाज और शिक्षा में पसरी घृणाओं को उजागर कर हमारी संवेदनाओं को झकझोरती है। छोटे–छोटे बच्चे और बच्चियाँ, जिन्हें मासूम माना जाता है, या तो घृणाओं का शिकार हो रहे हैं या शिकार करने में शामिल हो रहे हैं। इन बच्चे और बच्चियों की मासूमियत और इंसानियत को कमजोर करके किन तरीकों से उनमें घृणा और हिंसा भरी जा रही है? यह कहानी इस प्रकार के सवाल से जूझने की तैयारी का एक जरिया हो सकती है। यह कहानी बच्चे और बच्चियों पर प्राथमिक सामाजीकरण के गहरे और नकारात्मक असर को समझने तथा उनसे लोकतांत्रिक तरीकों से निपटने के रास्ते तलाशने की दिशा में प्रेरित करती हुई लगती है।

कहानी में दिखाया गया है कि दलित वर्ग के एक बच्चे की अस्मिता और सम्मान को समूह बनाकर धूल में मिलाया गया और वह समूह अपने कृत्य को उत्सव का रूप दे देता है। दूसरी ओर जिसके सम्मान को रौंदा गया, वह रौंदने वालों की पहचान तक सार्वजनिक करने से बचता है और इल्जाम किसी और के सर धर देता है। हमारे लोकतांत्रिक राष्ट्र में ऐसा साहित्य प्रचूर मात्रा में प्रकाशित किया जाता है जिसमें कमज़ोर तबकों को यह शिक्षा दी जाती है कि वे अपने पर होने वाले जुल्मों का इल्जाम किसी और के सर धरें।

कहानी इस तथ्य की तरफ इशारा करती है कि समाज में व्याप्त भय, तिरस्कार और हिंसा कक्षाओं और स्कूल की रोजमर्रा की जिंदगी की अपनी जगह बना लेती है। इस सामूहिक हिंसा और तिरस्कार को सम्मान तथा बराबरी के भाव और ढ़ाँचों से हटाने के तरीके खोजना हम सभी की जिम्मेदारी है।

गर्मी की छुट्टियों में दिलीप रोज सुबह तालाब पर नहाने जाता है और लौटकर मुंडेर पर बैठकर कंघी करता है। जो आइना पहले कई बरस काकी के बक्से में बंद रहा, फिर लकड़ी के रैक पर और अभी हाल तक गुसलखाने में रहा, वह अब दिलीप के पास है। उसके एक हिस्से की पालिश में नन्हीं दरारें पड़ गई हैं। उस हिस्से में देखने पर अपनी आंख के कई टुकड़े नजर आते हैं। बाकी आइना साफ है। उसे ईंट के सहारे मुंडेर पर टिकाकर दिलीप रोज अपनी नाक के नीचे बहुत आहिस्ते–आहिस्ते उंगली फेरता है। मूंछों के आने की सूचना उसे सालों पहले मिल गई है।

मुंडेर से आई चीख सुनकर काकी के हाथ रुक गए। तालाब से लौटे अभी दिलीप को पांच मिनट नहीं हुए होंगे। कंघी करते–करते अचानक क्यों चीखने लगा? काकी थाली लगा रही थीं। थाली छोड़कर कमरे में आईं तो पसीने से तर थीं। सामने काका दीवार पर लटकी अपनी वर्दी उतार रहे थे। काकी ने पूछा–''इतना चीख क्यों रहा है? क्या हुआ?''

''कौन, दिलीप?''

''हां, हां, आपके कानों में कोई आवाज़ पहुंचे तब न ! मैं देखती हूं।''

काकी कमरे से निकलकर गली में आई। तेज़ सूरज से आंख बचाकर ऊपर देखा। दिलीप मुंडेर पर नहीं था। एक क्षण को काकी का जी डूबने को आया। ''दिलीप ! दिलीप !!'' काकी चिल्लाईं।

दिलीप उछलकर मुंडेर की तरफ आया। उसकी दोनों बांहें आसमान की तरफ थीं। एक हाथ में आइना था, दूसरे में कंघी। आधे बाल कंघी किये हुए थे, बाकी झूल रहे थे।

''काकी, वह उड़ा जा रहा है।'' दिलीप चिल्लाया।

''कौन उड़ा जा रहा है?'' काकी ने पूछा। अब उनके स्वर में घबराहट नहीं थी। वे समझ गई थीं कि दिलीप कोई शैतानी कर रहा है।

पर इस वक्त जब काका का काम पर जाने का टाइम होता है, दिलीप कभी शैतानी नहीं करता। वह मुंडेर पर बैठकर काका के घर से निकलने की प्रतीक्षा करता है। एक बार जब उन्हें गली से निकलते देख लेता है, तब नीचे आता है और खाने की जल्दी करता है।

''काकी उसने मेरी गरदन पर झपट्टा मारा। बनियान गले में बंधी थी, झपट्टे से खुल गई। वह ले गया–वह देखो–वह जा रहा है–'' दिलीप अब चिल्ला नहीं रहा था, रो रहा था।

काकी समझ नहीं पा रही थीं कि माजरा क्या है।

''किसने झपट्टा मारा दिलीप?'' काकी ने पूछा।

''काकी, बहुत बड़ा गीध। वह देखो, वह अब खंडहर के ऊपर बैठा है। मैं जाउं उसके पीछे?'' दिलीप ने रोत–रोते पूछा। उसे मालूम था कि काकी 'हां' नहीं कह सकतीं।

काकी उसे रोज़ खंडहर की तरफ जाने से मना करती हैं। घर की मुंडेर खंडहर की दीवार से तीन फुट उंची है। खंडहर ने पचासों बरसातों की मार खाई है। उसकी असंख्य दीवारों में लंबी–लंबी पीली घास उगी है। घास की जड़े पुरानी कच्ची ईंटों की पकड़ को कब का हिला चुकी हैं।

एक जमाने में यह खंडहर एक छोटी हवेली था। सिर्फ काका जानते हैं कि हवेली में कौन रहता था। दिलीप ने कितनी ही बार पूछा होगा, पर काका हमेशा यही कह देते थे :

''जब तुम बड़े हो जाओगे तब बताउंगा। तुम खूब मेहनत से पढ़ा करो। खेलना–कूदना बंद करो। खूब पैसा कमाओ तो यह हवेली फिर तुम्हारी हो जाएगी।''

काका की बात सुनते–सुनते दिलीप को लगता है जैसे यह हवेली कभी उसके पुरखों की थी। ''पर ऐसा कैसे हो सकता है?'' ऐसा कैसे हुआ कि एक पूरी हवेली उसके परदादा ने छोड़ी हो और आज वह अपने काका–काकी के साथ एक कमरे के एक ज़रा से मकान में रहता है। दिलीप जैसे–जैसे बड़ा हो रहा है, हवेली की बात जानने की उसकी उत्सुकता कम होती जा रही है। ज़रूर उसे बच्चा समझकर काका ऐसी बात कहते होंगे। दो साल पहले जब वह पांचवीं से छठी में गया था और नए स्कूल के रजिस्टर में अपना नाम दाखिल कराने काका के साथ हैडमास्टर के आफिस में गया था, उसी दिन मालूम हो गया था कि हवेली उसके पुरखों की कतई नहीं हो सकती थी। हैडमास्टर ने काका से कहा था :

''गौतम जी, आपको स्टाम्प पेपर पर मैजिस्ट्रेट का एफीडेविट लेकर देना होगा, तभी दिलीप को अनुसूचित जाति का वजीफा मिल सकेगा।''

दिलीप कुमार गौतम को वजीफा मिलता है, क्या इसीलिए लड़के उससे जलते हैं? क्या इसीलिए वह पीछे बैठता है? धनेंद्र सिंह नाम का एक कद्दावर लड़का अक्सर दिलीप को छेड़ता है, ''तू गरीब है जो तुझे सरकार पैसा देती है?''

''जलते क्यों हो? मैं होशियार हूं इसलिए वजीफा मिलता है?''

दिलीप सचमुच होशियार है, मेहनती भी है। पर धनेंद्र उसे छेड़ता चला जाता है, ''तेरे जैसे होशियार तो कई हैं। तू सरकार का चहेता है इसलिए तुझे वजीफा मिलता है।''

वाक्य पूरा करते–करते धनेंद्र भागने की कोशिश करता है क्योंकि उसे मालूम है कि दिलीप अब उसे छोड़ेगा नहीं। कुश्ती में धनेंद्र और दिलीप टक्कर के हैं, कभी एक जीतता है, कभी दूसरा। हारने का डर धनेंद्र को इतना नहीं जितना इस बात का है कि दिलीप का बाप जो पुलिस में सिपाही है, उसे पिटवा देगा। दिलीप कुश्ती में जीते या हारे, लड़ते–लड़ते यह अवश्य कह देता है, ''काका से कहकर तुझे एक बार ऐसा पिटवाउंगा कि याद रखेगा।''

पर काका से कहना दिलीप को पसन्द नहीं। वह दुनिया से खुद निपटना चाहता है . . .

'' नहीं, दिलीप नहीं, गीध को जाने दो।'' काकी ने चिल्लाकर कहा।

भीतर से काका आवाज लगा रहे थे। उन्हें खाने की जल्दी पड़ी थीं काकी ने वापस कमरे में कदम रखा कि दिलीप की आवाज़ फिर उसके कानों में पडी, ''वह दीवार पर बैठा बनियान का कालर उधेड़ रहा है।''

अचानक काकी की समझ में आया कि दिलीप अपनी नई टीशर्ट के बारे में कह रहा है। अभी हफ्ते भर पहले काका जब अपने बड़े साहब के साथ दौरे पर भोपाल गए थे तो लौटते वक्त यह टीशर्ट लाए थे। दिलीप महीनों से चेन वाली टीशर्ट की रट लगाए था। काका हर बार कह देते थे, ''बहुत महंगी आती है।''

दिलीप अड़ा रहता था। उसने अपनी क्लास के कई लड़कों के पास चेन वाली टीशर्ट देखी थी। किसी की जेब पर लिखा था, 'टच मी नाट', किसी पर 'अमेरिकन एयरफोर्स'। स्कूल में पांच दिन यूनिफार्म पहननी होती थी, यानि नीली कमीज और खाकी निकर। सिर्फ एक दिन, शनिवार को, अपनी मर्जी का कपड़ा पहनने की छूट थी। जो लड़के उस दिन भी यूनिफार्म की कमीज पहनकर आते थे उन्हें दूसरे लड़के चिढ़ाते थे। एक बार संदीप लाल ने अपनी टीशर्ट की चेन उपर–नीचे फिसलाते हुए छाती फुलाकर दिलीप से कहा था :

''जापानी चेन है। मेरे पापा दिल्ली से लाए हैं।''

दिलीप जानता था कि संदीप के पापा पुलिस में इंस्पेक्टर हैं। दिलीप के काका को अक्सर लाल साहब का अर्दली बनकर दौरे पर जाना पड़ता था। संदीप से दिलीप कभी नहीं उलझता था।

उस दिन दिलीप ने घर जाकर काका से पूछा था ''काका, तुम्हें कितनी तनख्वाह मिलती है?''

काका दिलीप की तरफ देखते रहे, पर कुछ बोले नहीं।

''काका, तुम दौरे पर भोपाल कब जाओगे?''

काका बात समझ गए थे। बोले, ''इस बार जाउंगा तो टीशर्ट लेकर ही लौटूंगा।''

दिलीप खुश हो गया था। गली की तरफ जाते–जाते खुशी से चीखा था, ''कालर वाली। मैं कालर वाली टीशर्ट पहनूंगा।''

और अंत में एक दिन टीशर्ट आ गई थी। सैंतीस रुपए की टीशर्ट। दिलीप के पैर जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। टीशर्ट की जेब पर लिखा था, 'स्काई सारजेंट'।

उस शनिवार को जब वह टीशर्ट पहनकर स्कूल गया था, कक्षा के सारे लड़कों की आंखें बरबस दिलीप पर टिक गई थीं। किसी की हिम्मत नहीं हुई थी कि उसे छेड़े। जो लड़के न दिलीप के दिमाग का लोहा मानते थे, न उसके शरीर का, न उसके सिपाही काका का खौफ खाते थे, वे आज दिलीप की टीशर्ट का शोख बैंगनी रंग देखकर सहम गए थे . . .

जब काकी ने सुना कि गीध कोई साधारण बनियान नहीं, कालर वाली टीशर्ट ले गया है, तब उन्हें भी लगा कि बात गंभीर है। उन्होंने काका से कहा, ''कहता है नई टीशर्ट गीध ले गया है।''

काका थाली के लिए उतावले बैठे थे। उनकी उंगलियां अधीरतावश बैल्ट के चमकदार बकल पर घूम रही थीं। वे बोले :

''गीध कहीं कपड़े ले जाता है? मैं क्या देखूं, तुम थाली लगाओ।''

''रो रहा है। तुम ज़रा ऊपर जाकर देख आओ, मैं अभी खाना परोसती हूं।'' काकी ने कहा।

काका बाहर आए। उनके काले बूट धूप में चमक रहे थे। गर्दन मोड़कर उन्होंने ऊपर की ओर देखा और आवाज़ लगाई :

''दिलीप ! क्या बात है?''

दिलीप रोए जा रहा था। बड़ी मुश्किल से सांस संभालकर बोला, ''काका ! मेरी टीशर्ट गीध ले गया। वह देखो, वह जा रहा है–तालाब के पार।''

''यह क्या मज़ाक है दिलीप? गीध कहीं कपड़े खाता है?''

''काका सचमुच ले गया। वह देखो . . .'' दिलीप का एक हाथ आंखों पर था और दूसरा हवा में था।

काका से रहा न गया। अपने भारी बूटों को एक–एक सीढ़ी के नाजुक पत्थर पर जमाकर वे ऊपर आए। जैसे–जैसे उनके बूटों की आवाज़ करीब आती गयी वैसे–वैसे दिलीप की रुलाई बढ़ती गई। काका ने छत पर पांव रखा कि दिलीप उनके सीने से चिपट गया। आंसू चेहरे पर पसीने के साथ मिलकर बह रहे थे। रुलाई थी कि रोके न रुकती थी।

''बेटे, कहां है गीध? मुझे दिखा'', काका बोले।

दिलीप ने उनके सीने से चिपटे–चिपटे तालाब की तरफ इशारा किया, ''वह देखो, वह तालाब पार कर गया।''

काका ने उधर देखा। मई के सूरज की चकाचौंध में दूर तालाब के किनारे उन्हें कुछ न दिखा।

तालाब से हटकर उनकी नज़र दिलीप के कंधे पर गई तो वे घबड़ा गए। ताज़े घाव से खून बह रहा था। आसपास की त्वचा खुरची हुई थी। एकदम परेशान होकर उन्होंने पूछा–''दिलीप, यह घाव तुझे कैसे लगा?''

दिलीप घाव की तरफ देखना नहीं चाहता था। काका के सीने पर अपनी बांहों का कसाव बढ़ाकर बोला :

''गीध की चोंच बहुत तेज़ थी काका।''

उधर तालाब के घाट पर जहां हनुमान जी का मंदिर है लड़कों की एक टोली जमा थी। धनेंद्र अपनी बांह में एक भीगी हुई टीशर्ट झंडे की तरह उठाये मंदिर की परिक्रमा कर रहा था। लड़के उसके पीछे–पीछे चल रहे थे। बीच–बीच में रुककर वह लड़कों की तरफ सर मोड़ता और बताता कि उसने कैसे निशाना लगाकर पत्थर मारा। टोली के सदस्य खिलखिलाकर बताते कि फिर कैसे उन्होंने दिलीप को घेरा, कैसे उसकी टीशर्ट उतारी, कैसे उसे ज़मीन पर रौंदा, फिर कैसे वह घर की तरफ भागा।

प्रश्न :

1. प्रस्तुत कहानी में बच्चों के व्यक्तित्व के जिन–जिन विशेषताओं को उकेरा गया है, उन्हें सूचीबद्ध करें।
2. इस कहानी में शिक्षा और समाज के किन मुद्दों की झलक मिलती है, उनकी चर्चा करें।
3. अपने चुनौतियों से निपटने का तरीका बच्चें स्वयं की ढूंढ लेते हैं, प्रस्तुत कहानी के आधार पर बताएं।

प्रस्तावित कार्य :

इस कहानी का नाटक मंचन करें।

इकाई–3 उपन्यास–अंश	
	समग्र प्रस्तावना
3.1	**आपका बंटी** (मन्नू भंडारी)
3.2	**स्वामी और उसके दोस्त** (आर. के. नारायण)

समग्र प्रस्तावना

शिक्षा का साहित्य के अंतर्गत उपन्यास–अंश से सम्बन्धित यह खंड बाल मनोविज्ञान के अनेकानेक प्रतिबिम्बों से युक्त है। यह खण्ड हमें आधुनिक जीवन के पारिवरिक विडम्बनाओं के बीच पुनरचित होते बाल मनोविज्ञान से परिचय करवाता है। यह बाल मनोविज्ञान की समग्र अवधारणा का यथार्थ प्रकटीकरण है जिसके बिना बाल–मनोविज्ञान से संबंधित कोई भी शैक्षिक–विमर्श अधूरा है। सत्तर के दशक में रचा गया यह उपन्यास वास्तव में आधुनिक युग–जीवन का जीवन्त दस्तावेज है। पारिवरिक जीवन के उठा–पटकों के बीच एक बालक की मानसिक स्थिति को यहाँ दर्शाया गया है। बंटी के बालमन में मौजूद तत्वों को एक धागे में यहाँ पिरोया गया है। उपन्यास के केन्द्र में बालक बंटी ही है जिसके जीवन का उत्सव दामपत्य–जीवन के अंतर्कलह के बीच कहीं गुम हो जाता है और इसमें वह अपने को कहीं नहीं पाता है। वस्तुतः यह उपन्यास–अंश हमसे बाल–अंतर्मन की बुनावट को यथार्थ के चश्में से देखे–परखे जाने का आग्रह करता है।

खंड का द्वितीय अंश आर० के० नारायण द्वारा रचित कहानी 'स्वामी और उसके दोस्त' का अंश है। यहाँ कहानीकार ने आधुनिक शिक्षा व्यवस्था की अपेक्षाओं पर व्यंग्य किया है। आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था किस तरह से एक बालक के सीखने की सरल सहजात वृत्ति को चोट पहुँचाकर हर चिंतन एवं सोच को मुनाफे के दृष्टिकोण से गढ़े जाने की पैरोकारी करता है यही कहानी के केन्द्र में है। परिणाम यह होता है कि स्वामीनाथन जैसे बालक सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में अपने को उपेक्षित पाते हैं और सवालों के तल की कोशिश में उलझते जाने को अभिशप्त हैं। यहाँ भी बाल अंतर्मन की बुनावट की यथार्थ पड़ताल की गई है।

3.1

आपका बंटी

(मन्नू भंडारी)

प्रस्तावना :

आपका बंटी मन्नू भंडारी की विशेष चर्चित उपन्यास रही है। इस उपन्यास में तलाक और पुनर्विवाह की विषम परिस्थिति में एक छोटे बालक की मानसिक स्थिति का यथार्थ और मार्मिक चित्रण है। इसमें व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्व, आन्तरिक नाटक या मानव की समग्र अवस्थिति का दबदबा विद्यमान है। आपका बंटी की थीम एक प्रकार से मन्नू जी के लेखन की मुख्य थीम है और उसके विश्लेषण से शैक्षिक बाल मनोविज्ञान को दर्शाया जा सकता है। इसमें मनोविज्ञान और भावना वस्तु स्थिति के घनिष्ठ और तीव्र प्रसंग में होकर यथार्थ के करीब है और इसीलिए हम उसकी सीमाओं को पहचान पाते हैं।

आज पापा आनेवाले हैं। दस बजे बंटी को सर्किट हाउस पहुंच जाने को लिखा है। मम्मी हैं कि पता नहीं कैसा मुंह लिये घूम रही हैं। न हंसती हैं, न बोलती है। बस गुमसुम। इस बार वकील चाचा के जाने के बाद से ही मम्मी ऐसी हो गई हैं। वकील चाचा भी एक ही हैं बस। खुद तो बोल–बोलकर ढेर कर देंगे और मम्मी बेचारी की बोलती बंद कर जाएंगे। पता नहीं क्या हो गया है मम्मी को? उसे देखना शुरू करेंगी तो देखती ही रहेंगी, ऐसे मानो उसके भीतर कुछ ढूंढ रही हों। रात को कहानी भी नहीं सुनातीं। ज्यादा कहो तो कह देती हैं, 'सो जा, कल सुनाउंगी।' वह तो सो ही जाता है, पर मम्मी को ऐसा करना चाहिये?

उस दिन, रात में पता नहीं, कब बंटी की नींद खुल गई। देखा, दूर पेड़ के नीचे कोई खड़ा हैं। डर के मारे उससे तो चीखा तक नहीं गया था, बस सांस जैसे घुटकर रह गई थी। और वे ममी निकलीं। उसके बाद कितनी देर तक मम्मी उसे थपकती रहीं, दिलासा देती रहीं, पर भीतर दहशत जैसे जमकर बैठ गई थी। आधी रात को ऐसे कहीं घूमा जाता होगा? चाचा जो कह गये थे गड़बड़ होने की बात। वह बिलकुल ठीक है। जरूर कुछ गड़बड़ हुआ है। ममी पहले तो ऐसी नहीं थीं। पर वह क्या करें? मम्मी जब चुप–चुप हो जाती हैं तो उसका मन बिलकुल नही लगता।

परसों ही तो पापा की चिट्टी आई थी। लिफाफे पर मम्मी का नाम लिखा था। पिछली बार तो लिफाफे पर भी उसका नाम था। अन्दर भी दो कागज़ निकले, एक मम्मी खुद पढ़ने लगीं, दूसरा उसे पकड़ा दिया। तो क्या मम्मी के पास भी पापा की चिट्टी आई है? ममी–पापा क्या दोस्ती करने वाले हैं? उसने अपनी चिट्टी पढ़ ली और फिर मम्मी की ओर ध्यान से देखने लगा। मम्मी क्या खुश नज़र आ रही है? कहीं कुछ नहीं, बस वैसे ही चुप बैठी हैं, मानो पापा की कोई चिट्ठी ही नहीं आई हो। एक बार उसकी चिट्टी आई थी और उसे पढ़कर ही मम्मी कितनी प्रसन्न हुई थीं। पापा के पास भेजने से पहले उसे अपनी बांहों में भरकर इतना प्यार किया था, इतना प्यार किया था मानो वह कहीं भागा जा रहा हो। और जब वह लौटकर आया था तो ममी उससे सवाल पर सवाल पूछे जा रही थीं.... और क्या कहा और क्या कहा'.....के मारे परेशान कर दिया था।

मम्मी से छिपकर उसने मम्मी वाला पत्र उठाकर देखा, घसीटी हुई अंग्रेजी की चार–छह लाइनें थीं, वह कुछ भी समझ नहीं सका। उसका पत्र हिन्दी में था और बड़े–बड़े साफ़ अक्षरों में।

परसों रात को जब वह सोया तो बराबर उम्मीद कर रहा था कि मम्मी ज़रूर पहले की तरह प्यार करेंगी, कुछ कहेंगी। पर उन्होंने कुछ नहीं कहा, सिर्फ पूछा, 'तू जाएगा पापा के पास?' यह भी कोई पूछने की बात थी भला! पापा आ रहे हैं और वह जाएगा नहीं? उसके बाद मम्मी बोली नहीं।

इस समय ममी उदास बिलकुल नहीं है। मम्मी की उदासी वह खूब पहचानता है। बिना आंसू के भी आंखें कैसी भीगी–भीगी हो जाती हैं।

अच्छा है, बैठी रहें ऐसी ही। वह तब पापा के पास जाकर खूब घूमेगा, चीज़ें खरीदेगा, हां, नहीं तो।

वह जल्दी–जल्दी तैयार हो रहा है और मन ही मन कहीं उन चीजों की लिस्ट तैर रही है जो उसे मांगनी है। कैरम–बोर्ड जरूर लेगा, एक व्यू। मास्टर भी। ''दूध–दलिया खा लो।'' फूफी अलग ही अपना मुंह फुलाये घूम रही है। पिछली बार भी पापा आये थे तो यह ऐसे ही भन्ना रही थी।

जैसे इसकी भी पापा से लड़ाई हो। ''मैं नहीं खाता दूध–दलिया। बस रोज़ सड़ा–सा दूध–दलिया बनाकर रख देती है।''

''बंटी, क्या बात है?'' कैसी सख्त आवाज़ में बोल रही हैं मम्मी। बंटी भीतर ही भीतर सहम गया। धीरे–से–बोला, ''हमें अच्छा नहीं लगता दूध–दलिया।'' ''क्यों, दूध–दलिया तो तुझे खूब पंसद है। एक दिन भी न बने तो शोर मचा देता है। आज ही क्या बात हो गई?'' ''पंसद है तो रोज–रोज़ वही खाओ, एक ही चीज़ बस। मैं नहीं खाता।'' ''देख रही हूं जैसे–जैसे तू बड़ा होता जा रहा है, वैसी ही वैसे जिद्दी और ढीठ होता जा रहा है। अच्छा है, भद्द उड़वा सबके बच मेरी।'' कैसे बोल रही हैं मम्मी! इसमें भद्द उड़वाने की क्या बात हो गई! वह नहीं खाएगा दूध–दलिया, बिना नाश्ता किये ही चला जाएगा।

वह मेज़ से उठ गया तो मम्मी ने एक बार भी नहीं कहा कि कुछ और बना दो! न कहें, उसका क्या जाता है?

हीरालाल को कल ही कह दिया था कि ठीक नौ बजे आ जाना। साढ़े नौ बज रहे हैं, पर उसका पता नहीं। बंटी बेचैनी से इधर–उधर घूम रहा है। थोड़ी–थोड़ी देर में घड़ी देख लेता है। मम्मी किताब लेकर ऐसे बैठ गई हैं, जैसे समय का उन्हें कुछ होश ही नहीं हो। वह बताये कि साढ़े नौ बज गये। पर क्या फायदा, कह देंगी अभी आता होगा।' वह सब समझता है। अब उतना बुद्धू नहीं है। मम्मी को शायद अच्छा न लग रहा है कि बंटी पापा के पास जा रहा है। पर क्यों नहीं लग रहा है? उसकी तो पापा से लड़ाई नहीं है। पर ऐसा होता है शायद!

एक बार क्लास में विभु से उसकी लड़ाई हो गई थी तो उसने अपने सब दोस्तों की विभु से कुट्टी नहीं करवा दी थी? शायद मम्मी भी चाहती है कि वह भी पापा से कुट्टी कर ले। तो मम्मी उससे कहतीं। अच्छा मान लो मम्मी उससे कहतीं तो वह कुट्टी कर लेता ? और उसके मन में न जाने कितनी चीज़ें तैर गई–कैरम–बोर्ड, व्यू–मास्टर मैकेनो ग्लोब.....

तभी हीरालाल की छोटी लड़की आई, ''बापू को ताप चढ़ा है, वे नहीं आ सकेंगे।'' ''क्या हो गया?'' मम्मी की आवाज़ में ज़रा भी परेशानी नहीं है। हां, उनका क्या बिगड़ता है। वे तो चाहती ही हैं कि मैं नहीं जाउं। मैं जरूर जाउंगा, चाहे कुछ भी हो जाये। ''भोत जोर का ताप चढ़ा है, सीत देकर। वे तो गूदड़े ओढ़कर पड़े हैं, मुझे इत्तेल्ला देने को भेजा है।'' और वह चली गई। ''अब?'' बंटी रोने–रोने को हो आया। मम्मी एक क्षण चुप रहीं। फिर फूफी को बुलाकर कहता तो फूफी अलग मिज़ाज दिखाने लगी, ''बहूजी, मैं नहीं जाउंगीं वहां।'' ''क्यों? बस तुम ही मुझे छोड़कर आओगी।'' बंटी फूफी की हाथ पकड़कर कर झूल आया, ''जल्दी चलो, अभी चलो।'' ''छोड़ आओ फूफी, वरना कौन ले जाएगा?'' कैसी ठण्डी–ठण्डी आवाज में बोल रही हैं। जैसे कहना है इसलिये कह रही हैं बस। ले जाये, न ले जाये, कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

फूफी एकदम विफर पड़ी, ''कोई नहीं है ले जानेवाला तो नहीं जाएगा। मिलने की ऐसी ही बकली है तो खुद आकर ले जाएंगे। इस घर में आ जाने से तो कोई धरम नहीं बिगड़ जाएगा। आप जो चाहे सज़ा दे लो बहूजी, मैं वहां नहीं जाऊंगी। मुझसे तो, आप जानों .....''

और बड़बड़ाती हुई फूफी चली गई। मम्मी ने कुछ भी नहीं कहा। मम्मी का अपना काम होता तो कैसे बिगड़तीं। अब फूफी को कहो न कि बिगड़ती जा रही है, ढीठ होती जा रही है। बस डांटने के लिये मैं ही हूं। ठीक है कोई मत ले जाओ मुझे। और बंटी एकदम वहीं पसरकर रोने लगा। ''रो क्यों रहा है? यह भी कोई रोने की बात है भला? ठहर जा, कालेज के माली को बुलवाती हूं।''

मम्मी माली को समझा रही हैं, ''देखो, कह देना कि आठ बजे तुम लेने आओगे, इसलिये जहां कहीं भी हों, आठ बजे तक सर्किट हाउस पहुंच जायें। तू भी कह देना रे। आठ से देर नहीं करें। समझे!'' कैसी सख्त–सख्त आवाज़ में बोल रही हैं, एकदम प्रिंसिपल की तरह।

रास्ते भर बंटी सोचता गया कि बहुत सारी बातें हैं जो वह पापा से पूछेगा। मम्मी से पूछी नहीं जाती। कभी शुरू भी करता है तो मम्मी उदास हो जाती हैं या सख्त। उदास मम्मी बंटी को दुखी करती हैं और सख्त ममी उसे डराती हैं। और इधर तों मम्मी को पता नहीं क्या कुछ होता जा रहा है। पास लेटी मम्मी भी उसे बहुत दूर लगती हैं। उसके और मम्मी के बीच में जरूर कोई रहता है। शायद वकील चाचा को कही हुई कोई बात, शायद कोई गडबड़ी। उसे कोई कुछ नहीं बताता, वह अपने–आप समझे भी क्या? मम्मी की बात तो पापा से भी नहीं पूछी जा सकती है। पर एक बात वह ज़रूर पूछेगा कि क्या तलाक वाली कुट्टी में कभी अब्बा नहीं तो सकती? अगर पापा भी साथ रहने लगें तो कितना मज़ा आये! पर ऐसी बात पूछने पर पापा ने डांट दिया तो? पापा बाहर ही मिल गये। बंटी देखते ही दौड़ गया और पापा ने उठाकर छाती से लगा लिया, ''बंटी वे!'' और दोनों गालों पर ढेर सारे किस्सू दे दिये। ''इतनी देर क्यों कर दी, हम तो कब से राह देख रहे हैं तुम्हारी।'' ''हीरालाल बीमार पड़ गया, कोई लानेवाला ही नहीं था।'' माली ने आठ बजेवाली बात कही तो पापा बड़ी लापरवाही से बोले, ''हां–हां ठीक है, आ जाना आठ बजे!'' और बंटी को लेकर भीतर आ गये। कुछ किताबें, एक मैकेनो और टॉफी का एक डिब्बा बंटी के सामने फैले पड़े हैं। ''पंसन्द हैं सब?'' ''मझे कैरम–बोर्ड और व्यू–मास्टर चाहिये'' बड़े शरमाते हुए बंटी ने कहा। ''अरे, तो तुम हमको लिख भेजते। तुम तो हमें कभी चिट्टी ही नहीं लिखते। अच्छा कोई बात नहीं, अगली बार दिलवाएंगे। बंटी का मन हुआ कि यहीं से दिलवाने का कह दें। पर कहा नहीं गया। मम्मी होती तो जिद करके ले लेता। ''तुम तो इस बार बहुत बड़े हो गये।'' पापा उसे एकटक देख रहे हैं। वह झेंप गया। पापा है कि एक के बाद एक प्रश्न पूछे जा रहे हैं। ''पढ़ाई कैसी चल रही है? अच्छे नम्बर लाते हो न?'' ''कल हमारे यहां इन्स्पेक्शन था। मैंने खूब अच्छे जबाव दिये तो इन्स्पेक्टर साहब ने मुझे शाबाशी दी और सर ने भी।'' ''शाबाश! लो हमने भी शाबाशी दे दी!'' और पापा ने उसकी पीठ थपथपा दी। ''और खेल कौन–कौन से खेलते हो?'' ''ताश, लूडो, कैरम.....'' ''क्या कहा, ताश, लूडो, कैरम–धत्तेरे का यह भी कोई खेल हुये, लड़कियों के। क्रिकेट खेलो, हॉकी खेलो, कबड्डी खेलो, लड़कों वाले खेल खेलो। घर से बाहर निकलकर भागने–दौड़ने वाले..... ''अच्छा, पेड़ पर चढ़ सकते हो?'' ''नहीं, मम्मी डांटती हैं, कहती गिर जाएगा!'' ''तैरना सीखा? तैरने की कोई जगह है?'' 'पता नहीं।'' ''साइकिल चलाना आता है छोटी, दो पहिए वाली?'' ''ममी कहती हैं, जब दस साल का हो जाउंगा तब दिलवाएंगी।'' ''दोस्त कितने है?'' ''टीटू!'' ''कौन है टीटू?'' ''घर के पास रहता है। हमारे स्कूल में पढ़ता है, पर मुझसे एक क्लास आगे है। और कुन्नी है।'' ''कुन्नी कौन?'' ''शर्मा साहब की लड़की है, मेरी दोस्त। उनका घर भी उधर ही है। हमारे घर के पीछे चलिये, फिर इधर को मुड़िये, फिर थोड़ा–सा चलिये, बस उनका घर आ जाता है।'' इतनी अच्छी तरह समझाया फिर भी पापा हंस रहे हैं। ''और कौन दोस्त है?'' ''कोई नहीं।'' ''बस, कुल दो दोस्त!'' ''नहीं,

स्कूल में तो बहुत सारे हैं। पर उनके घर तो दूर–दूर हैं।'' ''तूम्हारा मन कैसे लगता है सारे दिन? बच्चों को तो खूब दोस्तों के साथ रहना चाहिये, खूब खेलना चाहिये।'' ''लग जाता है। मम्मी खूब कहानियां सुनाती हैं, खूब! ताश भी खेलती हैं। फिर मैं किताबें पढ़ता हूं। ड्रांइग बनाता हूं। खूब सारी पेंटिग बना रखी है मैंने। अच्छी–अच्छी तो मम्मी ने कमरे में लगा दीं।'' ''अच्छा, इस बार हमारे लिये भी एक बनाना। हम भी अपने कमरे में लगायेंगे।'' तो एक क्षण को बंटी पापा का चेहरा देखता रहा। कह दे कि पापा हमारे साथ क्यों नहीं रहते? इस घर में तो मेरी पेंटिग लगी ही हुई हैं। पापा इसी घर को अपना घर क्यों नहीं बना लेते? अलग घर में क्यों रहते हैं? इस घर में मेरा बगीचा भी तो हैं–खूब सुन्दर–सा। ''इस बार छुट्यिों में कलकत्ता चलोगे हमारे साथ?'' बंटी ने बड़ी सशंकित–सी नज़र से पापा की ओर देखा। उसे साथ चलने को क्यों कह रहे हैं, पहले तो कभी नहीं कहा? ''बहुत मज़ा आएगा, खूब घूमेंगे। बोलो?'' ''मम्मी चलेंगी तो चलूंगा।'' ''छी–छी, इतने बड़े होकर भी मम्मी के बिना नहीं रह सकते। यह गन्दी बात है बेटे! तब तुम्हें मम्मी के बिना रहने की आदत डालनी चाहिये। तुम क्या लड़की हो जो मम्मी से चिपटे–चिपटे फिरते हो?''

बंटी बहुत संकुचित हो आया। भीतर ही भीतर कहीं गुस्सा भी आने लगा। फूफी ऐसा कहती तो मज़ा चखा देता। पापा से क्या कहे? पर पापा ऐसी बात कहते ही क्यों है? खुद तो मम्मी के साथ नहीं रहते, चाहते हैं वह भी नहीं रहे। बहुत चालाक हैं। एकाएक उसके मन में सामने बैठे पापा के लिये गुस्सा उफनने लगा। बहुत मन हुआ पूछे, आप मम्मी को भी साथ लेकर क्यों नहीं चलते? उसने एक उड़ती–सी नज़र डाली। पता नहीं पापा उसकी बात से कही नाराज़ हो जाये तो? वह पापा को जानता ही कितना है? मम्मी की तो हर बात का उसे पता है, पर पापा..... ''बोलो, इस बार छुट्टियों में तुम्हें वहां बुलवाने का इन्तज़ाम करें? छुट्यिां खतम हो जाएंगी तो वापस भिजवा देंगे। नई–नई चीजें देखोगे–विक्टोरिया मेमोरियल, बोटेनिकल गोर्डस, लेक्स, जू.....।''

और पापा एक–एक चीज़ के बारे में विस्तार से बताने लगे। बड़ा शहर, बड़े शहर की बड़ी–बड़ी इमारतें, बड़ी–बड़ी बातें। और थोड़ी देर पहले समाया हुआ बंटी के मन का संकोच और भय इन बातों के बीच घुलने लगा। एक–एक जगह कई–कई चित्र उसकी आंखो के सामने बनने–बिगड़ने लगे। मन में एक साथ ही जाने कितना उत्साह और कौतूहल जाग उठा। ''वहां सब बंगला में बोलेंगे तो मैं क्या करूंगा?'' 'वहां सब मछली–भात खाते हैं? तब तो सारे शहर में मछली की बदबू ही आती रहती होगी!' 'तेरह–चौदह तल्ले का मकान कितना ऊँचा होगा?' और वह नजर ऊँची करके अंदाज लगाने लगा। 'हुगली में जहाज भी तो चलते हैं? हम देख सकते हैं भीतर तक जाकर?' ''पी. सी. सरकार भी तो वहीं रहता है? आपने जादू देखे हैं उनके? कमाल? सात बौनों वाली कहानी के जादूगर जैसा है पी. सी. सरकार। अच्छा पापा, बंगाल की जादूगरनियां देखी हैं आपने, जो आदमी को भेड़ बनाकर रख लेती हैं? जादू के जोर से आदमी वेश बदल सकता है?'' और हर उत्तर के साथ उसके सामने कौतूहल–भरी एक नई दुनिया खुलती जा रही है। वह मुग्ध–सा सुन रहा है और कल्पना की आंखों से बहुत कुछ देख भी रहा है। पर 'बोलो आओगे छुट्यिों में?' के साथ ही सारा जादू एक झटके के साथ टूट गया। नहीं बिना मम्मी के वह नहीं जाएगा, जा ही नहीं सकता। खाना खाकर पापा ने कहा, ''चलो थोड़ी देर सो लेते हैं। शाम को फिर 'घूमने चलेंगे। दोपहर में तो सोते हो न?'' उसने यों ही सिर हिला दिया। पापा ने उसे पलंग पर लिटा दिया और खुद नीचे लेट गये। मम्मी होतीं तो साथ ही सुला लेतीं। लेटते ही पापा को नींद आ गई। बंटी क्या करे, उसे नींद ही नहीं आती। यहां से तो निकलकर भी नहीं जा सकता। थोड़ी देर तो वह चुपचाप लेटा–लेटा कलकत्ता ही देखता रहा। फिर एकाएक उसे घर की याद आने लगी। मम्मी की याद आने लगी। वह शाम को आता तो तभी ठीक था। लो, पापा की तो नाक भी बजने लगी– चुर्रे खूं, घुर्र खूं। बंटी को हंसी आने लगी। वह एकएक पापा के चेहरे की ओर देखने लगा। बिना चश्मे के कैसा लग रहा है पापा का चेहरा? उसे ख्याल

आया उसने इतने गौर से तो पापा का चेहरा कभी देखा ही नहीं। मम्मी के चेहरे की तो एक–एक लाइन उसकी जानी–पहचानी है। पापा के हाथों में बाल कितने बड़े–बड़े हैं। और तभी आंखों के सामने मम्मी की चूड़ी वाली कलाई उभर आई बंटी बहुत उबने लगा तो पापा की लाई हुई किताबों में से एक किताब शुरू कर दी।

शाम को तांगे में बिठाकर पापा ने उसे घुमाया। आइसक्रीम खिलाई, चाट खिलाई। गन्ने का रस पिलाया। बंटी सोच रहा था कि पापा शायद कुछ चीजें और दिलवायेंगे। लेकिन उन्होंने कुछ नहीं दिलवाया तो बंटी को थोड़ी–सी निराशा हुई। पर फिर भी उससे मांगा नहीं गया। खा–पीकर, घूम–फिरकर शाम को वे लोग वापस आ गये। तांगे से उतरकर बंटी भीतर जाने लगा कि एकदम पापा नहीं तांगेवाले ने क्या कहा कि पापा और जोर से चिल्लाये,'' झूठ बोलते हो? घड़ी देखकर तांगा किया था। मैं एक पैसा भी ज्यादा नहीं दूंगा।''

बंटी सहमकर जहां का तहां खड़ा हो गया। तांगेवाले ने कुछ कहा और कूदकर तांगे से नीचे उतर आया। पापा एकदम चीख पड़े, ''यू शट अप! जबान संभालकर बात करो। जितना रहम खाओ उतना ही सिर पर चढ़े जा रहे हैं, जूते की नोक पर ही ठीक रहते हैं ये लोग । .....''पापा का चेहरा एकदम सुर्ख हो रहा था और आंखो से जैसे आग बरस रही थी। बंटी की सांस जहां की तहां रूक गई। चपरासी और दरबान ने बीच–बचाव करके तांगे को रवाना किया। पापा अभी भी जैसे हांफ रहे थे और बंटी सहमा हुआ था। उसने पापा को कभी गुस्सा होते हुए तो देखा ही नहीं। एकाएक खयाल आया, कभी इसी तरह उस पर गुस्सा हो तो? वह भीतर तक कांप गया। एकाएक उसे बड़ी जोर से मम्मी की याद आने लगी। अब वह एकदम ममी के पास जाएगा। माली आया या नहीं? तभी चपरासी ने कहा, ''बाबा को लेने के लिये आदमी आया था। आधा घंटे तक बैठा भी रहा, अभी–अभी गया है, बस आपके आने के पांच मिनट पहले ही। बंटी की आंखों में आंसू आ गये। किसी तरह उन्हें आंखों में ही पीता हुआ वह बड़ी असहाय–सी नज़रों से पापा की ओर देखने लगा। मन में समाया हुआ एक अनजान डर जैसे फैलता ही जा रहा था। पापा ने एक बार घड़ी की तरफ नज़र डाली, '' चपरासी चला गया तो? यह भी अच्छा तमाशा है, घड़ी देखकर घर में घुसो। जो समय उधर से दिया गया है उसी में घूमो–फिरो और लौट आओ। नॉनसेंस!'' एकाएक ही बंटी की छलछलाई आंखें बह गई। पता नहीं माली के लौट जाने की बात सुनकर या कि पापा का गुस्सा देखकर या कि इस भय से कि पापा कहीं रात में यहीं रहने को न कह दें। दो दिन से पापा को लेकर जो उत्साह मन में समाया हुआ था, वह एकदम बुझ गया और सामने खड़े पापा उसे निहायत अजनबी और' अपरिचित–से लगने लगे।

''अरे तुम रो क्यों रहे हो? रोने की बात क्या हो गई?'' ''माली चला गया? अब मैं घर कैसे जाउंगा?'' सिसकते हुये बंटी ने कहा। ''पागल कहीं का! यहां क्या जंगल में बैठा है? मैं नहीं हूं तेरे पास?'' ''ममी के पास जाउंगा।'' रोते–रोते ही बंटी ने कहा। ''हां–हां, तो मैंने कब कहा कि ममी के पास नहीं जाओगे।'' ''पर माली तो चला गया?'' ''चला गया तो क्या? मैं तुम्हें छोड़कर आउंगा, बस।'' बंटी ने ऐसे देखा जैसे विश्वास नहीं कर रहा हो। कहीं उसे बहका तो नहीं रहे। अभी चुप करने के लिये कह दें और फिर कहने लगें कि सो जाओ। पापा ने पास आकर उसका माथा सहलाया, गाल सहलाये, तो टूटा विश्वास जैसे फिर जुड़ने लगा। पापा फिर अपने लगने लगे। ''पागल कहीं का! इतना बड़ा होकर रोता है मम्मी के लिये।'' तो अंसुवाई आंखों से ही बंटी हंस दिया। भीतर ही भीतर बड़ी शर्म महसूस हुई अपने ऊपर। सचमुच उसे इतनी जल्दी रोना नहीं चाहिये। बच्चे रोया करते हैं बात–बात पर तो, वह तो अब बड़ा हो गया है। अब कभी नहीं रोएगा इस तरह। बंटी पापा के साथ तांगे में बैठा तो मन एकदम हल्का होकर दूसरी ओर को दौड़ गया। पापा को देखकर ममी को कैसा लगेगा? एकदम खुश हो जाएंगी। वह खींचकर पापा को अन्दर

ले जाएगा और ममी का हाथ, पापा का हाथ मिला देगा– चलो कुट्टी खत्म। फिर ममी और वह मिलकर पापा को जाने ही नहीं देंगे। सोते, घूमते–फिरते कितनी बार मन हुआ था कि ममी की बात करे। पापा से वह सब पूछे, जो ममी से नहीं पूछ पाता है। पर पापा का चेहरा देखता और बात भीतर ही घुमड़कर रह जाती। पर पापा को साथ लाकर और दोस्ती की बात सोच–सोचकर उसका मन थिरकने लगा। जाने कैसे–कैसे चित्र आंखों के सामने उभरने लगे। पापा, ममी और वह घूमने जा रहे हैं। पापा उसके साथ खेल रहे हैं। वह पापा के साथ मिलकर ममी को चिढ़ा रहा है या कभी ममी के साथ मिलकर पापा को। अजीब–सा उत्साह है जो मन में नहीं समा रहा है। कहानियों के न जाने कितने राजकुमार मन में तैर गये, जो अपनी–अपनी मां के लिये समुद्र तैर गये थे या पहाड़ लांघ गये थे। वह भी किसी से कम नहीं है। मां के लिये पापा को ले आया। अब दोस्ती भी करवा देगा। वरना कोई ला सकता था पापा को? अब चिढ़ाये फूफी की बंटी लड़की है। अब ममी कभी उदास नहीं होंगी। लेटे–लेटे छत या आसमान नहीं देखेंगी। टीटू की अम्मा यह नहीं पूछेंगी, ''आते हैं तुम्हारे पापा यहां?'' उसने बड़े थिरकते मन से पापा की ओर देखा। पापा एकदम चुप क्यों हैं? अंधेरे में चेहरा ठीक से नहीं दिखाई दे रहा है। वह चाहता है पापा कुछ बोलते चलें, कलकत्ता चलने की बात ही कहें या कि उसे लड़के वाले खेल खेलने की बात ही कहें, पर कुछ तो कहें। बोलते हुए पापा उसे अपने बहुत पास लगने लगते हैं। चुप हो जाते हैं तो लगता है जैसे पापा कहीं दूर चले गये। जैसे उसके और पापा के बीच में कोई और आ गया। उसी निकटता को महसूस करने के लिये उसने अनायास ही पापा का हाथ पकड़ लिया। पर पापा हैं कि बिलकुल चुप! पापा की चुप्पी से बंटी के मन में अज़ीब तरह की बेचैनी घुलने लगी। कहीं दोस्ती की बात करते ही पापा चिल्लाने लगें आखें लाल–लाल करके तो? पापा का वही चेहरा उभर आया। ऐसे चिल्लाते होंगे तभी शायद ममी ने कुट्टी कर ली होगी। बंटी ने फिर एक बार पापा की ओर देखा। अंधेरे में पापा का चेहरा दिखाई नहीं दे रहा। ''बस, बस यहीं घर है, बाईं तरफ़वाला।'' कॉलेज के पास आते ही तांगा थम गया था। बंटी ने कहा तो तांगेवाले ने बाईं तरफ़ को लगा दिया। बंटी ने हाथ और कसकर पकड़ लिया। हाथ पकड़े–पकड़े ही वह तांगे से नीचे उतरा और एक तरह से पापा को खींचता हुआ गेट की तरफ़ चला। उसे लग रहा था कि यदि उसकी पकड़ जरा भी ढीली हुई तो पापा छूटकर चल देंगे। सड़क पर से वह चिल्लाया, ''ममी, पापा आये हैं।'' लॉन में से एक छायाकृति तेज–तेज कदमों से फाटक की ओर आई। फाटक खुला और ममी सामने आ खड़ी हुईं। ममी को देखते ही बंटी का हौसला बढ़ गया। लगा जैसे वह अपनी सूरक्षित सीमा में आ गया है। पापा के हाथ को पूरी तरह खींचता हुआ बोला, ''भीतर चलिये न पापा? मैं अपना बगीचा दिखाऊंगा। मोगरा खूब फूला है।'' पर ममी और पापा जहां के तहां खड़े हुये हैं? चुप और जड़ बने हुये। मैंने आदमी भेजा था। आपको शायद लौटने में देर हो गई। सो वह राह देखकर चला आया। आपको तकलीफ़ करनी पड़ी।'' ''कोई बात नहीं।'' बंटी ने चौक कर पापा की ओर देखा। वह पापा बोले थे? एकदम बदला हुआ स्वर। न प्यारवाला, न गुस्सेवाला। पता नहीं उस स्वर में ऐसा क्या था कि बंटी की पकड़ ढीली हो गई फिर भी उसने कहा? ''पापा, एक बार भीतर चलिये न! ममी, तुम कहो न!'' बंटी रूआंसा हो आया। ''कुछ देर बैठ लीजिये। बच्चे का मन रह जाएगा।'' ममी कैसे बोल रही है? किसी को ऐसे कहा जाता होगा ठहरने के लिये? ''रात हो गई है, फिर लौटने में बहुत देर हो जाएगी।'' ''इसी तांगे को रोक लीजिये, अभी कहां देर हुई है, चलिये न!'' हाथ पर झूलते हुये बंटी ने पापा को भीतर खींच ही लिया। पापा भीतर आये। लॉन में ही ममी–पापा आमने–सामने कुर्सी पर बैठ गये। बंटी पुलकित। उसे समझ नहीं रही कि क्या करे और कैसे करें। कल रात दस बजे ही पहुंच जाना। दूसरा ही नम्बर है, पन्द्रह–बीस मिनट में नम्बर आ ही जाएगा। अपने–आप आ सकोगी न?'' ''हां, पहुंच जाऊंगी।'' अंधेरे में दोनों के चेहरे नहीं दिखाई दे रहे, पर आवाजें कैसी बदली हुई हैं। पापा ने कहां आने को कहा है? मन हुआ पूछे, पर हिम्मत नहीं हुई।

मम्मी–पापा की कोई बात है, उसे बीच में नहीं बोलना चाहिए। तभी एकदम दौड़कर गया। रात में पौधे सोते हैं, उन्हें छूने से भी पाप लगता है, और अगर फूल–पत्ता तोड़ो तब तो बहुत बड़ा, कालावाला पाप लगता है, यह बात अच्छी तरह जानते हुये भी बंटी अपने को रोक नहीं सका। चार–पांच पत्तियों के बीच में तीन बड़े–बड़े मोगरे सवेरे ही खिले थे, उन्हें ही लम्बी डंडी के साथ तोड़ लिया। ''कहां लगाऊं, बुश्शर्ट में कहीं फूल लगेगा?'' उसे समझ में नहीं आ रहा था कैसे खातिर करे वह पापा की! ''लाओ, हाथ में दे दो।'' पापा उठ खड़े हुए। ''यह मेरा बोया हुआ मोगरा है, मैं ही इन्हें सींचता हूं रोज़। दिन में आकर देखिये। बंटी ने फिर हाथ पकड़ लिया। वह जैसे पापा को जाने नहीं देना चाहता है। ममी भी साथ–साथ चलीं। फाटक पर आकर पापा ने एक बार उसके गाल थपथपाये, पीठ पर हाथ फेरा और फिर धीरे–से हाथ छुड़ाकर तांगे में जा बैठे। तांगा चल दिया। बंटी सन्न–सा रह गया। मम्मी का चेहरा नहीं दिख रहा, पर उसकी अपनी आंखों में आंसू आ गये और आंसूओं के साथ–साथ थोड़ी देर पहले ममी–पापा के साथ रहने के जो चित्र मन में बने थे, सब बह गये। रह गये वह और ममी–पहले की तरह, बिल्कुल अकेले–अकेले। उसने बड़ी ही निरीह–बेबस नज़रों से ममी को देखा। ममी शायद उधर देख रही थी, जिधर तांगा गया था। फिर धीरे–से घूम गईं। ''चल भीतर चलकर कपड़े बदल।'' मरी–मरी–सी आवाज़ में ममी ने कहा, और उसकी पीठ पर हाथ रखकर उसे सहारा देती–सी भीतर ले चलीं। ममी का हाथ उसकी पीठ पर रखा था, फिर भी किसी स्पर्श का अहसास उसे नहीं हो रहा था, कम से कम ममी के स्पर्श का नहीं। तो क्या ममी उससे नाराज़ है? सवेरे की अनमनी ममी उसकी आंखों के सामने एक बार फिर घूम गईं। उसने कुर्सी पर रखे डिब्बे और किताबें उठाईं और ममी के साथ–साथ भीतर आया। कमरे में पहुंचकर जैसे ही बत्ती जलाई, बंटी ने देखा ममी की आंखें लाल हैं। तो ममी रोई है, शायद, बहुत ज्यादा रोई हैं। जाने क्यों उसका अपना मन रोने–रोने को हो आया। एक अज़ीब–सी अपराध भावना मन में घुलने लगी। जैसे वह कोई बहुत ही गलत काम करके आ रहा है। वह ममी को छोड़कर क्यों गया? सचमुच अब ममी की तरफ़ देखने की हिम्मत भी नहीं हो रही। ममी कुछ बोल भी तो नहीं रहीं। बस चुपचाप कपड़े निकालकर दे दिये और ऐसे ही बाहर देखने लगीं। शायद नहीं चाहतीं कि बंटी उनकी ओर देखे। एक बार उसका मैकेनो तो देखती। कित्ता बड़ा है! ''बदल लिये कपड़े? बस्ता भी अभी से जमाकर रख ले, सवेरे फिर जल्दी नहीं उठा गया तो?'' ''कल छुट्टी नहीं है इन्स्पेक्शन की!'' ''ओह! मैं भूल गई थी।'' ममी ने जल्दी से बत्ती बुझा दी और उसे लेकर बाहर आ गईं। बंटी और ममी के पलंग पास–पास बिछे हुये हैं। पर बंटी हमेशा पहले ममी के पलंग पर ही सोता है। ममी कहानी सुनाती है। फिर दोनों दुनिया–भर की बातें करते हैं, उसके बाद बंटी अपने पलंग पर जाता है। कभी–कभी तो वह कहानी सुनते–सुनते ममी के पलंग पर ही सो जाता है, ममी बाद में उसे उसके पंलग पर लिटा देती हैं। पता नहीं क्यों उसे लग रहा है कि आज वह जैसे ही ममी के पलंग पर सोएगा, ममी मना कर देंगी। कहेंगी अपने ही पलंग पर सोओ, इतने बड़े हो गये, अभी तक ममी के साथ सोते हो या ऐसे ही कुछ भी। एक क्षण वह दुविधा में खड़ा रहा, फिर धीरे से अपने ही पलंग पर लेट गया, इस आशा के साथ कि ममी उसे अपने पास बुलाएंगी। उससे कुछ तो बात करेंगी। आज सारे दिन उसने क्या–क्या किया, कहां घूमा, क्या खाया। पर ममी चुप! ममी शायद मुझसे नाराज़ हैं तो डांट क्यों नहीं लेतीं? मैं क्या मना करता हूं? पर कुछ तो बोलें। वह तो पापा और ममी की दोस्ती कराने की बात सोच रहा था, अब तो ममी ने भी उससे कुट्टी कर ली। उसकी आखों में आँसू आ गये। पर ममी उससे नराज़ हैं? क्यों? और उस 'क्यों का बोझ लिये–लिये ही सारे दिन के थके–मांदे बंटी की आंखे झपकने लगीं– और वह सो गया। गाल पर वह आये आंसू भी धीरे–धीरे सूख गये।

सवेरे चिड़ियों की चहचहाहट से ही बंटी की नींद उचटी। आंखें बन्द किये–किये ही उसने करवट बदली। बिस्तर के अनछुये हिस्से की नमी भरी ठंडक, सारे शरीर में एक फरहरी–सी दौड़ाती हुई, उसे ऊपर से नीचे तक ताज़गी से भर गई। नींद की दुनिया से वह असली दुनिया में आया तो कल का सारा दिन एक क्षण को खुमारी–भरी आंखों के सामने कौंध गया– पापा के साथ बिताया हुआ दिन। और साथ ही खयाल आया ममी का! ममी की उदास, सूजी–सूजी आंखे। बिना एक शब्द भी बोले उसे चुपचाप सुला देना। न एक बार भी अपने पलंग पर आने को कहा, न प्यार किया, न सारे दिन के बारे में कुछ पूछा, पर क्यों?

और कल की बात के साथ ही कल का क्यों भी उसके सामने आकर खड़ा हो गया। उसने करवट बदली। अधमुंदी आंखों से ही ममी के पलंग की ओर देखा। पलंग खाली था। तो ममी उठकर चली गईं। एक बोझ जैसे उस पर से उतर गया। वरना ममी के सामने वह कैसे आंखें खोलता? कल वापस लौटने के बाद से बराबर ही लग रहा था जैसे उससे कुछ गुनाह हो गया, कुछ गलत हो गया। नहीं भेजना था तो ममी मना कर देतीं। इतना नाराज़ होने और रोने की क्या जरूरत थी? अब वह भीतर जाएगा तो अभी भी ममी उससे नहीं बोलेंगी? ममी नहीं बोलेंगी तो कैसे रहेगा वह? इम्तहान भी तो शुरू होने वाले हैं, कौन पढ़ाएगा उसे? एकाएक बंटी का मन रोने को हो आया। वह उठा। देखता हूं, कैसे नहीं बोलेंगी। मैं क्या कर सकता था, पापा ने जो बुलाया था।

कमरें में घुसते ही नज़र पापा की दी हुई चीजों पर पड़ी। इसके बाद इच्छा हुई मैकेनो को खोलकर देखे। पर नहीं, अभी नहीं, वह दबे पैरों गया और सब चीजें उठाकर सोफे के पीछे रख दीं। ममी कालेज चली जाएंगी तब खोलेगा, उसकी तो आज छुट्टी है। फिर दौंड़कर वह पीछेवाले आंगन में आया जैसे सीधा बाहर से ही आ रहा हो। ममी अखबार पढ़ रही हैं। दरवाजे की ओर पीठ है, इसलिये चेहरा नहीं दिखाई दे रहा। अच्छा ही है। हमेशा की तरह बंटी गया और पीठ पर लदकर गले में झूल गया। ''उठ गये?'' ममी ने उसको अलग करते हुए पूछा। पर बंटी पीठ पर लदा रहा। अपनी तरफ से वह पूरी तरह सुलह कर लेना चाहता है। अब ममी को एक मिनट के लिये भी नाराज़ नहीं रहने देगा, दुखी भी नहीं रहने देगा। ममी नहीं चाहेंगी तो वह कहीं नहीं जाएगा, कुछ भी नहीं करेगा। ''जा, ब्रश करके आ बेटा! फूफी दूध गरम कर रही है।'' लगा स्वर हमेशा की तरह मुलायम ही था। बंटी हल्के से आश्वस्त हुआ और दौड़ता हुआ बाथरूम की ओर चला गया। लौटा तो मेज़ पर ममी की चाय और उसका दूध रखा हुआ था। ममी अखबार पढ़ने के साथ–साथ चाय पी रही थीं। वह आया तो उसका दूध उसके सामने रख दिया, उसके टोस्ट पर मक्खन लगा दिया। ''ममी!'' जैसे भीतर से हिम्मत जुटाकर बंटी बोला। ''हूं?''..... अखबार पर नज़र गड़ाये–गड़ाये ही ममी ने पूछा। बंटी को लगा जैसे ममी उससे नजर नहीं मिला रहीं। आंखें शायद अभी सूजी हुई हैं। ममी क्या बहुत तकलीफ में हैं? बंटी भीतर ही भीतर ममी के दुख से कातर होने लगा। ''ममी, तुम मुझसे गुस्सा हो?'' उसकी आवाज रूआंसी–सी हो गई ममी ने अखबार हटाकर भरपूर नज़रों से उसकी ओर देखा और देखती ही रहीं। बंटी को लगा– ममी की आंखें, ममी का चेहरा जैसे पिघलकर एकदम नरम–नरम हो गया। ''पागल कहीं का! किसने कहा मैं तुझसे नाराज़ हूं?'' और आंखों में वही प्यार उमड़ आया– मां वाला प्यार। बंटी का मन हुआ दूध–टोस्ट रखकर ममी के गले से लिपट जाये, पर वह हिला नहीं। बस, मम्मी की आंखों के उस लाड़ को रोम–रोम मे महसूस करता बैठा रहा। लगा मन पर एक बहुत बड़ा बोझ था, वह उतर गया। ममी फिर अखबर पढ़ने लगीं। धीरे–धीरे उनके चेहरे पर फिर वही उदासी फैल गई। मम्मी उदास होती हैं तो सारा घर कैसा उदास हो जाता है? कमरे, कमरे की हर चीज़। हमेशा बकर–बकर करनेवाली फूफी भी जाने कैसे–कैसे हो जाती है। बंटी बोले तो किससे बोले, करे तो क्या करे? तभी आंखों के सामने मैकेनो का वह डिब्बा घूम गया। नहीं, अभी बिल्कुल नहीं। ममी ने हीरालाल को बुलाकर कहा, ''हीरालाल, आज हम कालेज नहीं आ पाएंगे। मिसेज कौशिक से कहना ज़रा देख लेंगी।'' ''जी, बहुत अच्छा

सरकार।'' हीरालाल ने सलाम ठोंका और चला गया। ममी को तैयार होता देख बंटी ने पूछा, ''ममी, तुम कहां जा रही हो?'' एक क्षण को बिन्दी लगाता हुआ ममी का हाथ जहां का तहां रूक गया। माथे पर बल पड़े, चेहरे पर एक अजीब–सी उलझन आई। फिर धीरे–से बोलीं, ''ज़रा काम से बाहर जाना है।'' पापा ने दस बजे ममी को पहुंचने के लिये कहा था। पर कहां? ममी पापा के पास जा रही हैं तो उसे क्यों नहीं ले जा रहीं? पूछ ले। ''तूम पापा के पास जा रही हो, ममी?'' ममी फिर एक क्षण को रूकीं। फिर थोड़ी सख्त आवाज में कहा, ''कहा न, काम से जा रही हूं।'' हूँऽ न ले जाना चाहती हैं तो न ले जायें, झूठ क्यों बोलती हैं? कल उसके सामने ही तो पापा ने कहा था कि दस बजे पहुंच जाना। मत बताओ, मेरा क्या जाता है। सवेरे मन में जो एक अपराध–बोध था, भय था, वह धीरे–धीरे गुस्से में बदलने लगा। अच्छा है कोई कुछ मत बताओ। मेरा क्या जाता है। मैं भी अपनी कोई बात नहीं बताऊंगा। इम्तहान होगा तो यह भी नहीं बताऊंगा कि कैसा करके आया हूं। तब पता लगेगा। फूफी से बात करके ममी चली गईं। बंटी ने मुड़कर देखा भी नहीं। ममी के पास भी नहीं गया। हालांकि मन में बराबर उम्मीद थी कि जाते–जाते एक बार ममी ज़रूर बुलाएंगी..... कुछ कहेंगी। पर ममी चली गईं। दूर होती घोड़े के घुंघरूओं की आवाज़ से ही बंटी ने जाना कि ममी का तांगा चला गया। फनफनाता हुआ वह फूफी के पास गया– ''फूफी बताओ तो ममी कहां गई है?'' ''गई हैं भाड़ झोंकने!'' बंटी अवाक्–सा मुंह देखता रह गया। ''क्या बक रही है?'' ''हम कहते हैं, तुम यहां से चले जाओ बंटी भैया। हमारे तन–बदन में आग लगी हुई है इस बखत। बहू को ले जाकर थाना–कचहरी में खड़ा करेंगे। मर्दानगी दिखाएंगे। अरे हाथ पकड़कर निभाने की मर्दानगी जिनमें नहीं होती, वह ऐसे ही मर्दानगी दिखाते हैं। अनबन किसमें नहीं होती, तो क्या ब्याही औरत को यों छोड़ दिया जाता है?'' ''तब से तुम बकर–बकर किये जा रही हो। बताती क्यों नहीं कि ममी कहां गई हैं?'' ''हमें नहीं मालूम कहां गई हैं? पूछ लिया होता न अभी! तुम हमारे सामने से चले क्यों नहीं जाते हो? नहीं? हम चार बात अभी तुम्हें भी सुना देंगे, समझे!'' ''हैं सुना देंगे! बड़ी आई है सुनानेवाली! कोई मत बताओ मुझे कि क्या बात है।'' गुस्से से भन्नाता हुआ बंटी कमरे में आया। ब्याही औरत छोड़ने की बात का अर्थ तो फिर भी उसकी समझ में आया गया था, पर थाना–कचहरी की क्या बात है? एकाएक चाचा की कुछ बातें मन में उभरीं। यह सब चाचा का चलाया हुआ चक्कर है। वकील हैं तो यही सब करेंगे। थाना–कचहरी में ममी को पुलिस ने ही रख लिया तो? एक अजीब–सी दहशत उसके मन में भरने लगी। सब–कुछ जान लेने की आतुरता और कुछ भी न जान पा सकने की विवशता से बंटी को रोना आ गया। मैं भी पापा के खिलौने से खेलूंगा, जरूर खेलूंगा। जिसको गुस्सा होना हो, होये गुस्सा। बंटी ने सोफे के पीछे से सब चीज़ें निकालीं और मैकेनो का डिब्बा खोलकर बैठ गया। अच्छा है ममी आकर देखें। ''चलकर नाश्ता कर लो।'' लो, अब ये फूफी भी रोकर आई हैं। अच्छा है, सब रोओ, खूब रोओ। पर उसे कुछ मत बताना। वह होता ही कौन है किसी का? मेज पर दूध–दलिया और एक सेब कटा हुआ रखा था। देखते ही बंटी फिर भभक उठा– ''फिर वही दूध–दलिया। मैं नहीं खाता रोज–रोज सड़ा दलिया।'' और गुस्से में आकर बंटी ने दूध–दलिये की कटोरी उछाल दी। झन्नऽऽ की आवाज़ कमरे में गूंजती हुई सारे घर में फैल गई। अजीबो–गरीब किस्म के नक्शे बनाता हुआ दलिया सारे कमरे में यहां से वहां तक बिखर गया। पूरी तरह तैयार होने के बावजूद, एक क्षण को बंटी जैसे अपने किये पर सहम गया। ''फेंको, खूब फेंको, सारी चीज़ें उठाकर फेंक दो। आखिर तुम किसी से कम हो? यह तो एक बहूजी हैं जो तुम्हारे पीछे जान हलकान किये रहती हैं। नही ंतो....'' ''चोऽप कर!'' बंटी पूरी ताकत लगाकर चीखा। ''चुप करे वह जिसके जीभ नहीं है। आने दो ममी को , यों का यों पड़ा रहने दूंगी यह सारा दलिया। देखें तो तुम्हारे कारनामे। अभी से तुम्हारा यह हाल है तो बड़े होकर पता नहीं क्या सुख दोगे अपनी महतारी को!'' बंटी ने अपनी बन्दूक उठाई और फूफी को यों ही बकता छोड़कर बगीचे में आकर दनादन दागने लगा....ठांऽय.....ठांऽय.....

पेड़ों पर बैठे कौवे और चिड़िया उड़ गये और चारों ओर कुछ भी समझ में न आनेवाली आवाज़ों का शोर फैल गया। कमरे के एक कोने में ममी खड़ी हैं, दूसरी ओर फूफी और बंटी। बीच में दलिया फैला पड़ा है। एक ओर को कटोरी लुढ़की पड़ी है। ''बंटी!'' बंटी चुप। जमीन में आंखें गड़ाये, पत्थर की तरह खड़ा है। हुआ वह भी ममी के गले में बांहें डालकर खूब प्यार करे। अब ममी ज़रूर उसे अपने पास लिटाएंगी और सारी बातें बताएंगी। जो बच्चा माथे में गर्मी चढ़ जाने पर अपने हाथ से शिकंजी बनाकर ला सकता है यह ममी की और बात नहीं समझ सकता? पर ममी ने इतना ही कहा, '' जो भी तुझे पसन्द हो, फूफी से कहकर बनवा ले और खा ले बेटा, मैं थोड़ा सोऊंगी।'' ममी लेट गईं और बंटी वहीं खड़ा रह गया– अपमानित–सा, उपेक्षित–सा। ममी उसे बताती क्यों नहीं कि क्या हुआ है?

दोपहर में बारिश हुई थी और नहाया–धोया लॉन बड़ा ताज़ा–ताज़ा लग रहा था। आज क्यारियों को सींचने की जरूरत नहीं है। बंटी माली के साथ–साथ पौधों के पास उग आई घास को उखाड़–उखाड़कर फेंक रहा है। लॉन के एक सिरे पर बैठी ममी को रह–रहकर देख लेता है। जब से ममी जागी है, वह उन्हीं के इर्द–गिर्द घूम रहा है। इस उम्मीद में कि शायद ममी कभी उसे बुला ही लें या कि शायद उन्हें कभी उसकी ज़रूरत ही पड़ जाये। वह आज टीटू के यहां भी नहीं गया, न टीटू को ही यहां बुलाया। होगी टीटू समझदार, पर क्या वह यह समझ सकता है कि आज का दिन हल्ला–गुल्ला करनेवाला नहीं है। यह तो केवल बंटी ही समझता है कि उसके घर में कुछ बड़ी बात है। ममी बहुत उदास हैं, इसलिये उसे भी उदास रहना चाहिये। आज क्या खेल–कूद हो सकता है यहां?

घास उखाड़ते–उखाड़ते वे दोनों ममी के पास आ पहुंचे। उसी कोने में बंटी ने कुछ दिनों पहले आम की गुठलियां बोई थीं, जो अब एक–दो बारिश के बाद छोटे से पौधे के रूप में फूट आई थीं। बंटी रोज उन्हें देखता और प्रसन्न होता। आज उनमें और दो–चार नई पत्तियां फूटी हुई थीं। बंटी ने बड़े दुलार से तांबई रंग की उन कोपलों का छुआ–नरम–नरम, मुलायम–मुलायम। फिर सारी पत्तियों को गिना।

''माली दादा, अच्छा बताओ तो कितने दिनों में वह पौधा पेड़ बन जाएगा, बड़ा पेड़ जिसमें आम लगने लगें?'' माली ने अपना झुर्रियोंवाला चेहरा ऊपर को उठाया, फिर अपनी गिजगिजी–सी आंखों को मिचमिचाते हुए बोला, ''हमारे बंटी भैया बच्चे तो उनका पौधा भी बच्चा। बंटी भैया जब जवान होंगे तो पौधा पेड़ हो जाएगा। फिर बंटी भैया का ब्याह होगा, बहुरिया आएगी, बाल–बच्चे होंगे तो पेड़ में भी बौर फूटेगा, कोयल कूकेगी, आम लटकेंगे। बंटी भैया के ब्याह में इसी आम की बन्दनवार बांधूगा। समझे!'' फिर ममी की ओर देखकर बोला, ''सुन रही हैं बहूजी, बहुत बड़ी बख्शीश लूंगा बंटी भैया के ब्याह में। आशीर्वाद दीजिये कि आपका यह बूढ़ा माली जिन्दा रह जाये तब तक।'' ''धत्, बेकार की बातें करते हो।'' बंटी झेंप गया, फिर उसने छिपी नज़रों से ममी की ओर देखा। एक बड़ी फीकी पर मोहक–सी मुस्कान ममी के चेहरे पर लिपटी हुई थी। तो क्या माली की बात से ममी खुश हुई? ''बताओ न, कब होगा यह पेड़?'' ''बताया तो, अब तुम नहीं मानते तो बहूजी से पूछ लो।'' आखिर क्यारी साफ़ करके माली हाथ झाड़कर खड़ा हो गया, ''आप ही बताओ बहूजी, आम का पौधा बंटी भैया के साथ ही जवान नहीं होगा? मैं क्या झूठ कहता हूं?''

''तुम बताओ ममी!'' और वह ममी की कुर्सी के हत्थे पर जा बैठा। यह बात ही शायद ममी और उसके बीच सेतु बन जाये। वह ममी से बोलना चाहता है, कुछ भी, किसी भी विषय पर, ममी जो भी कहें, वह सुनेगा, पर ममी कहें तो। ''आम के पेड़ को बहुत साल लगते हैं बेटे, शायद दस साल।'' ''बाऽप रे, दस साल!'' बहुत ही जल्दी दूसरी बात नहीं पूछेगा तो ममी चुप हो जाएंगी और उसे जैसे कोई बात ही समझ में नहीं आ रही है। बिना जरूरत के तो सैंकड़ों बात दिमाग में आएंगी और इस समय.....

''अच्छा मम्मी, कुछ–कुछ कहानियों में ऐसे पेड़ होते हैं न, जिनमें चांदी की पत्तियां होती हैं, सोने के फल और फलों के अन्दर मोतियों के दाने निकलते हैं। ऐसे पेड़ हम नहीं उगा सकते?'' ''नहीं रे, वे सब तो कहानियों की बाते होती हैं।'' ''पर अगर ऐसा होता नहीं है तो कहानी में कैसे आ जाता है? कहानी तो आदमी ही बनाता है, जिस चीज़ को आदमी ने कभी देखा ही नहीं, वह बात उसके दिमाग में आती ही कैसे है फिर? जरूर कभी ऐसा रहा होगा.....''

पता नहीं बंटी ने ऐसा क्या कह दिया कि ममी एकटक उसका चेहरा देखने लगीं और छलछलाई आंखों ने उनके चेहरे की उदासी को और गहरा दिया। ''ऐसा नहीं होता, मैंने कुछ गलत कहा है ममी?'' बंटी ने इस तरह कहा जैसे कोई अपराध हो गया हो उससे। ''जोड़ने के प्रयत्न में बंटी का अपना मन जैसे कहीं से बिखरता जा रहा है। रात का हाथ–मुंह धोकर, नाइट–सूट पहनकर, बिना एक बार भी 'नहीं' किये दूध पीकर एकदम राजा बेटा बना हुआ वह ममी के पास आया। लेकिन ममी ने फिर भी उसे अपने पास सोने के लिये नहीं कहा। थोड़ी देर वह इस प्रतीक्षा में खड़ा रहा, फिर बिना कहे ही वह ममी के पलंग पर बगल में लेट गया। मन हुआ ममी के दिल में न सख्ती है न नरमी। जैसे कोई बटन दबा दिया हो और राज़ निकल गई।

बंटी टस से मस नहीं हुआ। जहां का तहां पत्थर का बना खड़ा रहा। उसने एक बार आंख तक उठाकर नहीं देखा। जमीन पर नज़रे टिकाये–टिकाये ही उसने देख लिया कि ममी चलकर उसके पास आ रही है। शनांश को वह सकपका गया। आते ही एक चांटा नहीं जड़ दें। ठीक है, खा लेगा वह चांटा भी, मारें तो सही। यहां कुछ भी हो सकता है। हमेशा ममी के गुस्से से या डांट से बचानेवाली फूफी बकर–बकर करके शिकायत कर सकती है तो ममी भी मार सकती हैं। ''बंटी!'' बंटी फिर भी चुप। ''तू सुन नहीं रहा बेटा मैं क्या कह रही हूं?'' और ममी का हाथ बंटी की पीठ सहलाने लगा। इस अप्रत्याशित स्नेह के लिये तो बंटी बिल्कुल तैयार नहीं था। पर बंटी तो जैसे एकाएक पिघल गया! इतनी देर का गुस्सा, खीझ, दुःख और भी न जाने क्या–क्या जमा हुआ था मन में, सब आंखों के रास्ते बह निकलने को अकुलाने को था।

''रोज़–रोज़ दलिया बनाकर रख देती है, हमसे नहीं खाया जाता। सवेरे–से गन्दी–गन्दी बातें बक रही है। तुम इसे कुछ नहीं कहतीं। पूछो तो इससे क्या–क्या कह रही थी– ''और बंटी का गला भिंच गया। ममी ने जैसे ही बड़े प्यार से उसे अपने से सटाया कि बंटी एकदम फूट पड़ा। फिर रोता ही रहा। रोते–रोते जैसे हिचकियां बंध गईं। ''जब कल इसने कह दिया था कि दलिया अब इसे अच्छा नहीं लगता। तुमने आज फिर क्यों दलिया बनाया फूफी? तुम इसका इतना भी खयाल नहीं रखतीं?'' ''मत इतना सिर चढ़ाओ बहूजी, हम अभी से कहे देते हैं, नहीं फिर आप ही होंगी?'' ''तुम गई हो तब से ऐसी ही गन्दी–गन्दी बातें कर रही है। और भी बहुत गन्दी–गन्दी बातें।''

मम्मी ने उसके आंसू पोंछे तो आने के बाद पहली बार उसने भरपूर नज़र से ममी को देखा। और उसकी रोई–रोई आंखें ममी के चेहरे पर कैसे चिपक गई? तभी ख्याल आया ममी थाना–कचहरी से लौटी हैं। वहां ममी के साथ क्या हुआ? और खराब काम करने पर भी प्यार करनेवाली ममी के लिए उसके अपने मन में ढेर सारा प्यार भर गया। लगता है ममी बहुत परेशान हैं, शायद दुखी भी। ममी बाथरूम में गई तो वह कमरे में आ गया। पलंग पर फैला हुआ मैकेनो उसने जल्दी से समेटा और सोफे के पीछे छिपा दिया। अब वह ममी को बिल्कुल भी दुखी नहीं करेगा।

मम्मी शायद सिर में भी पानी डालकर आई हैं। उन्होंने जूड़ा खोला और गीले बालों की एक ढीली–सी चोटी बना ली। बंटी छिपी–छिपी नज़रों से देख रहा है, उनका चेहरा, उनके हाव–भाव, उनका हर काम, और अपने हिसाब से सब कुछ समझने की कोशिश कर रहा है।

''बाहर गर्मी बहुत तेज़ थी, माथे में जैसे गर्मी चढ़ गई।'' ममी ने कहा और पलंग पर सीधे लेटकर बांह आंखों पर रख ली। ममी का आधे से ज्यादा चेहरा ढक गया। ममी शायद नहीं चाहतीं कि बंटी उनका चेहरा देखे। कल से ही तो कितनी उदास हैं ममी! और ममी की उदासी से बंटी खुद भीतर ही भीतर कहीं बड़ा उदास और दुखी हो आया है। क्या करे ममी के लिये वह? सारे घर में एक चक्कर लगा आया। पर कुछ भी तो समझ में नहीं आया। लौटकर फिर कमरे में आया। ममी वैसे ही लेटी हैं। दबे पांव उसने सोफे के पीछे से पापा का दिया सामान निकाला और धीरे–से अलमारी खोलकर उसमें बंद कर दिया। अब? एकाएक ख्याल आया ममी के लिए शिकंजी बनाकर ले आये। वह दौड़ा–दौड़ा गया। नहीं, फूफी से वह बिल्कुल बात नहीं करेगा। उस पर सवेरे से भूत चढ़ा हुआ है। अपने हाथ से शिकंजी बना लेगा। जाने कैसी फुर्ती आ गई है उसके हाथों में। स्टूल पर चढ़कर चीनी उतारी, नींबू काटा, थर्मस में से बरफ़ निकाली। फूफी कैसे देख रही है उसकी तरफ़! बोले तो सही अब कुछ। ''ममी!'' सारी मिठास घोलकर उसने धीरे–से पुकारा। ममी चुप। क्यों सो गई? नहीं शायद रो रही हैं। वह गौर से देखने लगा कहीं से बदन थिरक रहा है। पर नहीं, ममी एकदम निस्पन्द लेटी थीं। ''ममी, यह शिकंजी लो। मैं बनाकर लाया हूं।'' और उसने एक हाथ से खींचकर उनका हाथ हटा दिया। बन्द आंखें और ऐसा कातर चेहरा कि बंटी भीतर तक पिघल गया। क्या हो गया ममी को? ''ममी, शिकंजी पिओ न!'' बड़े अनुरोध–भरे स्वर में उसने कहा, पर अन्त तक आते–आते उसका अपना स्वर जैसे बिखर गया। ममी उठीं। उसके हाथ से गिलास लेकर बोलीं, ''तू बनाकर लाया है शिकंजी, ममी के लिये? मेरा राजा बेटा!'' और बंटी को इस तरह एकटक देखने लगीं कि उनकी आंखों में पानी छलछल आया। उन्होंने एक घूंट में गिलास खाली करके नीचे सरका दिया और बंटी को अपने पास खींचकर दोनों गालों पर एक–एक किस्सू दिया। बंटी जैसे निहाल हो गया। मन करते नहीं बन रहा था। बस, सवेरे से वह टुकुर–टुकुर ममी को देखता रहा है और प्रतीक्षा करता रहा है कि अब कुछ हो, अब कुछ हो। होना क्या था, यह शायद उसे भी नहीं मालूम था। पर फिर भी जैसे 'कुछ होने' की उसने हर क्षण प्रतीक्षा ज़रूर की है। ''–बंटी!'' एकाएक ममी ने उसकी ओर करवट करके बहुत धीमी आवाज में कहा और अनायास ही उनकी उंगलियां उसके बालों को सहलाने लगीं। ''हां, मां!'' बहुत लाड़ में आकर वह ममी को मां ही कहता है, एक बार ममी ने कहा भी था, तेरा 'मां'' कहना मुझे बहुत प्यारा लगता है। ''कल पापा के साथ क्या–क्या किया बेटा?'' एक क्षण को बंटी समझ नहीं पाया कि कल की बात में से कौन–सी बात बतानी चाहिये और कौन–सी नहीं। ''कुछ नहीं, पहले पापा बातें करते रहे, फिर घुमाने ले गये, खिलाया–पिलाया, चीजें, दिलवाईं और बस।'' बात से भी ज्यादा स्वर और लहजे को सहज बनाकर बंटी ममी को यह विश्वास दिला देना चाहता है कि कल कुछ ऐसा नहीं हुआ जिससे ममी नाराज हों या दुखी। ''जब बाहर से लौटकर वापस आये और देखा कि चपरासी वापस चला गया है तो मैंने पापा से कह दिया कि मैं यहां बिल्कुल नहीं रहूंगा, घर ही जांउगा ममी के पास। रात में मैं ममी के बिना रह नही सकता।'' और इतना कहकर बंटी ने बाह ममी के गले में डाल दी। ''क्या–क्या बातें करते रहे तुमसे?'' ''बहुत सारी। पढ़ाई की, खेल–कुद की, दोस्तों की, कलकत्ता की।'' फिर एकाएक जैसे कुछ याद आ गया हो, इस तरह बोला, ''पता है ममी, पापा क्या कह रहे थे?'' और वह एकदम कोहनियों के बल उठ आया। ''क्या?'' ''कह रहे थे तुम इस बार छुट्टियों में कलकत्ता आना। खूब घुमाएंगे–फिराएंगे, छुट्टियों खतम होने पर फिर वापस छोड़ जाएंगे।'' इस वाक्य से ही ममी की जड़ता एकाएक जैसे टूट गई। अपने चेहरे पर गड़ी हुई नज़रों के तीखेपन को बंटी ने भीतर तक महसूस किया। अब इस बात से वह सचमुच ममी को जीत लेगा, उनकी सारी नाराज़गी दूर कर देगा, ममी पहले ही पूछतीं तो वह सब बता देता। बिना कुछ जाने–पूछे बेकार ही सवेरे से नाराज़–नाराज घूम रही हैं। अब जानें सारी बात और देखें उसकी समझदारी। ''फिर तूने क्या कहा?'' ''मैं क्या कहता, मना कर दिया। कह दिया कि मैं तो ममी के बिना कहीं जाता ही

नहीं। ''बंटी एकाएक उत्साह में आ गया। अब तो ममी जान लें कि पापा के बुलाने से उनके पास हो आया तो क्या, यह बेटा तो ममी का ही है। ''अच्छा किया।'' ममी का स्वर भीगा हुआ और आवाज़ रूंधी हुई थी। ''मैं क्यों जाउंगा, अकेला तो मैं कभी जा ही नहीं सकता।'' ''बंटी बेटा, तू मेरे ही पास रहना।'' और उसके बाल सहलाती हुई ममी फिर जैसे अपने में ही खो गईं। तो ममी को यह डर है कि पापा उसे अपने साथ ले जाएंगे। इसीलिए शायद सवेरे से ही नाराज़ थीं। पर पापा उसे क्यों ले जाएंगे भला? वह तो शुरू से ही ममी के पास रहा है। कैसी लड़ाई है यह, ममी–पापा की?

तभी मन में एक बात टकराई। याद आया एक बार उसकी और टीटू की लड़ाई हो गई थी, धुआंधार, घूंसे, मुक्के, मार–पीट, सभी कुछ हुआ था। फूफी ने बीच–बचाव करके टीटू को उसके घर भेज दिया था वह रोता हुआ चला गया था और थोड़ी देर बाद ही शन्नो आई थी––बंटी, टीटू की सारी चीजें, दे दो, वह अब तुमसे कभी नहीं बोलेगा। पक्की कुट्टी कर ली है उसने।' कर ली है तो कर ले। हमारी भी पक्की कुट्टी है। उससे कहो, पहले हमारी चीज़ें दे जाएगा, फिर अपनी ले जाएगा। हमें नहीं चाहिये, सड़ी–सड़ी चीजें। हुँ–घमण्डी, कटखना कहीं का– और फिर दोनों ने अपनी–अपनी चीज़ें वापस ले ली थीं और दूसरे की लौटा दी थीं। घंटे–भर के भीतर–भीतर सारे हिसाब–किताब साफ कर लिये थे। लड़ाई में शायद ऐसा ही होता है। पर वह भी किसी की चीज़ है क्या ? है तो किसकी? ममी की या पापा की? नहीं, वह ममी का है, ममी के ही तो पास रहता है। पापा उसे प्यार करते हैं, वह भी पापा को प्यार करता है, पापा उसे अच्छे भी लगते हैं। पर पापा उसे लेना क्यों चाहतें हैं? लेकिन पापा लड़े तो नहीं, उसने मना किया कि मैं वहां नहीं रहूंगा, घर जाउंगा तो चुपचाप यहां छोड़ गये। यहां तो दोनों बिलकुल नहीं लड़े।

ममी–पापा की लड़ाई शायद ऐसी ही होती होगी, चुपचापवाली। कहीं ऐसा तो नहीं है कि सवेरे पापा ने ममी को बुलाकर कुछ–कहा हो, और इसीलिये ममी इतनी उदास हों। उसने एक बार ममी को देखा फिर हिम्मत करके पूछा, ''ममी, आज सवेरे तुम पापा के पास गई थीं। वहां क्या हुआ?'' ''अब होने को बाकी ही क्या रह गया था? बस, अब से तू मेरा बेटा है, केवल मेरा। भूल जा कि तेरे पापा.....'' और ममी का स्वर भिच गया। उनसे फिर कुछ भी बोला नहीं गया। ममी के रूंधे हुये स्वर और अंसुवाई आंखों ने बंटी को भीतर तक दहला दिया पर ममी के प्रति सारे लाड़–प्यार और उनके दुख में दुखी होने के बावजूद एक क्षण को मन में यह बात जरूर आई–पापा को वह कैसे भूलेगा? पापा तो उसे बहुत अच्छे लगते हैं। एकाएक ममी फूट–फूटकर रो पड़ी। तकिए में मुंह गड़ा लिया। सवेरे से जिस आवेग को रोके बैठी थीं, अचानक ही वह जैसे सारे बांध तोड़कर बह निकला। बंटी बुरी तरह सकपका गया। ममी को उसने रोते देखा है, पर उसके सामने कभी रोती नहीं, इस तरह तो कभी रोती ही नहीं। बंटी को कुछ भी समझ में नहीं आया कि वह क्या करें, कैसे ममी को चुप कराये। और जब कुछ भी समझ में नहीं आया तो ममी के गले से लिपट–कर खुद भी फफक–फफककर रो पड़ा। ''मत रोओ ममी–रोओ मत–''

मम्मी का रोना बंटी को एकाएक बड़ा बना गया। बड़ा और समझदार। ममी की पापा से लड़ाई हो गई है, पक्कीवाली! दोस्ती तो अब हो ही नहीं सकती। ममी ने खुद उसे बताया। बिल्कुल ऐसे, जैसे बड़ों को बताया जाता है। साथ ही यह भी कि अब ममी के लिये जो भी है, बंटी ही है। और ममी के एकमात्र सहारे बंटी के ऊपर जैसे हजार–हजार जिम्मेदारियाँ आ गई हैं ममी को प्रसन्न रखने की। हर काम में ममी की मदद करने की। कोई भी ऐसा काम न करने की, जिससे ममी दुखी और परेशान हों। वह सब करेगा, करता भी है। पर बस न चाहते हुये भी पापा की याद उसे आ जाती है। लेकिन नहीं, अब वह उनके दिये हुये खिलौनों से नहीं खेलता। कभी उनकी बात भी नहीं करता। ममी को शायद अच्छा न लगे। रेक पर रखी हुई पापा की एकमात्र तस्वीर को भी उसने एक दिन चुपचाप उठाकर खिलौनों की अलमारी में बंद

कर दिया– ममी से लड़ाई कर ली– तो अब बैठो यहां, और क्या? सारे दिन ममी को उदास रखने वाले रुलानेवाले पापा की यही सजा है, बस! और उसे लगा जैसे ममी की ओर से उसने पापा के खिलाफ एक बहुत बड़ा कदम उठाया है। ममी ने खाली रेक देखा और बंटी को देखने लगीं। एकटक। वह नीचे नज़रें झुकाये खड़ा रहा। पता नहीं नाराज ही न हो जायें। पर ममी ने उसे पकड़कर अपने पास खींच लिया। फिर प्यार किया। बहुत हल्के मुस्कराईं भी, शायद उसकी समझदारी पर। पर न जाने क्यों उनकी आंखें नहीं मुस्करा पाईं। बल्कि उदास हो गईं। बिना आंसू के भी जैसे रोई–रोई हो जाया करती हैं, वैसी ही। तब वह एक क्षण को समझ ही नहीं पाया कि उसने ठीक किया है या गलत। तस्वीर हटने से ममी खुश हैं या उदास। क्योंकि ममी के होंठ तो मुस्कराये पर आंखें उदास हो गईं। कोई बात नहीं, धीरे–धीरे वह इन बातों को भी समझ लेगा। जितनी समझ आ गई है, वही क्या कम है? बाहर निकलकर आम के पौधों को देखता– बस कुल दो नई पत्तियां, कल चार पत्तियां, और लगता वह तो उसके मुकाबले में बहुत–बहुत बड़ा हो गया है। माली दादा कहते थे तुम्हारे साथ–साथ बड़ा होगा। कैसे होगा मेरे साथ–साथ बड़ा? कोई आसान है इतनी जल्दी–जल्दी बड़ा होना, कोई हो सकता है? पापा ने इस बार उसे चिठ्टी लिखने को कहा था। पर उसने नहीं लिखी। लिखना तो खूब अच्छी तरह जानता है, लिख भी सकता है। पापा से कहा भी था।

प्रष्न :

1. 'आपका बंटी' से लिये गये इन अंशों में बच्चे का जो सामाजिक संदर्भ है, उसका विश्लेषण करें।
2. इस उपन्यास के माध्यम से बाल मनोविज्ञान को बड़े ही गहराई से समझा जा सकता है, कैसे?
3. प्रस्तुत उपन्यास से एक बच्चे के विकास एवं शिक्षा के किन–किन तत्त्वों से जोड़ा जा सकता है?

प्रस्तावित कार्य :

1. 'आपका बंटी' कथानक से मिलते–जुलते उपन्यासों का संकलन कर उसका वाचन करें।

3.2

स्वामी और उसके दोस्त

(आर. के. नारायण)

प्रस्तावना :

यह कहानी पूंजीवादी व्यवस्था के मुनाफाखोर संस्कृति पर एक तीखा व्यंग्य (ऑयरनी) है, कहानीकार ने स्वामीनाथन जैसे पात्रों के माध्यम से यह बतलाया है कि किस तरह से मुनाफाखारी की अपसंस्कृति एक बालक के सहज और स्वाभाविक ढंग से सीखने की प्रवृत्ति को रौंदता है और सीखाने वाले (पिता) उसे इस तरह सीखाना चाहते हैं जैसे आम (वस्तुओं) के मुनाफे में ही सबकुछ रखा है जबकि स्वामीनाथन आम के स्वाद (पके अथवा कच्चे) कीमतों का एकमात्र आधार के रूप में पाता है और इस भूलभूलैया में सीखने के सारे बालसुलभ जिज्ञासाओं को हम तिलांजलि दे बैठते हैं। कहानीकार अंततः एक सवाल हमारे सम्मुख छोड़ जाता है कि क्या जो उसके पिता द्वारा जो सवाल का हल किया गया वह वाकई हल था या स्वामीनाथन के दिमाग में और भी कई सवाल छोड़ गया?

.....स्वामीनाथन अपने पिताजी के कमरे में, हाथ में स्लेट और पेन्सिल लिए कुर्सी पर तैयार बैठा था। पिताजी ने गणित की किताब खोली और एक सवाल लिखवाया, ''राम के पास दस आम हैं जिनसे वो पन्द्रह आने कमाना चाहता है। किशन को केवल चार आम चाहिए। किशन को कितने पैसे देने पड़ेंगे?''

स्वामीनाथन सवाल की तरफ घूरने लगा। वो उसे जितनी बार भी पढ़ता, सवाल उसके लिए एक नया ही मतलब ले लेता। उसे ऐसा एहसास हो रहा था जैसे वो एक डरावनी भूल–भुलैयां में फंसता जा रहा हो। आम के बार में सोचकर उसके मुंह में पानी आने लगा। स्वामी सोचने लगा कि राम ने आखिर दस आमों का दाम पन्द्रह आने क्यों तय किया होगा? किस तरह का आदमी था राम? शायद वो उसके दोस्त शंकर जैसा ही होगा। उसके बारे में सुनकर ही ऐसा लगता है कि वो शंकर जैसा ही रहा होगा, अपने दस आम और उनसे पन्द्रह आने कमाने के दृढ संकल्प के साथ। अगर राम, शंकर की तरह था तो किशन बेचारा उसके दूसरे दोस्त की तरह होगा जिसे सब 'मटर' कहकर पुकारते थे। यह सोच स्वामीनाथन में किशन के प्रति जाने क्यों एक दया की भावना उमड़ पड़ी। ''क्या तुमने सवाल हल कर लिया?'' पिताजी ने अखबार के ऊपर से झांकते हुए पूछा। ''पिताजी ने थोड़ी देर उसको गौर से देखा और अपनी मुस्कान दबाते हुए बोले, ''पहले सवाल कर लो। यह मैं तुम्हें बाद में बताउंगा कि फल पके थे या नहीं।'' स्वामीनाथन अब बहुत ही असहाय महसूस कर रहा था। पिताजी केवल यही बता देते कि राम पके हुए फल बेचने की कोशिश कर रहा था या कच्चे वाले। बाद में पता चलने से उसको इस जानकारी से क्या हासिल होगा, भला? उसको पक्का विश्वास हो गया था कि इस मुद्दे में ही सारे फसाद का हल था। दस कच्चे आमों के लिए पन्द्रह आनों की अपेक्षा करना ही सरासर अन्याय था। पर अगर वो ऐसा कर भी रहा था तो यह राम के व्यक्तित्व के काफी अनुकूल लग रहा था, जिसे स्वामीनाथन अब काफी नफरत की दृष्टि से देखने लगा था और दुनिया की सारी बुराइयों से भरा हुआ पा रहा था। ''पिताजी, मैं यह सवाल नहीं कर सकता।'' स्वामीनाथन स्लेट को दूर सरकाते हुए बोला। ''आखिर तुम्हारी समस्या क्या है? क्या तुम सरल अनुपात का एक आसान–सा सवाल भी हल नहीं कर सकते?'' ''हमें स्कूल में इस तरह की चीज़ नहीं सिखाई जाती।'' ''चलो स्लेट इधर लाओ। मैं अब तुमसे ही जवाब निकलवाउंगा।'' स्वामीनाथन उत्सुकता के साथ इस चमत्कार की प्रतीक्षा करने लगा। पिताजी ने सवाल को क्षण भर के लिए निहारा और स्वामीनाथन से पूछा, ''दस आमों का दाम क्या होगा?'' स्वामीनाथन ने सवाल पर फिर से नज़र दौड़ाई, यह पता लगाने के लिए कि सवाल के किस भाग में इस प्रश्न का जवाब छिपा था। ''मुझे नहीं मालूम।'' ''तुम अव्वल नंबर के मूर्ख

मालूम होते हो। सवाल को ध्यान से पढ़ो। चलो, बताओ राम दस आमों के लिए कितने पैसे मांग रहा है।'' 'जाहिर है, पन्द्रह आने' स्वामीनाथन ने सोचा, परन्तु इतना दाम उचित दाम कैसे हो सकता था? राम के लिए तो लालच में आकर इतने की अपेक्षा करना ठीक था। पर क्या यह सही दाम था? और ऊपर से यह बात भी तो अस्पष्ट थी कि आम पके थे या कच्चे। अगर वो पके हुए थे तो पन्द्रह आने अनुचित मूल्य नहीं था। काश, केवल इस विषय पर थोड़ा और प्रकाश पड़ जाता! ''कितने पैसे चाहिए राम को अपने आमों के लिए?'' ''पन्द्रह आने।'' स्वामीनाथन ने बिना आत्मविश्वास धीरे–से जवाब दिया। ''शाबाश! अब बताओ किशन को कितने आम चाहिए?'' ''चार।'' ''चार आमों का दाम क्या होगा?'' लग रहा था कि पिताजी को उसे सताने में काफी मज़ा आ रहा था। पर वह कैसे पता करे कि वो बेवकूफ किशन कितने पैसे देगा? ''देखो लड़के, मेरा मन तो कर रहा है कि तुम्हें पीट दूं। क्या, भूसा भरा है तुम्हारे दिमाग में? दस आमों का दाम अगर पन्द्रह आने है तो एक का दाम क्या होगा? चलो, जल्दी बताओ। अगर नहीं बताओगे तो....'' उन्होंने स्वामीनाथन का कान पकड़ा और उसे हल्के से मरोड़ा। स्वामीनाथन बेचारा तो अपना मुंह इसलिए नहीं खोल पा रहा था क्योंकि उसे इस बात का कतई भी इल्म न था कि सवाल का जवाब आखिर है कहां– जोड़ में, घटा में, गुणा में या फिर भाग में। जितना समय वो हिचकने में लगा रहा था उतना ही उसके कान पर जोर बढ़ता चला जा रहा था। अंत में भौहें ताने हुए पिताजी को जवाब में अपने लड़के से एक सिसकी ही सुनाई दी। ''मैं तुम्हें तब तक नहीं छोड़ूंगा जब तक तुम मुझे यह नहीं बताओगे कि एक आम का दाम क्या होगा, अगर दस का दाम पन्द्रह आने है।'' क्या हुआ है पिताजी को, स्वामीनाथन अपनी आंखें झपकता रहा। आखिर ऐसी जल्दी भी क्या थी दाम पता लगाने की। खैर फिर भी अगर उन्हें इतना ही उतावलापना था तो उसे परेशान करने के बजाय बाजार जाकर पता लगा लेते। दुनिया के सारे राम और किशनों का, आम की बेतुकी संख्याओं और पैसों के भाग के साथ अंतहीन लेन–देन अब काफी वीभत्स हो चला था। पिताजी ने अपनी हार स्वीकार करते हुए ऐलान किया, ''एक आम का दाम है पन्द्रह बटे दस आने। अब इसे हल करो।'' यहां स्वामीनाथन गणित के सबसे पेचीदा खाइयों की तरफ ले जाया जा रहा था– यानी भिन्न संखाओं के आधार पर सोचने के लिए उसे मजबूर किया जा रहा था। ''पिताजी, लाओ मुझे स्लेट दो। मैं अभी पता लगाता हूं।'' उसने दिमाग लगाया और पन्द्रह मिनट पश्चात यह पता लगायाः ''एक आम का दाम है तीन बटा दो आने।'' उसे किसी भी क्षण गलत साबित होने की पूरी संभावना लग रही थी। परन्तु पिताजी बोले, ''बहुत अच्छे। अब इसे और आगे हल करो।'' उसके बाद तो सब कुछ बहुत सहज हो गया। स्वामीनाथन ने एक और कष्टदायक आधा घंटा बिताने के बाद जवाब दियाः ''किशन को छह आने देने पड़ेंगे।'' यह कहते ही वो फूट–फूट के रोने लगा।

प्रष्न :

1. स्वामीनाथन अपने पिताजी द्वारा पूछे गये सवाल के हल के बजाय और कौन से सवालों में उलझ गया। यह बच्चों के किस प्रकार के सोंच को व्यक्त करता है।
2. क्या इस कहानी में प्रछन्न पाठ्यचर्या (Hidden Curriculum) की भी कोई बात है, विचार करें।

प्रस्तावित कार्य :

1. बच्चों से सम्बन्धित आर०के० नाराण की अन्य कहानियों का संकलन करें एवं कक्षा में उस पर चर्चा करें।

इकाई–4 निबंध	
	समग्र प्रस्तावना
4.1	**अकेली यात्रा के देहरी पर/बाल जगत के दहलीज पर** (सच्चिदानंद हीरानंद वात्सयायन 'अज्ञेय')
4.2	**शिक्षकों की वास्तविक सत्ता** (जॉन होल्ट)/**स्त्री की शिक्षा** (महादेवी वर्मा)

समग्र प्रस्तावना

इस अंश में दो निबंध प्रस्तुत किए गए हैं। पहला निबंध शिक्षा की मूल प्रकृति पर केन्द्रित है और आज के शिक्षायी चरित्र की पड़ताल करता है। यह लेख एक अलग तरीके से शिक्षा के वास्तविक उपयोगिता को समझने की कोशिश करता है। वहीं दूसरा लेख शिक्षक के ऊपर है और उससे जुड़े अनछुए पहलुओं की चर्चा करता है। दोनों ही लेखों को इस भाग में इस मंशा के साथ शामिल किया गया है कि प्रशिक्षु निबंध की विधा और उसके माध्यम से शिक्षा के मुद्दों को किस प्रकार से संम्बोधित किया जाता रहा है, इससे परिचित हो सकें।

4.1

अकेली यात्रा के देहरी पर

(सच्चिदानंद हीरानंद वात्सयायन 'अज्ञेय')

प्रस्तावना :

*निबंध "अ**केली यात्रा की देहरी पर**" अज्ञेय द्वारा दिल्ली के इन्द्रप्रस्थ कॉलेज में दिया गया अभिभाषण है। इस निबंध में अज्ञेय शिक्षा तथा जीवन से जुड़े कुछ पहलुओं पर रोशनी डालते हैं। वे नीतिशास्त्र का एक सवाल उठाते हैं कि जीवन के लिए क्या मूल्यवान है। जो कुछ मूल्यवान है उसे सामूहिक चेतना के जरिए समझा जा सकता है या हर किसी को अपने–अपने तरीके से अपने–अपने जीवन से उसे समझना होगा ? निबंध में वे दो घटनाओं का बयान करते हैं। इन घटनाओं के सहारे जीवन के करीब रहने के महत्त्व को रेखांकित करते हैं। इस तरह वे समझाते हैं कि जीवन की भागमभाग तथा भींड़ के बीच अपनी पहचान करना तथा ऐसे पहचान को जीना एक ऐसा मूल्य है जिसकी तलाश में सभी को रहना चाहिए।*

अपने एकांत में उतरना और वहाँ से दुनिया के साथ जुड़ना एक ऐसा मूल्य है जो जीवन की गुणवत्ता का प्रमाण है।

शिक्षा संस्थाओं में आना मुझे अच्छा लगता है। शायद इसलिए कि जीवन के प्रति मेरी जिज्ञासा अभी चुक नहीं गयी है–यानी कि मेरा मूल मनोभाव अब भी एक विद्यार्थी का है। इसलिए आज अपने को आप सब के बीच पाना मेरे लिए सुखद है–और उस सुख के लिए मैं आपका ऋणी हूँ।

पर साथ ही यह भी मुझे कहना होगा कि आज के–से अवसर पर बुलाया जाना मेरे लिए आश्चर्य का भी कारण रहा और पूरा सच कहूँ तो कुछ सम्भ्रम का भी । मुझे क्यों बुलाया गया ? मैंने जिज्ञासा की बात कही ; समाचारपत्रों से रोज यह बात साफ जाहिर हो जाती है कि आज की शिक्षा–संस्थाओं का हमारे जीवन में और जो योग हो, वे ज्ञानोपार्जन का क्षेत्र नहीं रही हैं। बल्कि अब शायद कोई वहाँ ज्ञानोपार्जन के लिए आता भी नहीं : इसके बावजूद कि जो आते हैं उनमें से बहुत–से वास्तव में अपनी ज्ञान–वृद्धि करना चाहते हैं। और शायद यही कारण भी है कि धीरे–धीरे सारे देश में उपाधि–वितरण के समय विद्यार्थियों को सम्बोधन करने का काम राजनीतिकों को इजारे में सौंप दिया गया है। शायद वही एक ऐसा वर्ग देश में है जिसका आज ज्ञानोपार्जन से कोई नाता नही रहा है : जिसका काम अब अपनी जानकारी बढ़ाना न रहकर केवल सफलता के तुरते नुस्खे (या तुरती सफलता के नुस्खे) बाँटते फिरना रह गया है।

मैं जानता हूँ कि सब राजनीतिक नेता ऐसे नही हैं : उनमें से अनेक शिक्षा की और शिक्षा–पद्धति के सुधार की बात भी करते हैं, कभी–कभी ऐसे व्यक्ति भी आमंत्रित होते हैं जिनका क्षेत्र ही शिक्षा की राजनीति है : और वे प्रायः ऐसे अवसरों पर शिक्षा के नये कार्यक्रमों और मौलिक आयोजनों की रूप–रेखाएँ भी प्रस्तुत करते रहते हैं। मेरे लिए हमेशा यह आश्चर्य का विषय रहा है कि जिन लोगों की शिक्षा पूरी हो चुकी है–बल्कि जिन्हें इसी बात का प्रमाण–पत्र बाँटा जानेवाला है–उन्हीं के सामने यह चर्चा करने की क्या संगति है कि शिक्षा कैसी होनी चाहिए– यानी उनके लिए कैसी होना चाहिए थी पर नहीं हुई? या कि क्या ऐसे शिक्षा–राजनीतिज्ञ उनके सामने यह स्वीकार करना चाहते हैं कि उन्हें केवल प्रयोग का साधन बनाया गया था और उस प्रयोग से जो सिद्धान्त प्राप्त हुए उनका लाभ अगली पीढ़ी को दिया जाएगा? या कि शायद यह अवसर ऐसी योजनाओं के लिए इसलिए उपयुक्त समझा जाता है कि एक तरह से 'सुरक्षित'

अवसर है–जिन्हें सम्बोधित किया जा रहा है ये इसलिए उदासीन होंगे कि उनकी शिक्षा हो चुकी, उन्हें नयी योजनाओं से क्या मतलब !

खैर ! मैं राजनीतिक नेता नहीं हूँ; शिक्षाविद् भी नहीं हूँ और शिक्षा की राजनीति से मेरा दूर का भी नाता नहीं रहा है ! मैं साहित्यकार हूँ, इसलिए मेरे पास कोई तुरते नुस्खे नहीं हैं ! और आज का साहित्यकार हूँ, इसलिए आरजी सुझावों को भी कुछ सन्देह और सतर्कता की दृष्टि से देखता हूँ। आपके समक्ष खड़े होने में सम्भ्रम का यही कारण है : मैं आपसे ऐसा क्या कह सकता हूँ जो संदिग्ध न हो, जिसे सतर्कता से ही ग्रहण करना उचित न हो ? इतना ही नहीं; यह बोध भी मुझे है कि आज, जिनका सम्बोधन करने मैं खड़ा हूँ, आज वहाँ हूँ जहाँ मैं साहित्यकार होने के नाते सदैव हूँ–यानी 'अज्ञात जीवन की देहरी पर' । अज्ञात जीवन की देहरी पर, भविष्य की देहरी पर; जहाँ ज्ञात केवल इतना है कि वह अज्ञात भविष्य चुनौती–भरा होगा, और वह चुनौती भी ऐसी जिसे हम अभी स्पष्ट रूपायित नहीं कर सकते–नहीं जानते कि वह किस क्षेत्र से किस रूप में कब उठेगी और सामने आ खड़ी होगी !

शायद मेरे लिए कुछ कहना संगत है तो इस चुनौती के विषय में–या उस स्थिति के विषय में जिसमें हम–आप हैं : अज्ञात की देहरी पर खड़े होने की स्थिति के विषय में।

क्योंकि आपकी शिक्षा तो–जैसी भी वह रही–हो गयी। मानसिक, बौद्धिक, तात्विक, जो भी पाथेय आपको उससे मिलना था, मिल सकता था, मिल गया : वह पूँजी आपकी स्वायत्त है और उसके आपकी होने का प्रमाण–पत्र आपके नाम का तैयार है ! मेरा अनुमान है–और आपमें से अनेकों को ऐसी आशंका होगी–कि वह पूँजी नाकाफ़ी है; वह पाथेय अपर्याप्त है; जो उपकरण आपको मिले हैं उनमें और जो काम आपको करना होगा उसमें कोई समान अनुपात नहीं है। यह अपर्याप्तता और अधूरापन कुछ तो अनिवार्य कारणों से है; कुछ इसलिए कि उसके मूल में राजनीति की असफलता या गैर–जिम्मेदारी है। ऐसा तो नही है कि इस शिक्षा का कोई भी उपयोग नहीं होगा–यों तो निरी साक्षरता भी अपने आप में एक उपलब्धि है जो काम आती ही रहती है!–पर उस शिक्षा की सीमाएँ भी स्पष्ट ही हैं। यों तो आपमें कई सेवा और अधिकार के विभिन्न क्षेत्रों में जाएँगी जिनमें आपकी पायी हुई शिक्षा के कुछ अंश तो उपयोगी होंगे ही पर मेरा अनुमान है–और मैं आशा करता हूँ कि यह अनुमान केवल पुरुष का स्वाभाविक पूर्वाग्रह नहीं है–कि सेवा और अधिकार का जो क्षेत्र आपमें से अधिसंख्य के हिस्से आएगा वह आजीविका का कठिनतम साधन होगा–यानी दाम्पत्य जीवन। और इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं है कि आपको जो शिक्षा मिली है, उसकी इस क्षेत्र के लिए प्रासंगिकता बहुत ही कम है। आधुनिक सभ्यता के रोगों का निदान करते हुए फ्रॉयड ने कहीं कहा था कि उस सभ्यता की देन है पुरुषों के लिए पुरसत्वहीनता और स्त्रियों के लिए हिस्टीरिया : हमारी आधुनिक शिक्षा भी अपने सही सन्दर्भ इस हद तक खो बैठी है कि वह सभ्यता की विकृतियों का निराकरण करने की बजाय उन्हें और बढ़ाती ही है। निःसन्देह फ्रॉयड द्वारा संकेतित समस्या, सम्पूर्ण समस्या का केवल एक पक्ष है : उसका उल्लेख मैंने केवल शिक्षा की अनेक अपर्यापप्तताओं की ओर ध्यान दिलाने के लिए किया। सचाई यह है–और इसकी ओर ध्यान दिलाना इस अवसर के लिए सर्वथा उपयुक्त है–कि आपको जो 'शिक्षित हो चुके होने' का प्रमाण–पत्र दिया जा रहा है, वह केवल असल शिक्षा–क्षेत्र में प्रवेश कर सकने का अनुमति–पत्र है। अबतक आपकी शिक्षा पराधीन रही–दूसरों द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रमों से बँधी रही; अब से आप स्वाधीन शिक्षा–क्षेत्र में रहेंगी और अपने पाठ्यक्रमों से बँधी रही; अब से आप स्वाधीन शिक्षा–क्षेत्र में रहेंगी और अपने पाठ्यक्रम, अध्यापक, परीक्षा–पद्धति, सबका चुनाव आपके अधीन होगा। इतना ही नहीं; वास्तविक परीक्षक भी आपको स्वयं होना होगा।

दूसरे शब्दों में कहूँ कि आपको अबतक जो शिक्षा मिली है उसने एक विशेष अर्थ में आपको अकेला कर दिया है। इसी में उसकी सफलता देखनी होगी और उससे लाभ उठाना होगा। प्रश्न पूछनेवाला हर कोई

अकेला होता है और आपकी शिक्षा ने आपको इस स्थिति में ला दिया है कि प्रश्न पूछना आपके लिए अनिवार्य हो गया है : कदम–कदम पर आपको प्रश्न पूछते चलना होगा।

स्थिति को इस रूप में प्रस्तुत करने से एक प्रश्न इसी में से निकल सकता है; क्या ऐसा जीवन सुखद है जिसमें निरन्तर प्रश्न ही प्रश्न मिलें–हम निरन्तर अपने लिए एक अकेलेपन की सृष्टि करते चलें ? सुखद ही नहीं, क्या ऐसे जीवन का कुछ मूल्य है ? क्या वह 'बर्थ–ह्वाइल' है ? क्या ऐसे प्रश्न बर्थ–ह्वाइल हैं ? क्या यह प्रश्नाकुल अकेलापन भी बर्थ ह्वाइल है ? कोई मूल्य है ? *(बर्थ–ह्वाइल का अर्थ है उपयोगी)*

यों, हम उस प्रश्न के सामने आ जाते हैं जिसे मैं अपनी पूरी शुभाशंसाओं के साथ एक भेंट के रूप में आज आपको देना चाहता हूँ। वह क्या है जो हमारे जीवन को बर्थ–ह्वाइल बनाता है ? क्या है जो जीवन का गुणात्मक मूल्य निर्धारित करता है ? 'अच्छी जिन्दगी बसर करना' हर कोई चाहता है पर 'अच्छी जिन्दगी' क्या होती है ? उसकी अच्छाई की कसौटी क्या है, उसका आधार क्या है ? क्या भौतिक सुविधाओं से हमारी जिन्दगी अच्छी हो जाती है ? क्या मीटर, टीवी सेट, 'फॉरेन मेक' का 'मिक्सी–ब्लैंडर' उसके आधार हैं ? या दूसरे अधिक निजी स्तर पर, चेहरे और त्वचा के प्रसाधन, नकली बालों के खोंपे, नली जैसे तंग या थैली जैसे चौड़े पैंट–पाजामे ? या और एक स्तर पर पालतू विलायती कुत्ते या तोड़–मरोड़ कर बोली गयी हिन्दी या कोई भी मातृभाषा, या हर तीसरे बरस की विदेश यात्रा ? 'कठोपनिषद्' के नचिकेता की तरह मैं इतना हरा प्रश्न नहीं उठाना चाहता कि 'क्या इनसे हमें आत्मज्ञान प्राप्त हो सकता है ?' प्रश्न को मैं मानवीय–और आप चाहें तो कह लें कि लौकिक–मानव–लोकीय–स्तर पर ही रखना चाहता हूँ। यहाँ इस लोक में, इसी जीवन में, क्या है जो हमारे जीने का गुणात्मक मूल्य उसकी 'क्वालिटी' निर्धारित करता है ? या दूसरे शब्दों में हममें क्या है, या हो सकता है जिससे हम अपने इस जीवन की 'क्वालिटी' को उन्नत्तर बना सकें ?

मैं नहीं जानता कि आपको अब तक मिली शिक्षा ने इसका कोई उत्तर सुझाया हैं या नहीं। शायद यह दायित्व उसने अपने ऊपर नहीं ओढ़ा। लेकिन यह आशा मैं जरूर करता हूँ कि उसने आपको इस प्रश्न के साथ सहानुभूति रखना जरूर सिखाया होगा–और सिखाया नही होगा तो कम–से–कम सहानुभूति के लिए असमर्थ तो न बनाया होगा।

आप यह न समझें कि इस प्रश्न का जवाब मैं देने जा रहा हूँ। वैसा करूँगा तो साहित्यकार नहीं रहूँगा–वैसा राजनीतिक हो जाऊँगा जो रेडीमेड जवाबों का परचूनी होता है। मैंने पहले ही कहा कि यह प्रश्न उस क्षेत्र का है जहाँ व्यक्ति अकेला होता है : इसलिए उत्तर प्रत्येक अपने लिए अपने जीवन से पाता है या पा सकता है।

मैं दो–एक घटनाएँ आपके सम्मुख रखता हूँ जिनमें दूसरों के ऐसे अकेले साक्षात्कार ध्वनित होते हैं। हो सकता है कि इससे आपको अपने–अपने पथ निर्धारित करने में कुछ सहायता मिले।

पुरानी बात है : पहाड़ों में घूमते हुए मैं एक झोंपड़े में गया था जहाँ एक गिरिजातीय बुढ़िया अस्वस्थ्य पड़ी थी। ग्रन्थिवात से उसके अंग विकृत हो गये थे : उठना या करवट लेना भी उसके लिए अत्यन्त कष्टकर था पर वह काम कर रही थी, और निरन्तर करती थी ! मैंने–सहानुभूतिवश–उससे एक मूर्खता भरा प्रश्न पूछा : ''माई, क्या बहुत तकलीफ है?'' उसने कहा, ''बेटा दर्द तो बहुत रहता है ! पर तकलीफ–वह तो मन की चीज है, जितना मान लो उतनी होती है !'' मैं थोड़ी देर उसे एकटक देखता रहा, फिर मन–ही–मन प्रणाम कर चला आया, बांकी बात प्रासंगिक नहीं है।

दूसरी घटना : यह अभी कुछ महीने पहले की है ! मैं कुछ दिन के लिए जापान गया था। एक सम्मेलन के भीड़–भरे कार्यक्रम के बाद मैंने मन को धोने के लिए एक जापानी बन्धु के साथ एक झरनों–भरे वन–प्रदेश

की यात्रा कर रहा था–दिनभर की यात्रा ! घूमते–घूमते मैं बार–बार दृश्य में खो जाता था, फिर चौंककर शिष्टाचार का तकाजा याद करता था–कि बन्धु को साथ रखना चाहिए। शिष्टाचार में जापानी भी भारतीयों से कम नहीं हाते, इसलिए मेरे साथ भी बार–बार थोड़ा पिछड़ जाते थे कि मेरे एकान्त वन–सेवन में उनकी उपस्थिति के कारण कोई बाधा न हो ! इतना ही होता, तो यह घटना लखनऊ की 'किबला, पहले आप, किबला, पहले आप' वाली मनोरंजक स्थिति की आवृत्ति होती। लेकिन एक बार मैंने अचानक मुड़कर देखा, मेरे साथी भी केवल शिष्टाचारवश पीछे नहीं थे : उनके चेहरे का भाव स्पष्ट बता रहा था कि वह भी वनान्त की शोभा के साथ सम्पूर्ण तादात्म्य की अवस्था में है ! उनकी संयत, समाहित मुद्रा, सधा हुआ विनत शरीर, नियन्त्रित, प्रायः शब्दहीन पदचाप (और यह इसके बावजूद कि शिशिर ऋतु में पगडंडियाँ झरे सुनहले पत्तों से पटी हुई थीं और हर पग पर उस बिछे सोने का बज उठना स्वाभाविक होता !) सब इंगित कर रहे थे कि वह भी एक आनन्द में खोये हैं, लेकिन ऐसे कि मेरे समान्तर आनन्द–लाभ में कोई बाधा न पहुँचे !

इन दो छोटी–छोटी घटनाओं का यहाँ साथ उल्लेख मैं खास मतलब से कर रहा हूँ। मेरी समझ में दोनों वैसे व्यक्तियों के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जिन्होंने एकान्त साक्षात्कार में ऐसे तत्व को पहचाना जो जीवन को गुणात्मक समृद्धि देता है, जिन्होंने इस प्रकार यह आभ्यन्तर समृद्धि पायी जिसकी सम्भावना मैं आपके सामने रखना चाहता हूँ। उस सम्पन्नता, उस समृद्धि का सम्बन्ध भौतिक साधनों से नहीं था, निरी शिक्षा से भी नहीं था : एक व्यक्ति अत्यंत निर्धन, बल्कि दरिद्र कह लीजिए, और निपट निरक्षर; दूसरा धन न सही, हर साधन–सम्पन्न और सुशिक्षितः दोनों ही ने वह शक्ति देनेवाली आभ्यन्तर–सम्पन्नता पायी थी। वह कहाँ से मिली या मिल सकती है ? जहाँ से भी मिली, वह उन्हीं के भीतर से मिली, उन्हीं में कुछ था जिससे मिली; उसी की पहचान की बात है और वह पहचान अकेले में मिलती है और उस अकेलेपन की देहरी पर आज आप हैं !

पर अकेले में भी वह शक्ति कहाँ से मिलती है ?

मेरे बहुत–से परिचित यहाँ संस्कारों की या सनातन सत्यों की बात करेंगे, जिन्हें वह उत्तर संतोषजनक जान पड़ता है वे उसे स्वीकार करें; मुझे आपत्ति नहीं है। स्वयं मुझे वह अपर्याप्त जान पड़ता है। सनातन सत्यों की बात पर बुद्धि थोड़ा अटकती है। सनातन सत्य भी होते हैं। पर सनातन सत्य की बात करके लोग मान लेते हैं कि उन्होंने सिद्ध कर दिया कि सनातन मूल्य होते हैं । सनातन सत्य मूल्य–निरपेक्ष सत्य होते हैं; इसलिए जैसे प्रश्न या साक्षात्कार की बात मैं कर रहा हूँ वहाँ संगत नहीं रहते। 'जो जन्मा है वह मरेगा'–यह सनातन सत्य है। पर इससे कोई मूल्य–दृष्टि हमें नहीं मिलती कम–से–कम सीधे इस सत्य से नहीं मिलती; अगर या जब मिलती है तो बीच में किसी मूल्य की उद्‌भावना करके ! पर 'स्वधर्म निर्धनं श्रेयः' अगर यह भी 'सनातन सत्य' है तो स्पष्ट है कि यहाँ 'सनातन' का हम एक विशेष अर्थ ले रहे हैं ! बल्कि धर्म का भी एक विशेष अर्थ ले रहे हैं, क्योंकि एक प्रकार का 'धर्म' मूल्य–निरपेक्ष है; उनका सत्य प्रकृत सत्य है; श्रेयःकांक्षी धर्मवान् का धर्म मूल्य–निरपेक्ष नहीं है बल्कि स्वयं मूल्य है; उसका सत्य मानव सत्य है और इसी अर्थ में सनातन है।

और मैं जोर देकर कहना चाहता हूँ कि यह मूल्य मानव का सिरजा हुआ मूल्य है। मानव भी मरणधर्मा है, पर वह इस बात को जानता भी है जबकि दूसरे जीव नहीं जानते; इसलिए वह ऐसे मूल्यों की अवधारणा और सृष्टि कर सकता है जो मरणातीत हैं–अमर हैं! मरणशील मानव निरन्तर 'अमर' मूल्यों की सृष्टि करता चलता है : ऐसे 'सनातन' मूल्य जिनके लिए प्राण भी देने पड़े तो इसे वह अपनी पराजय नहीं, अपनी विजय मानता है! स्पष्ट ही एक विरोधाभास यहाँ पर है : हमारा जीना उन चीजों से सार्थक, मूल्यवान 'वर्थ–ह्वाइल' है जिनके लिए हम मर जाने को तैयार है ! लेकिन वे ही मूल्य हैं–वे सनातन मूल्य हैं, इसके बावजूद कि वे समय–समय पर या देश–देश में, समाज–समाज में बदलते रहे हैं! मानव ही मूल्यों का स्रोत और स्रष्टा है।

और मानव–जीवन की अर्थवता की–उसकी अमरता की–पहचान है उस 'कुछ' की पहचान और पकड़ जिसके लिए वह जीवन बलि भी दिया जा सकता है। जितनी और जैसी सही और मजबूत यह पहचान हममें होती है, उतना ही हमारा जीवन समृद्ध होता है, चाहे जिस भी अवस्था में हम हों; उतना ही हमारा एकान्त साक्षात्कार भरा–पूरा और हमें सबसे जोड़नेवाला होता है, चाहे कितने ही अकेले हम हों!

उसी यात्रा के समारम्भ बिन्दु पर आज आप हैं। इस यात्रा का लक्ष्य अपनी पहचान है इसलिए वह अपने को ही मुक्त करने का अभियान है। आपकी आज तक की शिक्षा–दीक्षा उसी की तैयारी है। यहाँ यात्रा चुकती नहीं, शुरू होती है! आपको जो प्रमाण–पत्र मिले हैं, वे केवल उस साहस–यात्रा के लिए पारपत्र हैं और यात्रा पर–इतनी अलग–अलग यात्राओं पर आज आपकी प्रत्येक की अगुवाई करता हुआ मैं कहता हूँ : 'शुभास्ते पत्थानः ! '

(इन्द्रप्रस्थ कॉलेज, दिल्ली के उपाधि–वितरण समारोह में अभिभाषण)

प्रश्न अभ्यास

1. प्रस्तुत निबंध में लेखक ने शिक्षा से जुड़े किन सवालों को उठाया है?
2. अपने से साक्षात्कार का क्या अर्थ है तथा शिक्षा के लिए इसके क्या निहितार्थ हैं?
3. जीवन की गुणवत्ता किन बातों पर टिकी होती है? क्या यह शिक्षा के उद्देश्यों में शामिल है? कैसे?

प्रस्तावित कार्य :

1. 'अकेली यात्रा के देहरी पर' निबंध के आधार पर इसी प्रकार के अन्य निबन्धों का संग्रह कर विद्यालय में वाचन करें।
2. शिक्षा से सम्बन्धित अन्य अभिभाषण का संकलन कर अपने स्वाध्याय केन्द्र पर चर्चा करें।

4.2

षिक्षकों की वास्तविक सत्ता

(जॉन होल्ट)

प्रस्तावना :

एक शिक्षक की उसके स्कूल में कितनी हैसियत है और कितनी होनी चाहिए, इन सब पर लगातार विमर्श होते रहे हैं। इसी क्रम में शिक्षक की हैसियत को उसकी सत्ता से भी जोड़कर देखा जाता रहा है और कई सवाल भी खड़े किए जाते रहे हैं। यदि विश्लेषण करें तो शिक्षक की हैसियत और उसकी सत्ता को जिस प्रकार से समझा जाता रहा है, उसकी कई सीमाएं रही हैं। समकालीन सामाजिक परिस्थिति को देखें तो कई बार शिक्षक के कार्य पर इतने अंकुश लगा दिए जाते हैं कि उसकी कोई हैसियत ही नहीं रह पाती है, वहीं दूसरी तरफ, शिक्षक की वृत्ति को महिमामंडित करते हुए कई बार उसपर उन तमाम अपेक्षाओं का भार लाद दिया जाता है, जो वास्तव में आज के शिक्षक के हैसियत के बाहर है। इन दोनों ही परिस्थितियों में शिक्षक के वास्तविक हैसियत को न जानने की कोशिश होती रहती है क्योंकि वह समाज के लिए असहज होगा। जॉन होल्ट द्वारा लिखा गया यह लेख शिक्षक के वास्तविक सत्ता के कुछ असहज पक्षों से परिचय कराता है। साथ ही, यह लेख यह समझ बनाने में भी मदद करता है कि हमारे देश के बाहर शिक्षा को लेकर किस प्रकार के विमर्श चलते रहे हैं।

दी लाइव्स ऑफ चिल्ड्रन में डेनिसन ने दो तरह की सत्ता के बीच महत्वपूर्ण अन्तर स्पष्ट किया है। एक कुदरती सत्ता होती है जो अनुभव, दक्षता, विद्वता, और निष्ठा तथा एक व्यक्ति में दूसरे के प्रति आदर, विश्वास, और प्रेम पर टिकी होती है। जबकि आधिकारिक या ज़ोर–ज़बर्दस्ती पर आधारित सत्ता रिश्वत देने, डराने और दण्डित करने की ताकत पर टिकी होती है। कई लोग यह फर्क नहीं समझ पाते, या यह नहीं देख पाते कि ज़ोर–ज़बर्दस्ती की सत्ता कुदरती सत्ता की पूरक अथवा सहायक नहीं होती बल्कि उसमें सेन्ध लगाती है, उसे नष्ट कर देती है।

ताकत नैतिक अधिकारों और दायित्वों को निरस्त कर देती है। दास का अपने मालिक के प्रति कोई नैतिक दायित्व नहीं होता। उसे पूरा नैतिक अधिकार है कि हर सम्भव तरीके से चाबुक से अपना बचाव करे। यह किसी का नैतिक दायित्व नहीं होता कि दण्ड पाने के लिए स्थिर खड़ा रहे। दस साल की एक स्वाभिमानी, साहसी, दबंग बच्ची ने मुझे यह समझने में मदद दी थी। एक दिन उसने फ्रेंच कक्षा में जाने से इन्कार कर दिया। उसे इस कक्षा से नफरत थी (और ठीक ही थी)। मैं उसे कक्षा में जाने को कहता रहा और वह अपनी डेस्क पर बैठी पढ़ती रही। आखिर मैंने कह दिया कि यह मेरा काम है और मेरा फर्ज़ है कि उसे फ्रेंच कक्षा मे भेजूं और यदि किसी और तरीके से मैं ऐसा न कर पाया तो उसे घसीटकर वहां ले जाऊंगा। वह टस से मस नहीं हुई। मैं उसकी डेस्क की ओर बढ़ा, अपनी धमकी पर अमल करने को। जब मैं करीब तीन फुट दूर था तब उसने अचानक सिर उठाया, किताब को झटके से बन्द करके डेस्क पर पटका और खड़ी हो गई। उसने कहा, ''ठीक है, मैं जा रही हूं! परन्तु मैं सिर्फ *वहशी ताकत* के कारण जा रही हूं, सिर्फ *वहशी ताकत*!'' वह सही थी; यही तो मामला था।

कई वर्षों तक मैं यह किस्सा यह दर्शाने के लिए सुनाया करता था कि यदि लोगों से अपनी मर्ज़ी का काम करवाने के लिए हम ताकत का इस्तेमाल करने को तैयार हैं, और उनके इन्कार या ना–नुकर करने पर उन्हें चोट पहुंचाने को तैयार हैं, तो हमें यह बात खुलेआम कहनी चाहिए। इसे ''विकल्प चुनने की छूट'' कहना नैतिक रूप से घृणास्पद है। कम से कम मैंने उस बच्ची को यह समझाने की कोशिश नहीं की कि

फ्रेंच कक्षा में जाना उसके लिए कितना *अच्छा* होगा, या वहां जाना उसका नैतिक दायित्व है। अब यह ज़्यादा साफ लगता है कि उसका ऐसा *कोई* नैतिक दायित्व नहीं था कि वह स्कूल या मेरा कहा करे। अन्य बच्चों को चोट न पहुंचाना उसका नैतिक दायित्व था, जिन्हें उसे चोट पहुंचाने का कोई नैतिक या कानूनी अधिकार नहीं था। इसी प्रकार से यह उसका नैतिक दायित्व था कि वह हम शिक्षकों को कोई शारीरिक नुकसान न पहुंचाए, क्योंकि (कम से कम उस स्कूल में) हम भी उसके साथ यह नहीं कर सकते थे। परन्तु परस्पर नैतिक दायित्व और अधिकार वहीं से शुरू होते हैं जहां ज़ोर–ज़बर्दस्ती की ताकत खत्म हो जाए।

सी.आई.डी.ओ.सी. में आने वाले जिन छात्रों को लगता है कि इसके नियम–कायदे स्कूलों के बारे में इलिच (और स्वयं मेरे) द्वारा व्यक्त विचारों के खिलाफ हैं, वे कई वर्षों तक ऐसे स्कूलों में पढ़े हैं जहां छात्रों के रूप में शिक्षकों के प्रति उनके दायित्व असीमित थे जबकि शिक्षकों का उनके प्रति कोई दायित्व नहीं था। एडगर फ्राइडेनबर्ग ने इसके बारे में कई बार और काफी अच्छा लिखा है। छात्र हर चीज़ के लिए स्कूल का ऋणी होता है और यदि वह ठीक से काम न करे तो उसे दण्डित किया जा सकता है; दूसरी ओर स्कूल और शिक्षकों का छात्र के प्रति कोई कर्तव्य नहीं होता। इसी बात को किसी और ने यों कहा है, ''छात्र खराब हो तो दण्ड बहुत कठोर है, मगर शिक्षक बुरा हो तो कोई दण्ड नहीं है।'' छात्र इस व्यवस्था को नामंजूर करते हैं तो सही ही करते हैं। मगर कई बार वे इसकी जगह उलटी व्यवस्था रखना चाहते हैं जिसमें छात्र के प्रति शिक्षक के असीमित दायित्व हों, मगर छात्रों का कोई दायित्व न हो। कई सारे मुक्त स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों वगैरह के पीछे यही विचार था। शिक्षक को सदा उपलब्ध रहना चाहिए, और हमदर्दी व समझदारी के साथ छात्रों की सारी ज़रूरतों का जवाब देना चाहिए। मगर वह उनसे कोई मांग नहीं कर सकता। उनकी जरूरतें मायने रखती हैं, उसकी नहीं। छात्रों का कक्षा में आना ज़रूरी नहीं है, मगर यदि वे आ जाएं तो शिक्षक को कक्षा में होना ही चाहिए। छात्रों को कोई किताब पढ़ना ज़रूरी नहीं है, मगर यदि वे किसी किताब पर चर्चा करना चाहें, तो शिक्षक द्वारा वह किताब पढ़ी होनी चाहिए और यदि न पढ़ी हो तो फौरन पढ़ लेनी चाहिए छात्रों को पूरा अधिकार है कि कोई भी चर्चा रोचक न लगने पर वे उठकर चले जाएं या उससे खारिज कर दें, मगर शिक्षक को ऐसा कोई अधिकार नहीं है।

जब मैं पहली बार सी.आई.डी.ओ.सी. जाकर इलिच से मिला था तब मेरे दिमाग मे कुछ ऐसे ही विचार थे। इससे पहले की हमारी बातचीत में मुझे यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ था कि उन्होंने काफी सशक्त ढंग से तथाकथित अनौपचारिक शिक्षण का विरोध करते हुए पुरानी शैली के स्कूल मास्टर की हिमायत की थी। आगे चलकर एक बार फिर मैं चकित रह गया था जब उन्होंने भावुक होकर मुक्त स्कूलों के खिलाफ दलीलें दीं। सबसे चकराने वाली बात तो उनका यह डर था कि जिसे लोग स्कूलमुक्त समाज करने लगे हैं वह शायद एक ऐसे समाज को जन्म देगा जो स्वयं एक सार्वभौमिक या सतत् स्कूल होगा; या उनकी यह टिप्पणी देखिए कि एक वैश्विक स्कूल और कुछ नहीं एक वैश्विक पागलखाना या वैश्विक जेलखाना होगा।

सी.आई.डी.ओ.सी. में मेरी दूसरी या तीसरी मुलाकात में उन्होंने मुझे एक विचित्र किस्सा सुनाया। उन्होंने बताया कि अमरीका में उनके एक व्याख्यान के बाद एक श्रोता उनकी काफी तीखी आलोचना करने लगा कि उन्होंने एक बात को स्पष्ट नहीं किया जो वे कहने की कोशिश कर रहे थे। कुछ समय बाद इलिच ने उसे रोका और काफी बल देकर कहा, ''कृपया बैठ जाइए। मैं आपका शिक्षक *नहीं* हूं।'' उन्होंने मुझे यह किस्सा इस तरह बताया जैसे इसे समझना अत्यंत महत्वपूर्ण है और जैसे इसे समझने से वह सब स्पष्ट को जाएगा जो वे एक व्यापक अर्थ में शिक्षा और शिक्षण के बारे में कहते रहे हैं। परन्तु इसका अर्थ समझने में मुझे कुछ समय लगा।

जब मैंने खुद अपने दिमाग में करने और शिक्षा, S-chools (बड़ा 'एस' स्कूल) और s-chools (छोटा 'एस' स्कूल) के बीच, और T-eachers (बड़ा 'टी' टीचर) और t-eachers (छोटा 'टी' टीचर) के बीच अन्तर करना

शुरू किया, तभी मैं समझ पाया कि किस पीड़ा के साथ इलिच ने उस प्रश्नकर्ता को कहा था कि वे उसके शिक्षक नहीं हैं। कुल मिलाकर वे कह रहे थे, ''मैने तुम्हारा शिक्षक होने की हामी नहीं भरी है, इसलिए मेरी कही बात तुम समझो या न समझो, यह मेरी ज़िम्मेदारी नहीं है। यदि तुम चाहते हो कि मैं तुम्हारा शिक्षक बनूं, तुम्हें कुछ सिखाने या समझाने की जिम्मेदारी लूं, तो तुम्हें अनुरोध करना होगा। तब भी मैं तभी हामी भरूंगा जब मुझे यकीन हो कि मैं वास्तव में तुम्हें सिखा सकता हूं या समझने में तुम्हारी मदद कर सकता हूं। यदि मुझे लगता है कि मैं यह कर सकता हूं तो मैं कुछ शर्तें रखूंगा, परस्पर जिम्मदारियों और दायित्वों की बात रखूंगा, जिनके अधीन मैं तुम्हें सिखाने को सहमत हूं। अन्यथा मैं तुम्हें समझाने की कोई जिम्मेदारी नहीं लूंगा और तुम न समझों तो उसका दोष भी नहीं लूंगा। यहां हम शिक्षक और छात्र की तरह नहीं बल्कि बराबरी वालों की तरह बात कर रहे हैं और एक–दूसरे को न समझ पाना ऐसी किसी भी बातचीत का एक जोखिम होता है।''

नोट : जॉन होल्ट के अनुसार :

S-chool (बड़ा 'एस' स्कूल) से तात्पर्य है, वैसे स्कूल जो छात्रों को गरीबी, असफलता, निन्दा का डर दिखाकर बांधे रखते हैं।

s-chool (छोटा 'एस' स्कूल) से तात्पर्य है, वैसे स्कूल जो छात्रों को अपने तरीके से दुनिया की खोजबीन करने में मदद करते हैं।

T-eacher (छोटा 'टी' टीचर) से तात्पर्य है, वैसा शिक्षक जो शिक्षार्थी को वह सिखाने का प्रयास कर रहा हो जो किसी और ने तय किया है, न कि शिक्षार्थी ने।

t-eacher (बड़ा 'टी' टीचर) से तात्पर्य है, वैसा शिक्षक जो शिक्षार्थी को वह सीखने में मदद दे सके जिसे शिक्षार्थी ने स्वयं अपनी मर्जी से तय किया हो।

यहां यह समझना ज़रूरी है कि इलिच कह रहे हैं कि, सर्वप्रथम, शिक्षक और छात्र का सम्बंध बराबरी वालों के बीच का सम्बंध नहीं है। इस सम्बंध में रहते हुए छात्र कुछ मायनों में (सब मायनों में नहीं) निम्नतर है; वह इसे मानता है और स्वीकार करता है। इसके आगे इलिच कह रहे हैं कि सारी चीज़े सिखाई नहीं जा सकतीं। वे किसी को स्पेनिश सिखाने की ज़िम्मेदारी उठा लेंगे। मगर वे किसी को दर्शन शास्त्र सिखाने का बीड़ा नहीं उठाएंगे, हालांकि उन्हें इस पर बातचीत करके खुशी होगी, क्योंकि वे ठीक ही कहते हैं कि कोई किसी को दार्शनिक नहीं बना सकता। S-chools व s-chools से जुड़े लोगों के बारे में इलिच की एक सबसे गहरी आलोचना यही है कि वे इस अन्तर को भी नहीं जानते या नहीं मानते कि क्या सिखाया जा सकता है और क्या नहीं, कि कौन–सी चीज़ें *सिखाने* से नहीं सीखी जातीं।

कई अमरीकी छात्र शिक्षक के साथ जिस सम्बंध को उचित मानते थे और सी.आई.डी.ओ.सी. में पाने की उम्मीद करते थे, वह कई अर्थों में नवजात शिशु का अपनी मां से सम्बंध जैसा है। सारे कर्तव्य मां के हैं, शिशु के कुछ नहीं। यह हो सकता है कि खराब ज़माने में बड़े होने और उससे भी ज़्यादा अपनी स्कूलिंग के अनुभव से आहत कई युवा लोगों को ऐसे ही सम्बंध की गहरी जरूरत है। मगर सही मायनों में यह शिक्षक और छात्र का सम्बंध नहीं है, यह सर्वथा अलग चीज़ है। वास्तव में हो सकता कि इलिच इस सम्बंध को एक शिक्षक के रूप में दृढ़ता से खारिज व अस्वीकार करने के बावजूद कुछ मामलों में एक दोस्त के रूप में इसे स्वीकार कर लें।

बात यह है कि जिस ढंग से इलिच छात्र–शिक्षक सम्बंध को देखते हैं वह एक असाधारण सम्बंध है और जीवन में इसका अंश बहुत कम होना चाहिए। एक बार उन्होंने मुझसे काफी ज़ोर देकर कहा था कि वे अपना सारा जीवन स्कूल–घर में नहीं बिताना चाहते। वे उन दो स्थितियों के बीच स्पष्ट भेद रखने के हिमायती हैं जिनमें से एक में वे किसी अन्य व्यक्ति से वैसा रिश्ता रखें जैसा एक छात्र का शिक्षक से होता है (या इससे उलटा), अर्थात एक निम्नतर व्यक्ति का उच्चतर व्यक्ति से। और दूसरी वह स्थिति जिसमें वे किसी व्यक्ति के साथ बतौर एक इन्सान अर्थात बराबरी का रिश्ता रखें। यदि वे किसी व्यक्ति के साथ निम्नतर–उच्चतर का सम्बंध बनाते हैं, तो वे यह बात स्पष्ट रखना चाहते हैं कि यह रिश्ता कब, कब तक, किन शर्त्तों पर और किस उद्देश्य से चलेगा। जिसे वे मौजी समाज करते हैं उसका अर्थ कुछ हद तक एक ऐसे समाज से हैं जिसमें लोग बराबरी से बातचीत करते और सम्बंध बनाते हैं। अपवाद सिर्फ वे स्थितियां होती हैं जब वे आपस में तय करें कि वे किसी और ढंग का सम्बंध बनाएंगे।

पेशेवर वक्ता के रूप में कई बार ऐसा होता है कि कोई समूह, संगठन, सम्मेलन मुझे शुल्क देकर व्याख्यान करवाता है। कभी–कभी मुझे डर रहता है कि यह समूह जो सुनना चाहता है वह वह नहीं है जो मैं कहना चाहता हूं, और जो कुछ मैं कहना चाहता हूं उसे वे शायद बिलकुल न सुनना चाहें। ऐसे मामलों में मैं उन्हें कह देता हूं, ''शायद आपकी बैठक में बोलने के लिए मैं सही व्यक्ति नहीं हूं क्योंकि मैं जो कहना चाहता हूं वह यह है।'' कभी–कभी वे मान जाते हैं कि मैं उनका मनचाहा व्यक्ति नहीं हूं। कभी–कभी वे कहते हैं कि मैं फिर भी आऊँ। किन्तु यह सही ही लगता है कि उन्हें पता हो कि उन्हें क्या मिलने वाला है।

कभी–कभार कोई व्यक्ति या समूह मुझसे कहता है कि मैं उनके साथ चर्चा करते हुए कुछ समय व्यतीत करूं, जिसके लिए कोई शुल्क नहीं मिलेगा। ऐसे मामलों में मैं उनसे पूछ लेता हूं कि वे किस बारे में बात करना चाहेंगे। हो सकता है कि वे जो कुछ जानना चाहते हैं, उसके बारे में मैंने या किसी और ने पहले से ही कुछ लिखा हो। तब मैं उन्हें बता देता हूं कि वे उसे कहां से पढ़ सकते हैं। यह भी हो सकता है कि वे किसी ऐसे चीज़ के बारे में बात करना चाहते हों जिसके बारे में मुझे कुछ नहीं पता या मैं बात नहीं करना चाहता। मगर यदि वे मेरे साथ किसी ऐसे विषय पर बात करना चाहते हैं जिसमें मेरी रूचि है और मैं उसके बारे में बात करना चाहता हूं, तो शायद मैं कहूं, ''बात करने से पहले मैं चाहुंगा कि आप कुछ चीज़ें पढ़ लें। इनमें कुछ ऐसे विचार हैं जो हमारी चर्चा के लिहाज़ से महत्वपूर्ण हैं और चूंकि ये पहले ही लिखे जा चुके हैं, इसलिए मैं बैठक में इनकी बात करने में समय खर्च करना नहीं चाहूंगा। बेहतर होगा कि आप इन विचारों को पढ़ लें ताकि हम इनके आगे से शुरू करें।'' कभी–कभी लोग इस पर राज़ी हो जाते हैं, कभी–कभी नहीं होते। मुझे इस तरह की शर्त्तें थोपने से कोई परहेज़ नहीं है। यह एक t-eacher का अधिकार है कि वह वे शर्त्तें स्पष्ट कर दे जिनके तहत वह अपने छात्रों के साथ काम करना स्वीकार करता है। मगर जो लोग मुझसे बात करना चाहते हैं, उन पर मेरा कोई अधिकार न हो; वे पूरी तरह स्वतंत्र हों कि मेरे बगैर काम चला लें; इसमें उनके लिए कोई खतरा न हो –ये शर्त्तें पूरी होने पर ही मुझे काम करने की अपनी शर्त्तें रखने का अधिकार मिलता है।

अब यह साफ है, जो पहले साफ नहीं था, कि क्यों इलिच ने मेरी इस बात पर इतनी भयानक प्रतिक्रिया व्यक्त की थी कि हमें स्कूल की चारदीवारी को बाहर की ओर धकेलते जाना चाहिए। उस समय यह इस बात को कहने का एक अच्छा तरीका लगता था कि हमें सीखने और शेष जीवन के बीच के अन्तर को खत्म कर देना चाहिए। उन्होंने इस बात में जिस खतरे को फौरन भाँप लिया था, वह मुझे बहुत देर में समझ आया। एक बार फिर वैश्विक स्कूल, पागलखाने, जेलखाने के बारे में सोचिए। पागलखाने और जेलखाने क्या हैं? ये अनिवार्य उपचार की संस्थाएं हैं। वहां लोगों का एक समूह एक दूसरे समूह के साथ, उनकी स्वीकृति के बगैर, कुछ–कुछ करता है क्योंकि तीसरे समूह को लगता है कि यह उनके लिए अच्छा

है। जेलखाने, कम से कम वे जेलखाने जो ''पुनर्वास' में यकीन करते हैं, जिनसे अधिकांश कैदी डरते हैं और नफरत करते हैं, वे स्थान हैं जहां एक समूह दूसरे से कहता है, ''हम तुम्हारे जीवन पर नियंत्रण करेंगे और तुम्हारे साथ जो चाहें और जब तक चाहें करेंगे, जब तक कि हमें यकीन न हो जाए कि तुम दुरूस्त हो गए हो।'' इसी लहज़ेमें मानसिक अस्पताल के डॉक्टर भी कहते हैं, ''हम दवाइयों, पाबन्दियों, झटकों, चीड़फाड़ वगैरह से तब तक तुम्हारा इलाज करते जाएंगे जब तक कि तुम कसौटी पर खरे यानी मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं हो जाते।'' चलते–चलते, यह गौरतलब है कि चन्द निहायत संक्रामक रोगों को छोड़ दे तो व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह चिकित्सकीय दृष्टि से बीमार होते हुए भी डॉक्टर के पास या अस्पताल न जाए। ऐसे व्यक्ति खुद का इलाज करने या स्वयं स्वस्थ होने की कोशिश करने को स्वतंत्र हैं। मगर मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्तियों को यह छूट नहीं है।

S-chool भी ठीक इसी प्रकार का अनिवार्य उपचार संस्थान है। समाज ने तय किया है कि लोगों का एक समूह, T-eachers, लोगों के दूसरे समूह यानी छात्रों के साथ, वे चाहें या न चाहें, हर किस्म की चीज़ें करेगा। और तब तक करेगा जब तक कि T-eachers को यह यकीन न हो जाए कि छात्र कसौटी पर खरा हो गया है, दुनिया के बारे में इतना जान गया है कि बाहर कदम रखे और उसमें जी सके। ऐसे लोग कहते हैं कि किसी को भी निरक्षर बने रहने का अधिकार नहीं है – एक ऐसा अधिकार जो मुझे तब हमेशा होता है जब मैं किसी दूसरे देश की यात्रा करता हूं। एक वैश्विक स्कूल–घर, जिसकी ओर हम कदम बढ़ाते लग रहे हैं, एक ऐसी दुनिया होगी जहां लोगों के एक समूह को अधिकार होगा कि वह हम बाकी सबको आजीवन भिन्न–भिन्न किस्म की प्रक्रियाओं, जैसे शिक्षा, इलाज वगैरह लेने को मजबूर करे, जब तक हम कसौटी पर खरे न उतरें। इससे बुरे दुस्वप्न की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

ष्न :

1. इस लेख में छात्र और शिक्षक के दायित्व को लेकर जो चर्चा की गई है, उसपर अपनी टिप्पणी करें।
2. जॉन होल्ट ने जिस प्रकार के स्कूलों की चर्चा की है, उसमें आपका स्कूल किस प्रकार का है।
3. जॉन होल्ट ने जिस प्रकार के शिक्षकों की चर्चा की है, उसमें आप किस प्रकार के शिक्षक हैं।
4. इस लेख में दिए गए विचारों का आलोचनात्मक विश्लेषण करें।

प्रस्तावित कार्य :

इस लेख में जॉन होल्ट ने शिक्षाविद् इवान इलिच की चर्चा की है। उनके विषय में मालूम करें।